परमगुरुश्रीविजयधर्मसूरिभ्यो नमः ।

किञ्चिद् वक्तव्य.

'मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना' संसारमें यह सामान्य लोकोक्ति समझा जाता है, परन्तु इसके गूढ रहस्यका जब पता लगाते हैं, तब मालूम होता है कि-यह उपर्युक्त मामूली लोकोक्तिका ही परिणाम है कि-संसारमें दिन प्रतिदिन नये २ पंथ-मजहब उत्पन्न होते ही रहते हैं, और नष्ट भी होते जाते हैं। संसारमें ऐसे अनेकों पदार्थ हैं, जिनको समझना, अल्पज्ञोंकी बुद्धिसे नहीं हो सकता। और इसी लिये तो हमारे ज्ञानी-ऋषि-महात्मा लोग कह गये हैं कि-' सर्वज्ञके वचनोंपर तुम विश्वास रक्खो '। हां इतनी आवश्यकीय बात है कि-हमारे आगम-हमारे सिद्धान्त सर्वज्ञभाषित हैं या कि नहीं ? इसकी प्रथम हमें अवश्य प्रतीति होनी चाहिये। और इस प्रतीतिके होनेमें, उनके वचनोंकी सत्यताको समझना यही परम कारण कहा जा सकता है।

लेकिन ठीक है, जब मनुष्यमें अपनी मान्यता-पूजनाकी अभिलाषाका आवेग अमर्यादित हो जाता है, तब वह सर्वज्ञके वचनोंको झूठे दिखलानेमें किसी प्रकारका डर नहीं रखता। हमारे शुद्ध सनातन जैनधर्ममें, आजपर्यन्त जितने पंथ निकले हैं, उन सभीके उत्पादकोंके चरित्रोंको जब हम देखते हैं, तब हमें साफ २ जाहिर होता है कि-उपर्युक्त कारणसे ही उन्होंने नये २ ढांचे खडे किये हैं। और संसारके वहुतसे लोग कैसे भोले होते हैं, यह तो पाठक, अच्छी तरह जानते ही होंगे कि, उनको यदि यह कहा जाय कि-'देखो, सूईके छिद्रमेंसे शत हाथी निकल गये और जब सौवाँ हाथी निकलने लगा, तब वह पूंछमें जाके अटक गया,' तो भी वे 'जी ! हां !' ही करते

रहेंगे।" कहनेका तात्पर्य यह है कि–ऐसे भोले लोग उन लोगोंकी जालमें फँस जाँय, तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। अस्तु।

जिस पुस्तकके विषयमें यह 'किञ्चिद्वक्तव्य' लिखा जाता है, वह भी एक ऐसे ही पंथके विषयमें है। करीब दो वर्षोंके पहिले इस तेरापंथ मतके विषयमें मुझे विशेष अनुभव नहीं था, बल्कि इस पंथके मन्तव्योंके विशेष रूपसे जाननेकी इच्छा भी नहीं हुआ करती थी। परन्तु सौभाग्यवश, सं० १९७० के वैशाख महीनेमें जब, परमपूज्य प्रातःस्मरणीय गुरुवर्य शास्त्रविशारद–जैनाचार्य श्रीविजयधर्मसूरीश्वरजी महाराज तथा इतिहासतत्त्वमहोदधि उपाध्यायजी महाराज श्रीइन्द्रविजयजीकी पाली (मारवाड) में तेरापंथियोंके साथमें चर्चा हुई, और तेरापंथियोंने तेईस प्रश्न लिख करके दिये, तभीसे मुझे इस पंथके मन्तव्योंके जानने और इसके विषयमें कुछ न कुछ लिखते रहनेका सौभाग्य प्राप्त होता ही रहता है।

उन तेईस प्रश्नोंके उत्तरोंके साथमें, तेरापंथ–मतकी उत्पत्ति, उसके स्थूल स्थूल मन्तव्य (सिद्धान्त) तथा तेरापंथियोंसे पूछे हुए ७५ प्रश्न वगैरह संग्रहरूप 'तेरापंथ–मत समीक्षा' नामक पुस्तक, मैंने गत वर्षमें (सं० १९७० के चातुर्मासमें) शिवगंजमें लिखी थी। मुझे इस बातको प्रकट करते हुए संतोष होता है, कि–मेरी उस पुस्तककी दूसरी आवृत्तिके निकालनेका प्रकाशकको बहुत शीघ्र समय प्राप्त हुआ। साथ मुझे इस बातका अफसोस भी है कि–उस पुस्तकमें मेरे पूछे हुए ७५ प्रश्नोंके उत्तर, आजतक किसी भी तेरापंथीने प्रकाशित नहीं किये।

यद्यपि मैंने, 'तेरापंथ–मत समीक्षा' में तेरापंथियोंके मन्तव्योंके नाम मात्र प्रकाशित किये थे, परन्तु उनका विस्तारसे जवाब नहीं

लिख सका था। इस लिये उनके लिखनेकी बहुत आवश्यकता समझता था। क्योंकि—आजकलके मनुष्योंको जब तक शास्त्र प्रमाण और युक्तियोंके द्वारा किसी भी विषयको न समझाया जाय; तब तक उनके अन्तःकरणोंमें इसका असर नहीं पहुँच सकता है। और तेरापंथियोंने अपनी पुस्तकोंमें भद्रिक जीवोंके फँसानेके लिये ऐसे २ दृष्टान्त और कुयुक्तियां दी हैं, जिनको पढ करके, सामान्य बुद्धि वाला मनुष्य तो एक दफे 'इदं किम्' इस विचारमें अवश्य ही पड सकता है।

तेरापंथियोंके सभी सिद्धान्त ऐसे हैं, जिनके विषयमें बहुत कुछ लिखनेकी आवश्यकता है। सिद्धान्त ही नहीं, उनके आचारों पर भी लंबी चौडी आलोचनाओंके करनेकी जरूरत है। क्योंकि—संसारमें ऐसा कोई मजहब नहीं होगा कि—जो साधु, और साध्वियोंको आपसमें घनिष्ट संबंधके रखनेका तेरापंथियोंकी तरह प्रतिपादन करता हो। यही क्यों ? तेरापंथी साधु और साध्वियाँ एक ही मकानमें रहनेमें भी पाप नहीं समझते। हाँ, एक आंगनमें नहीं रहनेका अवश्य जाहिर करते हैं। देखिये, इसके लिये, कुछ दिन पहिले उदयपुरके मी० फावडियाजीने, अपने निकाले हुए इश्तिहारमें लिखा है:—

"रात्रीको छोटीसे छोटी लडकी भी साधुओंके निवासस्थानें (एक आंगन) में नहीं रह सक्ती"

इससे स्पष्ट जाहिर होता है कि एक मकानमें अवश्य रहती हैं। इसके सिवाय और भी बहुतसे आचार उनके ऐसे हैं, जो कि शास्त्रसे—व्यवहारसे सभी प्रकारसे सर्वथा खिलाफ हैं।

तेरापंथियोंके जितने सिद्धान्त शास्त्र विरुद्ध हैं, उनमें 'दया—दानका निषेध' 'मूर्तिपूजाका' निषेध ये मुख्य हैं। इस पुस्तकमें मैंने इन

दोनों विषयोंपर लिखनेका इरादा किया था, परन्तु खेद है कि–अवान्तरमें अन्य कार्योंके उपस्थित हो जानेसे और इधर चातुर्मास की पूर्णाहुति भी समीप ही आजानेसे 'मूर्तिपूजा' के विषय पर मुझसे कुछ भी न लिखा गया। मैं उस दिन अपनी आत्माको विशेष धन्य समझूंगा, जिस दिन 'मूर्तिपूजा' और तेरापंथियोंके अन्य मन्तव्यों पर एक और पुस्तक लिख कर पाठकोंके कर कमलोंमें समर्पित करूंगा।

इस पुस्तकमें मैंने खास करके तो दया–दानके विषयमें ही विशेष लिखनेका प्रयत्न किया है। इसके साथमें, संक्षेपसे इस (तेरा-पंथ) मतके उत्पादक 'भीखमजीके जीवन' और 'मुहपत्ती बांधना शास्त्र विरुद्ध है कि नहीं, इनकी आलोचनाएं भी आवश्यकीय समझ कर की गई हैं।

इस पुस्तकके लिखनेमें, जहाँ तक बना है मैंने 'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्' इस नियमको स्मरणमें रक्खा है, तिस पर भी कदाचित् कहीं अनुचित शब्द लिखा गया हो, तो इसके लिये मुझको दोषित न गिन कर, तेरापंथियोंकी पुस्तकें 'भ्रम-विध्वंस', 'तेरापंथी श्रावकोंका सामायक पडिक्कमणा अर्थ सहित', 'तेरापंथीकृत देवगुरु धर्मनी ओलखाण', 'जैनज्ञानसारसंग्रह', 'जिनज्ञानदर्पण', 'श्रीभीखमजी स्वामिको चरित्र रास' तथा 'ज्ञान प्रकाश' (प्रश्नोत्तर) वगैरहको हीं गिनना चाहिये, जिनको पढ करके मैंने यह पुस्तक लिखी है। उनकी पुस्तकोंमें ऐसे असभ्य और कटु शब्द लिखे हैं, जिनकों देख राभसवृत्तिसे कहीं अनुचित शब्द निकल जाना संभवित है।

इस पुस्तकके लिखनेमें अगर मैं कुछ भी प्रशस्त प्रयत्न कर सका हूँ और पाठकोंके संतोषकारक युक्तियाँ दे सका हूँ, तो वह, मेरे पूज्यपाद प्रातःस्मरणीय गुरुवर्यकी कृपाका–

अनुग्रहका-उपदेशका ही फल है। क्योंकि मेरेमें यह शक्ति ही नहीं है कि-मैं किसी प्रकार पाठकोंको सन्तोष दे सकूं। और इस पुस्तकमें जो जो त्रुटियाँ देखी जाँय, वे मेरी ही अज्ञानताके कारण समझनी चाहिये।

मैं यहाँपर इतिहास तत्वमहोदधि पूज्यपाद उपाध्यायजी महाराज श्रीइन्द्रविजयजी, न्यायतीर्थ न्यायविशारद प्रवर्तकजी महाराज श्री मंगलविजयजी, तथा न्यायतीर्थ-न्यायविशारद मुनिवर्य न्यायविजयजी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ कि, जिन्होंने मुझे इस पुस्तकके लिखनेमें समस्त प्रकारकी सहायता दी है।

अन्तमें, इस पुस्तकसे प्यारे पाठक अवश्य लाभ उठावें, और दया-दानके परम तत्त्वको समझें। बस इसमें ही मैं अपने प्रयत्नकी सफलता चाहता हुआ, इस वक्तव्यको समाप्त करता हूँ।

उदयपुर-मेवाड.
कार्तिकी पुर्णिमा वीर सं० २४४२ } **विद्याविजय.**



॥ अर्हम् ॥



परमगुरुश्रीविजयधर्मसूरिभ्यो नमः ।

तेरापंथी–हितशिक्षा ।

शास्त्रकारोंका यह कथन सर्वथा सत्य ही है कि–‘ रागदृष्टि, मनुष्यमें रहे हुए हजारों दोषोंमेंसे एकको भी नहीं देख सकती । ’ लेकिन बुद्धिमान लोग ऐसे दृष्टिरागियोंके आचरणोंपर बडी हँसी किया करते हैं । जिस धर्ममें, जिस मजहबमें, जिस पंथमें अथवा यों कहिये कि जिस समाजमें शास्त्रविरुद्ध और व्यवहारविरुद्ध आचरण हो रहे हों, संसारके समस्त सभ्यमनुष्य जिसके प्रति घृणा दिखाते हों, जिस पंथके मन्तव्योंको सुनते ही लोग छीं छीं करते हों, और साथ ही साथ जिस पंथके उपदेशक (साधु) के हृदयमें दयाकी अंशमें भी मात्रा न रही हो, उस पंथको–मजहबको मोक्षमें ले जानेवाला, समझनेवाले बुद्धिमानों (!) की बुद्धिका क्या परिचय कराया जाय ? । संसारमें हम जितने धर्म या समाजोंको देखते हैं, उनमेंसे किसी धर्म या समाजमें यह सिद्धान्त नहीं प्रतिपादित किया गया है कि ‘ जीवको बचानेमें पाप लगता है । ’ यदि इस सिद्धान्तवाला संसारमें कोई मत है तो वह ‘ तेरापंथ ’

मत ही है। और इसीसे इस पंथको कोई भी मनुष्य मानुषीपंथ कहनेका साहस नही कर सकेगा। क्योंकि मनुष्य प्रतिपादित 'कोई' भी धर्म ऐसा नहीं है कि–जिसमें सर्वथा मनुष्यके हृदयको निष्ठुर–निर्दयी अथवा पाषाणके नातेदार बनानेका प्रयत्न किया गया हो। जो मनुष्य हमेशा मांस खानेवाला है, और जो कसाई हमेशा जीवोंका वध करता है, वह भी यदि रास्तेमें, दो जीवोंको लड़ते हुए अथवा प्रबलजीव, दुर्बलजीवको मारते हुए देखेगा, तो उसको, छुडानेका अवश्य ही प्रयत्न करेगा। परन्तु तेरापंथी नामधारी ऐसे जीवोंको कभी नही छुडावेंगे।

हमें इस बातसे अधिक खेद है कि–ये लोग पवित्रजैनधर्मको कलंकित कर रहे हैं, लेकिन हम इसको 'जैनी' नहीं कह सकते। क्योंकि जैनधर्मका तो मुख्य सिद्धान्त ही जीव दया–जीवरक्षा है, और इन्होंने जीवदयाको तो बिलकुल उठा ही दिया है। फिर वे क्योंकर जैनी होने के दावेको निभा सकते हैं?।

क्या यह जैनधर्मका कभी सिद्धान्त हो सकता है कि–' भूखे-प्यासेको जिमाने, कबूतरादि पक्षियोंको दाने डालने और दानशालाके करवाने, इत्यादि अनुकंपाके कार्योंमें एकान्त पाप होता है?। क्या यह जैनधर्मका सिद्धान्त हो सकता है कि–बिल्ली चूहे (उंदर) को और कुत्ता बिल्लीको पकडता हो तो उसको छुडानेसे पाप लगे? । क्या यह जैनधर्मका सिद्धान्त हो सकता है कि–कोई मनुष्य किसी जीवको मारता हो, तो उसको द्रव्या-दिक देकरके छुडानेमें पाप लगता है?। और क्या यह जैन-धर्मका सिद्धान्त हो सकता है कि–गरीब–दुःखी–दुर्बलजीवको अनुकंपा दान देनेमें एकान्त पाप लगता है?।

इत्यादि जैनधर्मके सिद्धान्तोंसे बिलकुल विपरीत सिद्धान्तों-को माननेवाले यदि 'जैनी' होनेका दावा करते हों, तो उनका यह वैसा ही दावा है, जैसे कि--एक कसाई, ब्राह्मण होनेका दावा करे।

तेरापंथी, जैनी नहीं हैं, इसमें एक और भी प्रमाण है। जैनोंके देव, चौवीस तीर्थंकर हैं, तेरापंथियोंके देव, उस पंथके उत्पादक भीखम हैं। जैनोंके गुरु, पंचमहाव्रतको पालने वाले, कंचन-कामनीके सर्वथा त्यागी, उष्णजलको पीनेवाले, निर्दोष आहारको लेनेवाले और महावीरस्वामीके तीर्थमें गुरुपरंपरासे चले आनेवाले साधु-मुनिराज हैं। तेरापंथियोंके गुरु, साध्वियाँ-श्राविकाओंको रातके दस १२ बजे तक पासमें ही बैठा रखनेवाले, एक एक दिवसके अंतरसे नियत किये हुए घरोंमेंसे मरजी मूजब माल उठानेवाले, साध्वियोंके पास आहारपानी मंगवानेवाले, कच्चे पानीको पीनेवाले, (एक घडे पानीमें जरासी राख डाल दी, इससे पक्का नहीं कहा जा सकता, और ऐसे राखके पानीके पीनेका अधिकार भी नहीं है, इसलिये हम उसको कच्चापानी ही कहते हैं) मुँह पर दिनभर मुहपत्ती बांध रखने वाले, तेरापंथी साधु ही हैं। जैनोंका धर्म, महावीरस्वामीका प्ररूपित है, और तेरापंथियोंका धर्म, भीखमका उत्पादित है।

अब बतावें पाठक, तेरापंथियोंको जैनी कहना, कितनी भारी भूल है।

ऊपर कहे हुए संसार-व्यवहारको छेदनकरने वाले, हृदयको निर्दय बनानेवाले बहुतसे सिद्धान्तोंका नामोल्लेख 'तेरापंथ-मत-समीक्षा' में किया गया है। अब इस पुस्तकमें इनके

मानै हुए स्थूलस्थूल सिद्धान्तोंका, जैनसूत्रों और युक्तियों के साथ खंडन आगे जाकर किया जायगा। लेकिन इसके पहिले एक और बात कह देना समुचित होगा।

नीतिकारोंका यह कथन है कि—'पुरुषविश्वासे वचनविश्वासः' सिवाय पुरुषविश्वासके होनेके, वचनका विश्वास नहीं हो सकता। अतएव पहिले इस तेरापंथ-मतके उत्पादक भीखुनजीके जीवन-चरित्रका अवलोकन करें, कि जिससे पाठकोंको यह तो विदित हो जाय कि--इस पंथके उत्पादककी ज्ञानपूंजी कितनी थी ?।

भीखम चरित्रका अवलोकन[1]

भीखम (भीखुन) चारित्र, तेरापंथियोंके छपवाए हुए कई पुस्त-कोंमें छपा है। इस परसे मालूम होता है कि—इसका जन्म मार-वाडके कंटालिया नामक किसी ग्राममें, सं० १७८३ में हुआ था। इसके पिताका नाम बलुजी था, और माताका नाम दीपादे। सं. १८०८ में इसने ढूंढक साधु रुघनाथजीके पास दीक्षा ली। सारे चरित्रको हम पढ गये, परन्तु कहीं भी यह नहीं देखा गया कि इन्होंने संस्कृत–प्राकृत या भाषाका भी कुछ अभ्यास किया हो। इतना ही नहीं, इसकी बनाई हुई टूटी–फूटी भाषाकी कविताओंके सिवाय आज एक भी छोटी वडी उपयोगी पुस्तक प्राप्त नहीं होती। इससे क्या समझना चाहिये ?। जैसे आजकल मारवाड–मेवाडमें

---

१ सं. १९५७ में शाह खेतसी जीवराजने 'तेरापंथी श्रावकोंका सामा-यकपडिक्कमणा अर्थ सहित' नामक जो पुस्तक निर्णयसागर प्रेसमें छपवाई है, उससे यह अवलोकन किया गया है। इस चरित्रको रिख वेणीदासने बगडी में, वि. सं. १८६० फाल्गुन वदि १३ गुरुवारके दिन बनाया था।

तेरापंथी और ढूंढिये विना पढे लिखे अज्ञानियों को मूंड लेते हैं, वैसे ये महात्मा (!) भी रागको नहीं समझ करके ही विरागी वन बैठे हों, ऐसे ही प्रतीत होता है।

ऊपर दिये हुए संवतोंसे मालूम होता है कि—भीखमजीने पचीस-वर्षकी उम्रमें ढूंढकमतका पल्ला पकडा था। इतनी उम्रमें भी आप-की बुद्धिका तेज कितना लंबा—चौडा था, इसके लिये एक ही प्रमाण देख लीजिये। भीखुचरित्रकी प्रथम ढालकी ८ वीं कडीमें लिखा है:—

'गुरु किया रुगनाथजीरे लाल, पूरी ओलख्यो नहीं आचाररे'

वडे आश्चर्यकी वात है कि—पचीसवर्षकी उम्रमें दीक्षा ली, फिर भी आप आचारकी परीक्षा नहीं कर सके। वस, यही आपकी बुद्धिका परिचय है। यदि इसमें थोडीसी भी समझनेकी शक्ति होती तो ढूंढकपंथमें दीक्षा लेता ही क्यों ?। अस्तु, ऐसे अल्पज्ञ होनेपर भी चरित्रके लेखक तो इसको 'तीर्थंकर' की तरह मानते हैं, यह भी अन्धश्रद्धाका नमूना ही नहीं तो और क्या ?।

चरित्रका लेखक भी अपनेको एक महाज्ञानी समझकरके ही चरित्रको लिखने वैठा है। यदि ऐसा न होता तो चरित्रकी शुरुआतमें:—

'किहां उदना किहां जनमिया, परभव पहोता किण ठाम।
धुरसुं उत्पत्ति त्यारी कहुं, ते सुणजो शुद्धपरिणाम' ॥५॥

आश्चर्यकी वात है कि—'चारित्रनायक परभवमें कहां पहूंचे' इसकाभी ज्ञान लेखकको हो गया ?। कितनी अंधाधुंधी ?। लेकिन ठीक है, तेरापंथ-मतके उत्पादक भीखमजीने, परमात्मा महावीर

माने हुए स्थूलस्थूल सिद्धान्तोंका, जैनसूत्रों और युक्तियों के साथ खंडन आगे जाकर किया जायगा। लेकिन इसके पहिले एक और बात कह देना समुचित होगा।

नीतिकारोंका यह कथन है कि—'पुरुषविश्वासे वचनविश्वासः' सिवाय पुरुषविश्वासके होनेके, वचनका विश्वास नहीं हो सकता। अतएव पहिले इस तेरापंथ-मतके उत्पादक भीखुनजीके जीवन-चरित्रका अवलोकन करें, कि जिससे पाठकोंको यह तो विदित हो जाय कि--इस पंथके उत्पादककी ज्ञानपूंजी कितनी थी?।

भीखम चरित्रका अवलोकन

भीखम (भीखुन) चारित्र, तेरापंथियोंके छपवाए हुए कई पुस्तकोंमें छपा है[1]। इस परसे मालूम होता है कि—इसका जन्म मारवाडके कंटालिया नामक किसी ग्राममें, सं० १७८३ में हुआ था। इसके पिताका नाम बलुजी था, और माताका नाम दीपादे। सं. १८०८ में इसने ढूंढक साधु रुघनाथजीके पास दीक्षा ली। सारे चरित्रको हम पढ गये, परन्तु कहीं भी यह नहीं देखा गया कि इन्होंने संस्कृत—प्राकृत या भाषाका भी कुछ अभ्यास किया हो। इतना ही नहीं, इसकी बनाई हुई टूटी—फूटी भाषाकी कविताओंके सिवाय आज एक भी छोटी बडी उपयोगी पुस्तक प्राप्त नहीं होती। इससे क्या समझना चाहिये?। जैसे आजकल मारवाड—मेवाडमें

---

१ सं. १९५७ में शाह खेतसी जीवराजने 'तेरापंथी श्रावकोंका सामायकपडिक्कमणा अर्थ सहित' नामक जो पुस्तक निर्णयसागर प्रेसमें छपवाई है, उससे यह अवलोकन किया गया है। इस चरित्रको रिख वेणीदासने बगडी में, वि. सं. १८६० फाल्गुन वदि १३ गुरुवारके दिन बनाया था।

तेरापंथी और ढूंढिये बिना पढे लिखे अज्ञानियों को मूंड लेते हैं, वैसे ये महात्मा (!) भी रागको नहीं समझ करके ही विरागी बन बैठे हों, ऐसे ही प्रतीत होता है।

ऊपर दिये हुए संवतोंसे मालूम होता है कि–भीखमजीने पचीस-वर्षकी उम्रमें ढूंढकमतका पल्ला पकडा था। इतनी उम्रमें भी आप-की बुद्धिका तेज कितना लंबा–चौडा था, इसके लिये एक ही प्रमाण देख लीजिये। भीखुचरित्रकी प्रथम ढालकी ८ वीं कडीमें लिखा है:—

'गुरु किया रुगनाथजीरे लाल, पूरी ओलख्यो नहीं आचाररे'

बडे आश्चर्यकी बात है कि–पचीसवर्षकी उम्रमें दीक्षा ली, फिर भी आप आचारकी परीक्षा नहीं कर सके। बस, यही आपकी बुद्धिका परिचय है। यदि इसमें थोडीसी भी समझनेकी शक्ति होती तो ढूंढकपंथमें दीक्षा लेता ही क्यों ?। अस्तु, ऐसे अल्पज्ञ होनेपर भी चरित्रके लेखक तो इसको 'तीर्थंकर' की तरह मानते हैं, यह भी अन्धश्रद्धाका नमूना ही नहीं तो और क्या ?।

चरित्रका लेखक भी अपनेको एक महाज्ञानी समझकरके ही चरित्रको लिखने बैठा है। यदि ऐसा न होता तो चरित्रकी शुरुआतमें:—

'किहां उदना किहां जनमिया, परभव पहोता किण ठाम।
धुरसुं उत्पत्ति त्यारी कहुं, ते सुणजो शुद्धपरिणाम' ॥५॥

आश्चर्यकी बात है कि–'चारित्रनायक परभवमें कहां पहूंचे' इसकाभी ज्ञान लेखकको हो गया ?। कितनी अंधाधुंधी ?। लेकिन ठीक है, तेरापंथ-मतके उत्पादक भीखमजीने, परमात्मा महावीर

देवको ही चूका कहनेका जब दुःसाहस किया, तब भला ये क्यों कमी रक्खें ? साथ साथ, एक और बातभी समझ लीजिये ।

भीखुचरित्रके लेखकने, भीखमजीके जन्मादि प्रसंगोंको तीर्थंकरके कल्याणकोंकी तरह कल्याणक लिखे हैं । जैसे जन्मके प्रसंगमें लिखा है:—

'तीखीतिथि तेरस सुणीरे लाल, जन्मकल्याणिक थायरे' । सो० ॥५॥

ऐसे और प्रसंगोंमें भी । अब यहाँ विचारनेकी बात है कि-कल्याणक होते हैं किसके ? । कल्याणक होते हैं तीर्थंकरोंके । भीखमजी जैसे अल्पज्ञोंके नहीं । और जिसके कल्याणक होते हैं, उसको तो गर्भमेंसे ही तीन ज्ञान (मति-श्रुत-अवधि) होते हैं । क्या भीखमजी, जब उनकी माताकी कुक्षिमें आए, तबसे उनके तीन ज्ञान थे ? । और यदि उसको तीनज्ञान होते, तो विचारा ढूंढकसाधु होता ही क्यों ? एवं पीछेसे वहाँसे भागकर एक नया ढाँचा खडा करता ही क्यों ? ।

और भी एक बात है । जिनके कल्याणक होते हैं, उनके (तीर्थंकरोंके) जन्मसे ही ये चार अतिशय होते हैं:—

'तेषां च देहोऽद्भुतरूपगन्धो
निरामयः स्वेदमलोज्झितश्च ।
श्वासोऽब्जगन्धो रुधिरामिषं तु
गोक्षीरधाराधवलं ह्यविस्रम् ॥ ५६ ॥
आहारनीहारविधिस्त्वदृश्य-
श्चत्वार एतेऽतिशयाः सहोत्थाः ।'

(अभिधानचिन्तामणौ)

अर्थात्—१ तीर्थंकरोंका अद्भुतरूप-गन्धवाला देह होता है, रोग तथा पसीना भी नहीं होता, २ कमलकी सुगन्धी जैसा श्वास होता है, ३ रुधिर तथा आमिष गौके दुग्ध जैसा सफेद होता है और ४ आहार--नीहार कोई देखने नहीं पाता।

ये ही चार अतिशय, समवायांगसूत्रके ४८–४९ (लिखी हुई प्रतिके) पत्रमें, ३४ अतिशयोंके अन्तर्गत इसतरह लिखे हैं:—

"निरामयनिरुवलेवा गायलट्ठी, गोखीरपंडरे मंससोणिते, पउमुप्पलगंधिए उस्सासनिस्सासे, पच्छन्ने आहारनीहारे अदिस्से मंसचक्खुणा"

अर्थः—निरामय तथा निर्मलशरीरवाले, गोदुग्ध जैसे सफेद मांस-रुधिरवाले, कमल जैसे सुगंधित श्वासोच्छ्वासवाले, तथा जिनके आहार-नीहार चर्मचक्षुसे न दीख पड़ें।

अब बतलाइये, भीखमजीमें ऊपरकी बातें पाई जाती थीं?। जब नहीं पाई जाती थीं, तो फिर उसके 'जन्मकल्याणक' कहनेवाला महामृषावादी नहीं तो और क्या?। अस्तु, अब आगे चलें।

भीखमजीने ढूंढकसाधु रुगनाथजीके पास दीक्षा तो लेली, परन्तु उसको पीछेसे बहुत पश्चाताप होने लगा। इसके मनमें अनेक प्रकारकी शंकाएं होने लगीं। उन साधुओंके आचार-विचारोंको देख करके इसके मनमें विचार हुआ कि–'मैं शुद्ध मार्ग पकडुं' क्योंकि दूसरी ढालके प्रथम दोहेमें कहा है:–

"विधसु करी विचारणा, वारंवार विशेष ।
शुद्धमारग लेणो सही, परथन्नसामो देख" ॥ १ ॥

मनुष्य जब किसी कार्यके करनेका विचार करता है, तब उसको अच्छा ही समझ करके करता है। इसी तरह भीखमजीने विचार तो शुद्धमार्गके पकडनेका किया, लेकिन यह तो न समझ सका कि–'मैं इससे भी अधिक अंधेरेमें जानेका विचार कर रहा हूँ। ढूंढकमतमें दीक्षा लेकर 'परमात्माकी मूर्तिको न मानना' 'रात्रिको पानी नहीं रखना' 'मूँहपर मुहपत्ती (कपडेका टुकडा) बांध रखना' इत्यादि जैनशास्त्रविरुद्ध वर्ताव कर अंधेरेमार्गका स्वीकार तो किया ही था। इससे भी, बुद्धिके वैपरीत्यसे और अंधेरेमार्गमें जानेका विचार किया।

भीखमजीने अपने गुरुके साथमें किस तरह चर्चा की, गुरुने किस २ तरह समझाया तथा भीखमजी उसकी एक न मानकर किसतरह अलग हुआ, यह सारी बात 'तेरापंथ-मतसमीक्षा' में दिखलादी है, इस लिये यहाँ लिख कर पुनरुक्तिके दोषमें उतरना अच्छा नहीं समझते।

भीखमजीने जब ढूंढकमत छोड अलग अडंगा जमानेका विचार किया, तब उसके साथमें तेरह साधु तय्यार हुए। और इसीसे इसने अपने पंथका तेरापंथ नाम रक्खा। इसने विना गुरुके ही संवत् १८१७ के आसाढ शुदि १५ के दिन केलवास (मेवाड) में अपने आपसे दीक्षा ले ली। नये पंथको निकालते हुए ही 'प्रथमकवले मक्षिकापातः' का नमूना यहाँ पर ही हुआ। क्योंकि भगवतीसूत्रके २५ वे शतकके ६ उद्देशेमें इस मतलबका पाठ है कि–'छेदोपस्थापनीयचारित्र सिवाय गुरुके नहीं मिल सकता।'

देखिये इसको सिद्धिकरने वाले दो पाठ:—

" पुलाए णं भंते ! किं सामाइयसंजमे होज्जा, छेओवट्ठावणियसंजमे होज्जा, परिहारविसुद्धियसंजमे होज्जा, सुहुमसंपरायसंजमे होज्जा, अहक्खायसंजमे होज्जा ? गोयमा ! सामाइयसंजमे होज्जा, छेओवट्ठावणियसंजमे होज्जा, णो परिहारविसुद्धियसंजमे होज्जा, णो सुहुमसंपरायसंजमे होज्जा, णो अहक्खायसंजमे होज्जा, एवं बउसेवि। एवं पडिसेवणाकुसीलेवि। "

(भगवती–पत्र–१७३३)

अर्थ:—हे भगवन् ! पुलाकनियंठा, क्या सामायिकसंयममें होता है, छेदोपस्थापनीयसंयममें होता है, परिहारविशुद्धिसंयममें होता है, सूक्ष्मसंपरायसंयममें होता है, और यथाख्यातसंयममें होता है ? भगवान्ने कहा:—

हे गौतम ! सामायिकसंयममें होता है, छेदोपस्थापनीयसंयममें होता है। और परिहारविशुद्धिसंयम, सूक्ष्मसंपरायसंयम तथा यथाख्यातसंयममें नहीं होता। इसी तरहसे बकुश और प्रतिसेवणाकुशीलमें भी समझ लेना।

जब यह सिद्ध हुआ कि–बकुशादि नियंठे सामायिकचारित्र और छेदोपस्थापनीयचारित्रमें ही होते हैं, तब यह देखनेकी आवश्यकता है कि–बकुशादि नियंठे तीर्थमें ही होते हैं कि अतीर्थमें। इसके लिये भगवतीसूत्रके, [२५ श० ६ उ० पत्र] १७३७ के पाठको देखिये:—

" पुलाए णं भंते ! किं तित्थे होज्जा, अतित्थे होज्जा ? । गोयमा ! तित्थे होज्जा, णो अतित्थे होज्जा एवं बउसेवि। पडिसेवणाकुसीलेवि। "

अर्थः—हे भगवन् ! पुलाकनियंठा, क्या तीर्थमें होता है, कि अतीर्थमें होता है ? । भगवान् कहते हैं:—गौतम ! तीर्थमें होता है, अतीर्थमें नहीं होता है। इसी तरहसे बकुश और प्रतिसेवणाकुशीलको भी समझना ।

बस, सिद्ध हो चुका कि, जब बकुशादि नियंठे तीर्थमें होते हैं, तो फिर जिनमें बकुशादि नियंठे रहते हैं, वे दो चारित्र (सामायिकचारित्र, छेदोपस्थापनीयचारित्र) भी तीर्थमें ही हुए ।

अब यह विचारनेकी बात है कि--भीखमजी, जब तीर्थमें ही नहीं रहे-संघमें ही नहीं रहे--गुरुपरंपरामें ही नहीं रहे, तो फिर उनको सामायिकचारित्र और छेदोपस्थापनीयचारित्र मिला ही कहाँसे ? तीर्थमें तो साधु वे ही गिने जा सकते हैं कि, जो गुरुपरंपरामें होते हैं । और ऐसे तो भीखमजी थे नहीं । इन्होंने तो विना गुरुके ही मुंडवा लिया था । और इससे यह भी प्रत्यक्षसिद्ध हुआ कि—भीखमने पंथ निकालनेके प्रारंभमें ही भगवान्की आज्ञाके विराधनेका 'श्रीगणेशाय नमः' किया ।

भीखुचरित्रके लेखकका यह लिखना बिलकुल झूठ है कि:—

" उदे उदे पूजा कही, श्रमण निग्रंथनी जाण ।
तिणसुं पूज प्रगट थया, ए जिन वचन प्रमाण" ॥२॥

यह उदय उदयमें पूजा तेरापंथी साधुओं जैसे महात्माओं (!) की नहीं कहीं । किन्तु श्रमणनिर्ग्रंथोंकी कही है । और भगवान्के कथनानुसार श्रमणनिर्ग्रंथोंकी पूजा हुई भी है । देखिये, दो हजार वर्षके भस्मग्रहके उतरनेके पश्चात् अभी तक ४४१ वर्ष हुए हैं । इतने वर्षोंके

बीचमें महाप्रभावक निर्ग्रंथ पुरुष, जैसे श्रीसोमसुंदरसूरि, श्रीमुनिसुंदरसूरि, श्रीरत्नशेखरसूरि, श्रीहेमविमलसूरि, श्रीआनंदविमलसूरि, श्रीविजयदानसूरि, श्रीहीरविजयसूरि, श्रीविजयसेनसूरि, श्रीयशोविजय उपाध्याय, एवं खरतरगच्छमें श्रीजिनभद्रसूरि, श्रीजिनचंद्रसूरि, श्रीजिनसमुद्रसूरि, श्रीजिनचंद्रसूरि, श्रीजिनसिंहसूरि और श्रीसमयसुंदर उपाध्याय वगैरह ऐसे ऐसे हुए हैं कि-जिन्होंने यवनराजाओंको प्रतिबोध करके भी जैनशासनको दीपाया है। इन्होंने अनेक तीर्थोंके उद्धार करवाये हैं और अहिंसाधर्मका प्रचार भी किया है।

ऊपर जिन आचार्योंके नाम दिये गये हैं, ये तो सिर्फ तपगच्छ तथा खरतरगच्छके ही आचार्योंके नाम हैं, परन्तु इनके सिवाय और भी गच्छोंमें बहुतसे प्रभावक आचार्य हुए हैं। अब तेरापंथी बतावें कि-इन ४४१ वर्षोंके दरमियान तुम्हारे कौन कौनसे ऐसे प्रभावक पुरुष हुए, जिन्होंने परमात्माके शासनकी शोभा की हो? । पाठकोंको यह बात स्मरणमें रखनी चाहिये कि--इस तेरापंथमतको उत्पन्न हुए ही १५० वर्षोंके करीब हुए हैं। अब बतलाईये, भगवान्‌ने तो दो हजार वर्षके बाद निर्ग्रंथोंकी पूजा होनेका कहा है, तो फिर ये तुम्हारे भीखमजी तीनसो वर्षों तक किस चिडीयेखानेमें घुस रहे थे? भगवान्‌के कहे अनुसार तो तुम्हारे माने हुए निर्ग्रंथोंकी पूजा नहीं हुई।

आगे चलकर भीखुचरित्रका लेखक लिखता है कि:--

' वली वंकचुलीयामां वारता त्रैपना पछी विचार।
अधिक पूजा अरिहंते कही श्रमणनिग्रंथनी श्रीकार ' ॥२॥

लिखनेवाला भूल गया। जिस ' वग्गचूलिया ' का यह प्रमाण उसने दिया है, उसी वग्गचूलियामें खास करके लिखा हुआ है कि:—

" विक्कमकालाओ पणरसय-पणहत्तरीवासेसु गएसु कोहंडि-अपरिग्गहियवंतरिप्पहावाओ भारहे वासे सुयहीलणा जिणपडि-माभत्तिनिसेहकारया सच्छंदायारा दुम्मेहा मलिणा दुग्गइगामिणो बहवे भिक्खायरा समुप्पज्जिहिंति । "

अर्थ:—विक्रम सं० १५७५ वर्ष होनेके बाद कोहंडी अपरि-गृहिता व्यंतरीके प्रभावसे भरतक्षेत्रमें सूत्रकी निंदा करनेवाले, जिन-प्रतिमाकी भक्तिका निषेध करनेवाले, स्वच्छंदाचारी, दुर्बुद्धि, मलिन तथा दुर्गतिगामी ऐसे बहुत भिक्षु उत्पन्न होंगे ।

अब बतलाईये, ऊपर दिखलाए हुए आचारवाले तेरापंथीके साधु हैं कि नहीं ? । उपर्युक्त सभी बातें तेरापंथियोंमें पाई जाती हैं, तो फिर भगवान्के कथनानुसार वे शासनके ध्वंस करनेवाले क्यों न कहे जाँय ? इनको निर्ग्रंथ कहनेका साहस कौन बुद्धिमान कर सकता है ? । अस्तु इससे भी आगे चलिये । इसी 'वग्गचूलिया' में प्रतिपादित किया है:—

" तए णं ते दुवीसं वाणियगा उम्मुक्कबालवत्था विन्नाय परि-णयमित्ता दुट्ठा धिट्ठा कुसीला परवंचगा खलुक्का पुव्वभवमिच्छ-त्तभावाओ जिणमग्गपडिणिया देवगुरुनिंदणया तहारूवाणं समणाणं माहणाणं पडिकुट्ठकारिणो जिणपन्नत्तं तत्तं अमन्नमाणा अत्तपसंसिणो बहूणं नरनारीसहस्साणं पुरओ नियनियकप्पणं निम्मवियं कुमग्गं आघवेमाणा पन्नवेमाणा परूवेमाणा जिणप-डिमाणं भंजणयाणं हिलंता खिसंता निंदिता गरहिता परिह-वंति चेइयतित्थाणि साहू साहूणी य उड्डाहइस्संति "

अर्थ:—वे बाईस पुरुष, बालभावसे मुक्त, जानकरके, परिणाम करके, दुष्ट, धृष्ट, कुशील, परवंचक, उद्धत, पूर्वभवके मिथ्यात्व-

भावसे जिनमार्गके प्रत्यनीक, देवगुरुके निंदक, साधु–माहणके निंदक, जिनतत्त्वोंको नहीं माननेवाले, आत्मप्रशंसक, बहुत स्त्री–पुरुषोंके आगे स्वकल्पित कुमार्गकी प्ररूपणा करनेवाले, जिन-प्रतिमाके निंदक, हीलणा करने वाले, मूर्तिपूजा–तीर्थ तथा साधु–साध्वीकी उत्थापना करने वाले होंगे ।

इसमें कही हुइ वातोंसे भी तेरापंथियोंके आचारोंको मिला लीजिये। 'कुशीलता' 'परवंचकता' 'जिनमार्गकी प्रत्यनीकता' 'देव–गुरुकी निंदकता' 'जिनतत्त्वोंको न मानना' 'आत्मप्रशंसा करना' 'स्त्री–पुरुषोंके आगे कुमार्गकी प्ररूपणा करना' 'जिनप्रतिमाकी हेलणा करना' 'मूर्तिपूजा–तीर्थ और सच्चे साधु–साध्वियोंकी उत्थापना करना' ये सारी बातें तेरापंथियोंमें पाई जातीं हैं कि नहीं ?। अव हम क्यों नही कह सकते हैं कि--तेरापंथी जैन हैं ही नहीं । यदि जैन होते तो जैनशास्त्रोंमें कहे हुए सिद्धान्तोंसे विपरीत क्यों प्ररूपणा करते ?।

अगर कोई तेरापंथी यह कहे कि–'ऊपर जो बात कही है, यह तो वाईससमुदाय वाले अर्थात् ढूंढकोंके लिये है, हमारे लिये नहीं।' तो यह भी ठीक नहीं है, क्योंकि–तेरापंथी भी तो ढूंढियोंमेंसे निकले हैं। और ढूंढकोंमेंसे निकलकरके भी इन्होंने क्या अच्छा काम किया ? उलटे 'दया' और 'दान' का निषेध करके और अंधकारमें जा फँसे । फिर क्योंकर यह हो सकता है कि–तेरापंथीके ऊपर, उपर्युक्त पाठ नहीं लग सकता ?। अवश्य लग ही सकता है ।

तेरापंथी लोग इस बातका भी घमंड नहीं कर सकते हैं कि–'हमारेमें बडे २ धनी लोग हैं।' क्योंकि–वग्गचूलीयाका नीचे दिया

हुआ पाठ ही यह कह रहा है कि—'उस समयमें जैनमुनियोंका उदय—पूजा—सत्कार नहीं होगा। क्योंकि जैनमार्गके उत्थापकोंकी जालमें बहुत लोग फँस जायेंगे।' देखिए पाठ यह है:—

"सामीयरूवियस्स सुयस्स हीलणे णं भविस्सइ, तया णं सुयहीले समणाणं निग्गंथाणं णो उदय-पूआ-सक्कारे सम्माणे भविस्सइ"

पापमें प्रवृत्तिकरनेवाले संसारमें मनुष्य बहुत होते हैं। और इससे ऐसे कुपंथियोंकी जालमें यदि बिचारे भोले लोग फँस भी जाँय, तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

ऊपरके पाठोंसे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि—'तेरापंथी जो कहते हैं कि वग्गचूलियामें कहे मुताबिक निर्ग्रंथकी पूजा होनेके लिये ही भीखमजी उत्पन्न हुए, यह बिलकूल झूठ बात है। उपर्युक्त पाठोंसे तो यही सिद्ध हुआ कि--शासनके प्रत्यनीक होंगे, ऐसा जो वग्गचूलियामें लिखा गया है, यही भीखमजी और इसके अनुयायी तेरापंथियोंके लिये लिखा गया है। क्योंकि ऊपरकी सभी बातें इन लोगोंमें पाई जाती हैं।

अब कोई तेरापंथी यह कहे कि—'वग्गचूलियाके उपर्युक्त पाठोंको हम नहीं मानेंगे। क्योंकि—यह बत्तीससूत्रोंमें नहीं हैं।' यह कहना भी बडी अज्ञानताका सूचक है। उदय उदय पूजाके लिये तो वग्गचूलियाकी साख देनेमें कोई हानी न दीख पडी और उसी वग्गचूलियाके और पाठोंके लिये तो 'बत्तीससे बाहर' का कारण दिखलाया जाय। यह भी एक प्रकारका दुराग्रह ही नहीं तो और क्या?।

और भी देखिये। जिस 'ठाणांग' सूत्रको तेरापंथी भी मानते हैं। उसी ठाणांगके दसवें ठाणेके पत्र ५८० में 'वग्गचूलिया' का नाम आता है। देखिये वह पाठ:—

"संखेवियदसाणं दस अज्झयणा प० तं जहाः—खुड्डियाविमा-णपविभत्ती महल्लियाविमाणपविभत्ती अंगचूलिया वग्गचूलिया विवाहचूलिया अरुणोववाए वरुणोववाए गरुलोववाए वेलंधरो-ववाए वेसमणोववाए।"

जब उनके माने हुए अंगसूत्रमें भी नाम आते हुए, यदि वे न मानें, तो समझना चाहिये कि—इन लोगोंकी जबरदस्ती अल्लाउद्दीन खिलजीकी जवरदस्तीको भी हरा देनेवाली है। अस्तु, न्यायकी वातका निष्पक्षपाती पाठक तो अच्छी तरह समझ ही सकते हैं।

भीखुचरित्रकी पांचमी ढालमें लिखा है:—

" आदिनाथ आदेसरजी जिनेश्वरजगतारणगुरु।
धर्म आद्य काढी अरिहंत, इण दुसम आरामां करम काढ्याजी॥
प्रगट्या आदिजिणंद ज्युं, ए अचरिज अधिकआवंत॥१॥

छिः छिः छिः, कहाँ परमात्मा ऋषभदेव, और कहाँ इस का-लका अल्पसत्त्वी भीखम। आदिनाथ भगवान्के साथमें, अध-र्मका प्रचार करनेवाले भीखमजीकी तुलना करते हुए लेखकको लज्जा भी न आई ?। यह ऐसी ही तुलना की है, जैसी एक चक्र-वर्ती या जगत् के राजाके साथमें, होलीके राजाकी तुलना की जाय। भगवान् ऋषभदेवने तो संसारमें धर्म और व्यवहारकी नींवही डाली थीं, परन्तु तुम्हारे भीखमने क्या किया ?। 'दया' 'दान' 'मूर्तिपूजा' वगैरह जैनधर्मके खास सिद्धान्तोंको उच्छेदन करनेके सिवाय किया ही क्या है ?। क्या इसको आप लोग धर्मप्रवर्तक समझते हो ?। क्या भीखुनजी उत्पन्न होनेके पहिले जैनधर्म—जैनशासन चलता ही नहीं था ?। अरे! हृदयके

थियो ! कभी भगवतीसूत्रका २० वाँ शतक, आठवाँ
त्र १५०४ के प्रथम पृष्ठके

" जंबुदीवे णं दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए देवाणुप्पिया णं केवइयं कालं तित्थे अणुसिज्जिस्सई ? । गोयमा ! जंबुदीवे दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए ममं एगवीसं वाससहस्साइं तित्थे अणुसिज्जिस्सइ "

इस पाठको तुम्हारे पूज्य परमेश्वर (!) के मुखसे सुना या पढा भी है ? । ऊपरके पाठमें गौतमस्वामिने भगवान्से प्रश्न किया है कि–' हे भगवन् ! जंबुद्वीपमें, भरतक्षेत्रमें, इस अवसर्पिणीमें कितने काल पर्यन्त तीर्थ प्रवर्तेगा ? '

भगवान्ने कहा:—'जंबूद्वीपमें, भरतक्षेत्रमें, इस अवसर्पिणीमें मेरा तीर्थ इक्कीस हजार (२१०००) वर्ष पर्यन्त रहेगा । '

अब बतावें तेरापंथी, भगवान्का कथन सत्य ? कि तुम्हारा कथन सत्य ? । जब भगवान्का तीर्थ ही इक्कीसहजार वर्ष पर्यन्त चलनेका है, तो फिर कैसे कहते हो कि, भीखमजी, ऋषभदेव भगवान्की तरह धर्म प्रवर्तक थे ? ।

यहाँपर 'तीर्थ' शब्दका अधिकस्पष्टिकरण करना समुचित होगा । ' तीर्थ ' शब्दसे साधु-साध्वी-श्रावक–श्राविका ये चतुर्विधसंघ समझना चाहिये । क्योंकि भगवतीसूत्रके २० श० ८ उ० पत्र १५०४ में उपर्युक्त पाठसे ही संबंध रखनेवाला इस तरहका पाठ है:—

" तित्थं भंते ! तित्थे, तित्थंकरे तित्थे ? गोयमा ! अरहा तात्र णियमं तित्थंकरे, तित्थे पुण चाउवण्णाइण्णे समणसंघे तं जहा:–समणा समणीओ सावगा सावियाओ । "

अर्थः—गौतमस्वामीने प्रश्न किया कि–हे भगवन् ! 'तीर्थ' संघरूप तीर्थको कहते हैं, या 'तीर्थ' 'तीर्थंकर' को कहते हैं ?। भगवान्ने कहाः–अर्हन्, तीर्थंकर ही कहे जाते हैं। और 'तीर्थ' तो 'चातुर्वर्णश्रमणसंघ' कहा जाता है। चातुर्वर्णश्रमणसंघ यह हैः–साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका।

जब भगवान्का यह 'तीर्थ' इक्कीसहजार वर्ष पर्यन्त चलनेवाला है, तो फिर भीखमजीको, श्रीऋषभदेवभगवान्की तरह 'धर्मप्रवर्तक' कहना सरासर सत्यविरुद्ध नहीं, तो और क्या है ?।

यहाँ तेरापंथी यह कहते हैं कि–"'तीर्थ' नाम शासनका मालूम होता है। जो किसी समय साधु होवे, किसी समय न भी होवे।" आधारके सिवाय, आधेयको रखनेवाले, तेरापंथियोंकी बुद्धिप्रभाको धन्य है। तेरापंथियोंने, इस विज्ञानविद्याका प्रकाशकर, वडे २ सायन्सवेत्ताओंकी विद्याओंको भी पराजित कर दिया।

'तीर्थ' नाम है 'साधु–साध्वी–श्रावक–श्राविका' का, जो कि ऊपर कहा गया है। और 'शासन' नाम है 'प्रवचन' का। 'साधु' आदि (तीर्थ) आधार हैं, और 'प्रवचन' आधेय है। अब विचारनेकी बात है कि–जब साधु आदि (तीर्थ) ही नहीं रहेंगे, तो फिर 'शासन' (प्रवचन) किसके आधारसे रहेगा ?। और भगवान् तो कहते हैं कि मेरा 'तीर्थ' (अर्थात् साधु–साध्वी-श्रावक–श्राविका,) इक्कीसहजार वर्ष पर्यन्त रहेगा, तो फिर तेरापंथी ऐसा कैसे कह सकते हैं कि, 'किसी समय साधु न भी होवे, और 'तीर्थ' रहे ?'। इस 'वन्ध्या पुत्र' जैसे नियमको कौन मानेगा ?। यह तो प्रत्यक्ष ही 'वदतो व्याघातः' है कि–

'तीर्थकी विद्यमानता मान करके भी 'साधु' की अविद्यमानता मानना।

और भले ही 'तीर्थ' शब्दका अर्थ 'प्रवचन–शासन' रहे, तो भी पूर्वोक्त आधार आधेयकी युक्तिके अनुसार आपकी खिचडी नहीं पकनेवाली है। क्योंकि–प्रवचन, सिवाय चतुर्विधसंघके नहीं रह सकता। चतुर्विधसंघ के अभावमें भी अगर 'प्रवचन–शासन' रहता हो, तो महावीरदेवके शासनकी मर्यादा, इक्कीसहजार वर्ष तककी नहीं दिखला कर आगामी चौवीसीके प्रथम तीर्थंकर 'पद्मनाभ' के शासन चलनेके पहिले समयतक कहनी चाहिये थी। जब ऐसा नहीं कहा, तब निश्चित होता है कि–चतुर्विधसंघके आधार सिवाय प्रवचन–शासन (आधेय) नहीं रह सकता है।

भीखु चरित्रकी छठवी ढालके प्रारंभमें लिखा है:—

"चरमकल्याणक हुओ घणुं, तिणरो सुणो सहु विस्तार।
सरियांरिमां स्वामिजी विराजियां, हवे भाद्रवा मास मोझार"। १

पहिले कहा जा चुका है कि–कल्याणक तीर्थंकरोंके होते हैं। और वे पांच होते हैं:–१ च्यवन (गर्भमें आनेका) २ जन्म, ३ दीक्षा, ४ ज्ञान (केवलज्ञान) और ५ निर्वाण (मोक्ष)। भीखमजी जैसे 'देवानांप्रिय' के भी उनके भक्तोंने कल्याणक लिख मारे। लेकिन इसमें भी 'च्यवन' 'दीक्षा' और 'केवलज्ञान' कल्याणक तो बतलाए ही नहीं। और यकायक कूदकर चरम (अन्तिम) कल्याणकपर आ पहुँचा। अन्तिम कल्याणक उसीका होता है जिसका मोक्ष होता है। तेरापंथी लोग बतावें, भीखमजीका क्या मोक्ष हुआ?। लेकिन 'मोक्ष हुआ' ऐसा तो मानते

नहीं, फिर चरम कल्याणक कैसा? खैर, तेरापंथी लोग, भीखम-जीका 'मोक्ष' न मानकर पांचवाँ देवलोक मानते हैं, यह भी सरासर झूठ है, क्योंकि छेवट्टेसंघयणवालेकी, चतुर्थदेवलोकके ऊपर गति ही नहीं है, इस प्रकार जैनशास्त्र फरमाता है। तो फिर भीखमजीका पांचवाँ देवलोक हुआ, ऐसा भी क्योंकर माना जाय?।

अफसोसकी बात है कि—लेखकको, तीर्थंकरोंके कल्याणकोंकी तरह भीखमके कल्याणक लिखते हुए जरासा भी भवका डर नहीं हुआ, उसके विषयमें हम लिखें ही क्या?।

भीखमजीका जब अन्तसमय नजदीक आया, तब उसने अपने चेले चापटोंको उपदेश दिया है किः—

"जिण तीणनेरे जिण तिणने मत मुंडजोरे, दीक्षा देजो देख देखरे॥११॥

उपदेश तो बहुत ही अच्छा, पर इसके अनुकूल वर्ताव कौन करता है?। लेकिन इसमें एक बात तो यह है, खुद उपदेशक ही कूएमें गिरा हुआ हो, तो फिर चेले क्या कर सकते हैं?। जिसकी मूल उत्पत्ति ही संमूर्च्छिमपनेसे हुई है, उसकी परंपराका फिर क्या ठिकाना रह सकता है?। और उस संमूर्च्छिम मतके साधु भी, परीक्षा करके कैसे मूँडे?। तब कहना होगा कि—भीखम-जीका यह उपदेश वचन मात्र हीमें था। और हुआ भी वैसा ही। आज कल भी हम देखते हैं कि, 'जो आया सो मूंडा' ऐसा हाल हो रहा है। अभी कालूराम नामक, तेरापंथके पूज्यके पासमें दो दो छोटे छोटे ऐसे बालक मूँडे हुए देखे जाते हैं, कि जो बिचारे साधुपना किस चीडीयाका नाम है? यह भी समझनेकी शक्ति

नहीं रखते । अर्थात् बिलकुल छोटे, यानि दश वर्षके अन्दर २ के प्रायः हैं । अब बतावें, तेरापंथीके पूज्य कालुरामने, कैसी शिक्षा देकर उन बिचारे बालकोंको दीक्षा दी ? । बतलाईये, तुम्हारे मतोत्पादक—तुम्हारे माने हुए तीर्थंकर भीखमजीकी आज्ञाका खून हुआ, या कि नहीं ? ।

आगे चलकर भीखुचरित्रकी दसवीं और ग्यारहवीं ढालमें यहाँ तक गप्पमार दी है कि—भीखमजी जब यमराजके अतिथि होनेके समयपर आए, अर्थात् मरने लगे, उस समय उनको 'अवधिज्ञान' हुआ था । जरासा भी है भवका डर यदि होता तो, ऐसी बेसिरकी बात लिखता ही क्यों ? । हम पूछते हैं कि—क्या इस वर्तमान कालमें किसी धुरंधर आचार्यको भी अवधिज्ञान हुआ है?। नहीं। तब फिर इस महा अधर्मका प्रचार करनेवाले भीखमको कैसे अवधिज्ञान होगया ? । और अवधिज्ञान हुआ, इसमें प्रमाण ही क्या है? और प्रथम तो उसमें शास्त्रोक्त चारित्र ही नहीं था, तो फिर अवधिज्ञानकी संभावना ही क्या हो सकती है ?। ऐसी गप्पें ठोकनेसे क्या तेरापंथियोंकी खिचडी पक सकती है ? । कभी नहीं ।

फिर ग्यारहवीं ढालमें लिखा है:—

'प्रथमपद परमेसरूरे त्यांरा कल्याणक पांच प्रकार ।
इणविध कल्याणक त्यांरा हुआरे, इण दुसमकालमोजार' ॥१०॥

अधर्मकी हद आ चुकी । और क्या कहा जाय ? । कल्याणक किसके होते हैं ? जिसके कल्याणक होते हैं, उसको गर्भमेंसे ही कौन कौन ज्ञान होते हैं, जन्मसे कौन २ अतिशय होते हैं, ये सारी बातें पहिले कह दी गई हैं, इससे पाठक समझ गये होंगे कि—कहाँ मोक्षमें जाने वाले अर्हन् तीर्थंकर, और कहाँ दया—दान-

मूर्तिपूजा आदिको उठानेवाला भीखम। क्या कभी ऐसे अल्पज्ञ पुरुषोंके भी कल्याणक हो सकते हैं ?। भगवान्के कल्याणकोंके समयमें तो इंद्रादि देवता भक्ति करनेको आते हैं, कल्याणकोंके समय में नारकीके जीवोंको भी क्षणभर सुख होता है। कहिये, भीखमके कल्याणकोंके समयमें क्या हुआ ?।

अन्तमें जा कर तेरहवीं ढालमें भी जगह २ परमात्मा ऋषभदेवभगवान्के साथही समानता दिखलाई है। लेकिन इस विषय पर पहिले ही तेरापंथियोंकी अज्ञानताकी–अंधश्रद्धाकी फोटू खींची गई है, इस लिये यहाँ विशेष लिखनेकी जरूरत नहीं है।

अगर सामान्यदृष्टिसे देखा जाय तो भी भिखमजी, उत्तम पुरुषोंकी पंक्तिमें गणना करने योग्य नहीं मालूम होता है। क्योंकि–जिस दिन वह मरा है, उस दिन बडे कष्टोंसे इसकी मृत्यु हुई। क्योंकि प्रातःकालके एक प्रहर दिन जानेके पश्चात्, सायंकालके प्रहर डेढ प्रहर दिन रहने तक, जब तक कि, भीखमकी मृत्यु नहीं हो गई, तब तक इसकी जिव्हा बिलकुल बंध हो गई थी, अतएव अवाच्य वेदनाका अनुभव करना पडा था। अब यह सोचनेकी बात है कि–क्या, जो उत्तम पुरुष होते हैं, उनकी ऐसी मृत्यु कभी होती है ?। कभी नहीं। उत्तम पुरुषोंकी मृत्यु तो शुभ अध्यवसाय पूर्वक होती है।

सार—संक्षेपसे कहा जाय तो, जीवन चरित्रके पढनेसे मालूम होता है कि–भीखम बिलकुल निरक्षर भट्टाचार्य था। उसने अपनी मानता-पूजाके लिये ही अपने जीवनमें जो कुछ किया है, सो कि[illegible] है। अपनी पूजा करानेके लिये ही परमात्माकी पूजाका [illegible] किया है। अपनी अज्ञानताके परिणामसे ही वह सूत्रों[illegible]

न समझ सका, और मनमें आई वैसे परूपणा की । आज पर्यन्त भी उसकी परंपरामें आए हुए साधु–साध्वी मारवाड–मेवाडमें अधर्मका प्रचार कर रहे हैं, इसका मूल कारण भीखम ही है। यह, भीखमके उपदेशका ही परिणाम है कि, उसके साधु, साध्वियोंके झुंडोंके झुंडोंको साथमें रखकर घूमते हैं । साध्वियोंसे आहार पानी मंगवा कर माल उडाते हैं । एक एक दिनको छोड कर नियमसे उन्हीं श्रावकोंके वहाँ गोचरी जाते हैं। एक ही घरसे जी चाहे जितना माल उठाते हैं । सारे दिन भर, बल्कि रात्रिको भी साध्वियाँ और श्राविकाओंको बैठा ही रखते हैं । पडदेमें जाकर साध्वीके दिए हूए आहारको खाते हैं। भगवान्नें तो फरमाया है कि चित्रामणकी पुतली भी जिस मकानमें हो, उसमें नहीं रहना । और ये उपर्युक्त व्यवहार करते हैं। इससे स्पष्ट जाहिर हो जाता है कि–इस पंथके मूल उत्पादक भीखमका, उपदेश और आचार दोनों शास्त्र विरुद्ध थे ।

अस्तु, अब आगे तेरापंथियोंके मन्तव्य और आचारों पर कुछ विचार करें ।

मुहपत्ती.

यह लोकोक्ति बहुत ही सत्य है कि–'आकृतिर्गुणान् कथयति' मनुष्यकी आकृति ही, मनुष्यके गुणोंको कह देती है । और वह आकृति प्रायः करके मनुष्यके वेषादिपर विशेष आधार रखती है । तेरापंथी साधु–साध्वियोंको जिन्होंने देखे होंगे, वे अच्छी तरह जानते होंगे कि–उनकी आकृति कैसी होती है ?। हम

यहाँ, उनके वेषकी आलोचना करके पाठकोंका अधिक समय लेना नहीं चाहते, परन्तु इतना जरूर कहेंगे कि–अगर किसी मनुष्यको पहलेही पहल तेरापंथी साधुके देखनेका सौभाग्य मिले तो वह एक दफे तो उसकी आकृतिसे डरे नहीं, तो स्तम्भित तो जरूरही हो जाय। अस्तु, जो कुछ हो, परन्तु इतना तो जरूरही है कि–यदि वे जैनी साधु होनेका दावा रखते हैं, तो जैनी साधुके वेषकी दृष्टिसे तो वह उनका वेष अप्रामाणिक ही है।

जैन शास्त्रोंमें साधुओंको जो उपकरण रखने कहे हैं, उनकी खास मर्यादा वंधी हुई है। मरजीमें आवे, वैसे रखनेको नहीं कहे। लेकिन ठीकही है कि जो विचारे शास्त्रोंकी मर्यादाको नहीं समझते हैं, धुरंधर आचार्योंके वचनोंपर जिनको विश्वास नहीं है, और जो लोग हमेशा अपनी कपोल कल्पनासेही काम चलाना चाहते है, वे इस प्रकार अमर्यादित वस्तुओंको रख कर कुलिंगपनेको धारण करें; तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

खैर, इसपर विशेप कहनेकी आवश्यकता नहीं है। हम यहाँपर जो कुछ लिखना चाहते हैं, वह तेरापंथी साधु जो दिनभर मूँहपर मुहपत्ती बांध रखते हैं, इस विषयमें है। अतएव इसी विषयपर प्रथम कुछ परामर्श करें।

मुपहत्तीको मुँहपर बांधे रखना, यह व्यावहारिक दृष्टि, युक्ति और आगमप्रमाण किसीसे भी सिद्ध नहीं हो सकता। क्योंकि देखिये।

पहिले तो यह सोचना चाहिये कि–मुहपत्ती रक्खी किस लिये जाती है ?। इसके उत्तरमें मुहपत्तीको रखनेवाले सभी

कोइ स्वीकार करेंगे कि 'मुहपत्ती उपयोगसे बोलनेके लिये' रक्खी जाती है। क्योंकि साधुको जितने कार्य करनेके हैं, वे सब उपयोगसे—यतनासे करनेके हैं। जैसे दशवैकालिक सूत्रके, चतुर्थ अध्ययनकी ८ वीं गाथा, पत्र २२२ में कहा है:—

जयं चरे जयं चिट्ठे जयमासे जयं सए।
जयं भुंजंतो भासंतो पावं कम्मं न बंधइ ॥ ८ ॥

अर्थात्:—यतनासे चलते, यतनासे खड़े रहते, यतनासे बैठते, यतनासे सो रहते, यतनासे आहार करते तथा यतनासे बोलते हुए साधुको पापकर्मका बंध नहीं होता है।

कहनेका मतलब यह है कि, प्रत्येक कार्य साधुको यतना पूर्वक—उपयोगके साथ करनेके हैं। बात भी ठीकही है। 'परिणामसे बंध,' 'क्रियासे कर्म' और 'उपयोगसे धर्म' होता है। जिस क्रियामें उपयोग नहीं रहा, उस क्रियामें यदि जीवकी विराधना न भी हो, तौभी वह क्रिया दोषीली है। और उपयोग रखते हुए भी कथंचित् जीवविराधना हो भी जाय, तो उसको कर्म बंध नहीं होता। बस, इसी तरह उपयोगपूर्वक बोलनेके लिये हाथमें मुहपत्ती रखनेका भगवान्ने फरमाया है। लेकिन किसी सूत्रमें यह नहीं फरमाया कि—'उपयोग रखनेके लिये मुँहपर मुहपत्ती बांधेही रखना।' और ऐसा किसी चरित्रमें भी नहीं देखा जाता है कि—'किसीने मुँहपर मुहपत्ती बांधी हो।' जब ऐसी ही अवस्था है, तो फिर यह कहना सत्य विरुद्ध नहीं होगा कि—मुँहपर मुहपत्ती बांधना शास्त्र और व्यवहार दोनोंकी दृष्टिसे अनुचित है।

श्वेताम्बर मूर्तिपूजक साधुओंको छोड कर, तेरापंथी और ढूंढिये, दोनोंके साधु—साध्वी दिन भर मुहपत्ती मुँहपर बांधे रखते हैं।

लेकिन इन दोनोंकी मुहपत्तियोंमें फर्क है। स्थानकवासियोंकी मुहपत्ती चौडी अधिक रहती है, और तेरापंथियोंकी मुहपत्ती चौडी थोडी और लंबी विशेष रहती है। अब एकही सिद्धान्तको माननेवाले दोनोंमे ऐसा विभेद क्यों? क्योंकि जिन बत्तीस सूत्रोंको ढूंढिये मानते हैं, उन्हीं बत्तीस सूत्रोंको तेरापंथी भी मानते हैं। और ये दोनों, बत्तीस सूत्रोंके सिवाय भाष्य—चूर्णि—निर्युक्ति—टीका वगैरहको नहीं मानते हैं। फिर मुहपत्तीके बांधनेमें ऐसा फर्क क्यों? यह एक स्वाभाविक प्रश्न उपस्थित होता है। और अन्तमें इसमें यही परिणाम निकालना होगा कि—इन दोनोंका बांधना शास्त्र विरुद्ध है।

हम यह समझते थे कि—इन लोगोंमें जब इतनी प्रवृत्ति चल पडी है, तो शास्त्रोंके विपरीत अर्थोंद्वारा भी कुछ न कुछ उत्तर तो देते होंगे। लेकिन यह कल्पना मात्रही ठहरी। अभी कुछ दिन हुए, स्थानकवासी (ढूंढक) पूज्य श्रीलालजीके व्याख्यानमें, एक मनुष्यने प्रश्न किया कि—'महाराज! मुहपत्ती मूँहपर बांधना, बत्तीस सूत्रोंमेंसे किस सूत्रमें लिखा है?'। श्रीलालजीने व्याख्यानमें स्पष्ट कह दिया कि—'बत्तीस सूत्रोंमेंसे किसी सूत्रमें मूँहपर मुहपत्ती बांधना नहीं लिखा है।' इससे साफ जाहिर हो जाता है कि—'मुहपत्ती बांधनेवाले भी इस बातको तो स्वीकार करते ही हैं कि—मूँहपर मुहपत्ती बांधना शास्त्रविरुद्ध है।'

श्रीलालजीकी एक और बातसे हमें विशेष आश्चर्य हुआ। दूसरे ही दिन एक मनुष्यने श्रीलालजीसे पूछा कि—"महाराज! आपने कल फरमाया था कि—मूँहपर मुहपत्ती बांधनेका किसी सूत्रमें नहीं लिखा, तो हाथमें रखनेका लिखा है कि नहीं?" श्रीलालजीने कहा:—"हाथमें रखनेका भी नहीं लिखा"।

देखिये पूज्यजीकी मिश्रभाषा ? । पूछनेवाला भूल गया, नहीं तो उन्हें पूछना चाहिये था कि–'जब मूँहपर बांधनेको नहीं लिखा, हाथमें रखनेको नहीं लिखा, तो क्या फेंक देनेको लिखा है या गले बांधनेको लिखा है ? । और यह भी पूछना चाहिये था कि–'जब बांधनेको नहीं लिखा, तो फिर आप क्यों बांधते हैं ।' अस्तु !

यहाँ पर कहनेका तात्पर्य यह है कि–स्थानकवासी साधु-साध्वी यद्यपि मूँहपर मुहपत्ती बांधते हैं, परन्तु इतना जरूर मानते हैं कि–'मुहपत्ती बांधना सूत्रोंमें कहीं नहीं लिखा ।'

इसी तरहसे तेरापंथी भी इस बातको तो जरूर स्वीकार करते हैं कि–'मुहपत्ती बांधना, किसी सूत्रमें नहीं कहा ।' तिसपर भी बांधते हैं, और अनेक प्रकारकी कुयुक्तियां भी लगाते हैं। लेकिन उनकी, वे कुयुक्तियां क्या हैं, मानो उनकी अज्ञानताकी, भिन्न २ स्वरूपकी तस्वीरें हैं । अर्थात् उन कुयुक्तियोंसे यह जाहिर हो जाता है कि–अपने कक्केको सच्चा मनानेके लिये अपनी बुद्धिका उन्होंने कैसा दुरुपयोग किया है? ।

हम सूत्रों और युक्तियोंसे 'मुहपत्तीको हाथमें रखना' सिद्ध करें, इसके पहिले, तेरापंथी, मूँहपर मुहपत्ती बांधनेके लिये जो कुयुक्तियाँ देते हैं, उन्हींके ऊपर कुछ विचार करें ।

तेरापंथी कहते हैं कि–'गौतमस्वामी जिस समय मृगालोढियेको देखनेके लिये पधारे, उस समय मृगादेवीके कहनेसे श्रीगौतमस्वामीने मुहपत्ती बांधी है ।'

हम भी मानते हैं कि–गौतमस्वामीने, मृगादेवीके वहाँ जब पधारे, तब, उस समय दुर्गंधीके कारण मुहपत्ती बांधी । लेकिन

इससे तेरापंथियोंकी दाल कैसे गली ? । प्रियपाठक, पहिले उस अधिकारको देख लीजिये ।

जिस समय श्रीगौतमस्वामी, मृगालोढियेको देखनेके लिये पधारे, उस समय मृगादेवीने गौतमस्वामीसे कहा:—

"एहि णं तुब्भे भंते ममं अणुगच्छह जहा णं अहं तुब्भं मियापुत्तं दारयं उवदंसेमि, तए णं से भगवं गोयमे मियंदेविं पिट्ठओ समणु गच्छइ, तए णं सा मियादेवी तं कट्ठसगडियं अणुकट्टमाणी २ जेणेव भूमिघरे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता चउप्पडे णं वत्थेणं मुहबंधमाणी भगवं गोयमं एवं व० तुब्भे विणं भंते मुहपोत्तियाए मुहं बंधह, तएणं से भगवं गोयमे मियादेवीए एवं वुत्ते समाणे मुहपोत्तियाए मुहं बंधेइ २ त्ता तएणं सा मियादेवी परंमुही भूमिघरस्स दुवारं विहाडेइ तओ णं गंधो निगच्छइ"

[विपाक सूत्र पृष्ठ—२१]

भावार्थः—हे भगवन् ! आप मेरे पीछे २ आईए, मैं आपको मृगापुत्र दिखाऊं। तब श्रीगौतमस्वामी मृगादेवीके पीछे चले । मृगादेवी, उस काष्ठके शकटको खींचती हुई जहाँ भूमिगृह था, वहाँ ले आई । और आकरके, चारपडवाले वस्त्रसे मूँह बांधा । और गौतमस्वामीसे कहा:—आप भी मुखवस्त्रिकासे मुखको बांधिये । इसके बाद गौतमस्वामीने मुखवस्त्रिकासे मुख बांधा । तदनन्तर मृगादेवीने भूमिगृहके द्वार खोले, और उसमेंसे दुर्गंध आने लगी ।

अब इस पर विचार करनेका है कि—यदि गौतमस्वामीका मूँह बंधा हुआ होता तो मृगादेवी कहती ही क्यों, कि आप मूँह बांधिए ? । यदि यह कहा जाय कि—मूँह तो बंधा हुआ था, लेकिन मृगादेवीने नाक ढांकनेको कहा। तो यह भी ठीक नहीं है।

देखिये पूज्यजीकी मिश्रभाषा ? । पूछनेवाला भूल गया, नहीं तो उन्हें पूछना चाहिये था कि–'जब मूँहपर बांधनेको नहीं लिखा, हाथमें रखनेको नहीं लिखा, तो क्या फेंक देनेको लिखा है या गले बांधनेको लिखा है ? । और यह भी पूछना चाहिये था कि–'जब बांधनेको नहीं लिखा, तो फिर आप क्यों बांधते हैं ।' अस्तु !

यहाँ पर कहनेका तात्पर्य यह है कि–स्थानकवासी साधु-साध्वी यद्यपि मूँहपर मुहपत्ती बांधते हैं, परन्तु इतना जरूर मानते हैं कि–'मुहपत्ती बांधना सूत्रोंमें कहीं नहीं लिखा ।'

इसी तरहसे तेरापंथी भी इस बातको तो जरूर स्वीकार करते हैं कि–'मुहपत्ती बांधना, किसी सूत्रमें नहीं कहा ।' तिसपर भी बांधते हैं, और अनेक प्रकारकी कुयुक्तियां भी लगाते हैं । लेकिन उनकी, वे कुयुक्तियां क्या हैं, मानो उनकी अज्ञानताकी, भिन्न २ स्वरूपकी तस्वीरें हैं । अर्थात् उन कुयुक्तियोंसे यह जाहिर हो जाता है कि–अपने कक्केको सच्चा मनानेके लिये अपनी बुद्धिका उन्होंने कैसा दुरुपयोग किया है? ।

हम सूत्रों और युक्तियोंसे 'मुहपत्तीको हाथमें रखना' सिद्ध करें, इसके पहिले, तेरापंथी, मूँहपर मुहपत्ती बांधनेके लिये जो कुयुक्तियाँ देते हैं, उन्हींके ऊपर कुछ विचार करें ।

तेरापंथी कहते हैं कि–'गौतमस्वामी जिस समय मृगालोढियेको देखनेके लिये पधारे, उस समय मृगादेवीके कहनेसे श्रीगौतमस्वामीने मुहपत्ती बांधी है ।'

हम भी मानते हैं कि–गौतमस्वामीने, मृगादेवीके वहाँ जब पधारे, तब, उस समय दुर्गंधीके कारण मुहपत्ती बांधी । लेकिन

इससे तेरापंथियोंकी दाल कैसे गली ? । प्रियपाठक, पहिले उस अधिकारको देख लीजिये ।

जिस समय श्रीगौतमस्वामी, मृगालोढियेको देखनेके लिये पधारे, उस समय मृगादेवीने गौतमस्वामीसे कहाः—

" एहि णं तुब्भे भंते ममं अणुगच्छह जहा णं अहं तुब्भं मियापुत्तं दारयं उवदंसेमि, तए णं से भगवं गोयमे मियंदेविं पिट्ठओ समणु गच्छइ, तए णं सा मियादेवी तं कट्ठसगडियं अणुकट्टमाणी २ जेणेव भूमिघरे तेणेव उवागच्छइ २ त्ता चउप्पडे णं वत्थेणं मुहबंधमाणी भगवं गोयमं एवं व० तुब्भे विणं भंते मुहपोत्तियाए मुहं बंधह, तएणं से भगवं गोयमे मियादेवीए एवं वुत्ते समाणे मुहपोत्तियाए मुहं बंधेइ २ त्ता तएणं सा मियादेवी परंमुही भूमिघरस्स दुवारं विहाडेइ तओ णं गंधो निगच्छइ "

[विपाक सूत्र पृष्ठ—२१]

भावार्थः—हे भगवन् ! आप मेरे पीछे २ आईए, मैं आपको मृगापुत्र दिखाऊं। तब श्रीगौतमस्वामी मृगादेवीके पीछे चले । मृगादेवी, उस काष्ठके शकटको खींचती हुई जहाँ भूमिगृह था, वहाँ ले आई । और आकरके, चारपडवाले वस्त्रसे मूँह बांधा । और गौतमस्वामीसे कहाः—आप भी मुखवस्त्रिकासे मुखको बांधिये । इसके बाद गौतमस्वामीने मुखवस्त्रिकासे मुख बांधा । तदनन्तर मृगादेवीने भूमिगृहके द्वार खोले, और उसमेंसे दुर्गंध आने लगी ।

अब इस पर विचार करनेका है कि—यदि गौतमस्वामीका मूँह बंधा हुआ होता तो मृगादेवी कहती ही क्यों, कि आप मूँह बांधिए ? । यदि यह कहा जाय कि—मूँह तो बंधा हुआ था, लेकिन मृगादेवीने नाक ढांकनेको कहा। तो यह भी ठीक नहीं है।

क्यों कि, यदि 'नाक' ढांकनेको कह होता, तो उपर्युक्त पाठमें 'मुहं बंधह' ऐसा पाठ क्यों होता ?। क्या मृगादेवीके 'नासं बंधह' कहने पर भी गणधरमहाराजने 'मुहं बंधह' गुंथन कर दिया ? । गणधर-महाराजपर ऐसा कलंक लगानेका दुष्कृत्य तेरापंथियोंके सिवाय और कौन कर सकता है ? । खैर, उपर्युक्तवृत्तान्तसे तो यही सिद्ध हुआ कि-'गौतमस्वामीने पहिले मुहपत्ती बांधी नहीं थी । ' तेरापंथी लोग, जो उपर्युक्तवृत्तान्तको आगे करते हैं, यह अपनी अज्ञानताको अपने आपसे जाहिर करनेके बराबर करते हैं ।

जब मनुष्य, वास्तविक युक्तियोंसे-प्रमाणोंसे अपना बचाव नहीं कर सकता है, तब वह ' कहींकी इंट, कहींका रोडा ' मिला मिला करके आगे करता है, परन्तु वह वास्तविक युक्ति नहीं गिनी जाती है । जिस प्रमाणका मूल विषयके साथमें संबन्धही नहीं है, उसको आगे करना क्या है, मानो अपनी कमजोरीको अपने आपसे जाहिर करना है ।

तेरापंथी भाई भी, मुहपत्ती बांधनेके विषयमें वैसीही युक्तियोंको आगे करते हैं। देखिये, तेरापंथी साधु जीतमलजीकृत ' जैन-ज्ञानसारसंग्रह ' नामक पुस्तकके ५२ वे पृष्ठमें, ' मुखवस्त्राधिकार ' में लिखा है:-

" ज्ञाता अध्ययन आठमें, दुर्गंध व्यापि ताहि ।
पटराजा मुज मुख ढांकियां, ते दुर्गंधि नाके आय " ॥ ४ ॥

" ज्ञाता नवमे अध्यनमें, दुर्गंध व्यापि न्याल ।
मुख ढांक्या भाख्या तिहां, जिनरुख ने जिनपाल " ॥५॥

" ज्ञाता अध्ययन बारमे, जे जीतशत्रू राय ।
मूखढांके एम आंखिओ, दुर्गंध व्यापी तांहि " ॥ ६ ॥

उपर्युक्त तीनों प्रसंगोंको पाठक देख लेवें ।

ज्ञातासूत्रके आठवें अध्ययनमें 'मल्लीकुमारी' का वृत्तान्त चला है। मल्लीकुमारीके रूप लावण्यके वृत्तान्तको सुन करके, 'जितशत्रु' वगैरह छहों राजे, उससे विवाह करनेको आए हैं। मल्लीकुमारीके पिता 'कुंभराजा' ने उन छहों राजाओंके साथमें युद्ध किया है। पश्चात् मल्लीने अपने पितासे कहा है:-'आप किसी प्रकारकी चिंता न करें, मैं उन्होंको प्रतिबोध करके ठिकाने लाऊंगी।' मल्लीकुमारीने, अपने पितासे कह करके एक धातुकी रमणीय मूर्ति ऐसी बनवाई कि, जिसमें अत्यन्त दुर्गंधी वाले पदार्थ भरे। तदनन्तर उन छहों राजाओंको, उस मूर्तिके पास बैठाए, और उस पुतलीका ढकना खोला। उस समय

"तएणं ते जियसत्तूपामोक्खा तेणं असुभेणं गंधेणं अभिभूया समाणा सएहिं २ उत्तरिज्जेहिं आसाइं पिहेइ पिहेत्ता परंमुहा चिट्ठंति।" (पृष्ठ ८३८)

अर्थ:-वे जितशत्रु वगैरह छहों राजे, उस अशुभगंधसे अभिभूत होते हुए और अपने अपने उत्तरासन (दुपट्टे) से मूँह ढांक करके पराङ्मुख हो बैठे।

इसी प्रकारसे दुर्गंधके कारण ज्ञाताके नवमें अध्ययनमें जिनरिख और जिनपाल ने मूँह ढांका है, और बारहवें अध्ययनमें दुर्गंधीके कारणसे ही जितशत्रु ने मूँह ढांका है।

अब पाठक विचार कर सकते हैं कि-तेरापंथियोंकी ये युक्तियां प्रसंगोचित हैं?। जितशत्रु आदि छहों राजे, जिनरिख जिनपाल, इत्यादि ये सब गृहस्थ थे। इन्होंने दुर्गंधी आनेके कारण मूँहपर कपडा रक्खा है। मुहपत्तीका तो इन प्रसंगोंमें नामोनिशान भी नहीं है। और यहांपर मुहपत्तीका प्रसंग भी नहीं है। क्या वे

उन प्रसंगोंमें दुर्गंधीके सामने सामायिक या पौषध करनेको बैठे थे, जो तेरापंथियोंके मन्तव्यानुसार मुहपत्ती बांधें ?।

अगर तेरापंथी, मूँह ढकनेके प्रसंगोंको ही आगे करके अपना बचाव करना चाहते हैं, तो उनको, उतनी दूर २ तक पहुँचनेकी आवश्यकता ही क्या थी ?। यों ही कह देते कि–"जब भंगी लोग, शहरकी टट्टियोंको साफ करके, गाडी भरके जाते हैं, तब उसके पास होकर आने जाने वाले सैंकडों लोग मूँहपर कपडा रख करके जाते हैं, इससे सिद्ध हुआ कि–मूँहपर मुहपत्ती बांधनी चाहिये।"

वस छुट्टीपाई। कैसी उत्तम युक्ति ? ऐसी युक्तियोंको आगे करना, यह भी बुद्धिमत्ताका ही काम है !।

इसी 'मुखवस्त्राधिकार' में आगे चलकरके 'नाक' को 'मूँह' कहलानेके लिये बहुत कुछ प्रयत्न किया गया है। परन्तु यह सब प्रयत्न व्यर्थ ही है। क्योंकि इससे सिद्धि क्या होनेकी है ?।

नाकको 'मूँह' कहते हों, ऐसा हमने कहीं नहीं सुना, न किसी कोशमें भी देखा। देखिये श्रीहेमचन्द्राचार्यने, अपने 'अभिधानचिन्तामणि' कोशके तीसरे काण्डमें पृष्ठ २३३ भी कहा है:—

"तुण्डमास्यं मुखं वक्त्रं लपनं वदनानने" ॥ २३६ ॥

इसमें 'नाक' का तो नाम ही नहीं है। टीकामें भी आचार्यवर्य लिखते हैं:–'मुखे दन्तालयस्तेरं घनं चरं घनोत्तमम्'। दांतके घरको मुख कहते हैं। अब तेरापंथी नाकको कैसे 'मूँह' कहते हैं ?। अच्छा, थोडी देरके लिये हमने मान भी लिया कि–'नाक' को मूँह कहते हैं, लेकिन इससे हुआ क्या ?। दुर्गंधीके कारण 'नाक' ढकनेके प्रसंगसे, मुहपत्ती बांधे रखना तो किसी तरह सिद्ध

होगा ही नहीं ? । अच्छा, तो साथ साथ तेरापंथी यह भी तो मानते होंगे न, कि जैसे 'नाक' को 'मूँह' कहा जाता है, वैसे 'आंख' और 'कान' को भी मूँह कहना चाहिये । और यदि ऐसे मानोगे तब तो, सुनानेके समय 'मुखसे सुनो' और दिखलानेके समय 'मुखसे देखो' ऐसा ही कहना पडेगा । यह भी बडी अजब गतिकी फिलोसॉफी निकली । तेरापंथियोंकी बुद्धिमानी को, एक-बार नहीं, सहस्रवार धन्यवाद ! ।

अच्छा, तेरापंथियोंकी उपर्युक्त युक्तियां भी 'शशश्रृंग' जैसी ही प्रतीत हुई, अब आगेकी युक्तियोंको देखिये ।

तेरापंथियोंके मुखवस्त्राधिकारकी १९–२० कडीमें कहा है:–

"कर राखे वस्त्रिका, तसु तिखो उपयोग ।
तोपण अटकावत नहिं, तसु मुख खंच प्रयोग" ॥ १९ ॥
"तिखो नहीं अटकाव तसु, जतना काजस जोय ।
मुख बांधे मुखवस्त्रिका, तोपण दोष न कोय" ॥ २० ॥

इन दोनों कडियोंमें तेरापंथी क्या स्वीकार करते हैं, इसको पाठक जरा देखें। जरा तेरापंथी कहते हैं कि–'हाथमें मुहपत्ती रक्खे, उसमें भी कोई अटकाव नहीं है, और मूंहपर बांधे, इसमें भी दोष नहीं' । कैसी मिश्रभाषा ? । यह तो ऐसा ही कथन हुआ, जैसे 'मरीचि' ने कपिलसे कहा था:–'काविला इत्थं पि इहयं पि' अर्थात् 'हे कपिल ! मेरेमें भी धर्म है, और उनमें (ऋषभदेवमें) भी धर्म है।' इसी तरहसे तेरापंथी भी कहते हैं 'हम बांधते हैं, उसमें भी कोई दोष नहीं, और जो हाथमें रख करके उपयोग रखते हैं, उसमें भी कोई दोष नहीं।' लेकिन तेरापंथियोंने इस बातका कभी विचार किया है कि मरीचीको, मिश्रभाषणसे कितना भव भ्रमण

करना पडा ? मुहपत्तीको हाथमें रखने वाले तो शास्त्रानुकूल रखते हैं, परन्तु मूँहपर बांधने वाले-आप लोग शास्त्रसे प्रतिकूल करते हो, इसका भी तो कुछ विचार करो।

हम पहले ही कह गये हैं कि—भगवान्ने उपयोग पूर्वक बोलनेको कहा है, और जब मुहपत्तीको बांध ही दी, तो फिर उपयोग किस बातका रहा ? दिनभर बडबड करते ही रहो, क्या तकलीफ होती है ?। तकलीफ पडती है उपयोग रखनेमें, जिसमें कि धर्म कहा है। और मुहपत्ती बांधनेवालोंको तो उपयोग रखनेकी आवश्यकता ही नहीं रही। तो फिर उसमें धर्मही कैसे कहा जाय ?।

तेरापंथी कहते हैं:—

" सूठ तणो जे गांठीओ गणिदेवाद्धि संवाद ।
भोगवणो भूली गया संध्या आयो याद " ॥ २३ ॥
" जाण्युं बुद्धि हिणी पडी लिख्या सूत्र सुखराश ।
वीरनिरवाण गया पछी नवसय ऐसीवास" ॥ २४ ॥

बिलकुल ही झूठी बात है। श्रीदेवर्द्धिगणिक्षमाश्रमण सूंठका गांठिया भूले ही नहीं। तो फिर इस निमित्तसे 'पुस्तकारूढ किया' ऐसा कहना सरासर अपनी अज्ञानताको प्रकट करना ही है। सूंठका गांठिया कानमें रह गया था श्रीवज्रस्वामिको। देखिये श्री वज्रस्वामि-प्रबन्धमें लिखा है:—

" श्लेष्मरोगापनोदायानाययद्विश्वभेषजम् ।
उपयुक्तावशेषं च श्रवणे धारयत्ततः ॥ १६८ ॥
प्रत्युपेक्षणकाले तत्तत्रस्थं चापराह्णिके ।
मुखवस्त्रिकयास्त्रस्यत्कर्णयोः प्रतिलेखने ॥ १६९ ॥
दध्यावायुरहो क्षीणं विस्मृतिर्यन्ममोदिता । "

(प्रभावक चरित्र पृष्ठ ११)

अर्थात्-श्रीवज्रस्वामीने श्लेष्मरोगके कारणसे सूंठ मंगवाई। उसको उपयोगमें लेते हुए जितनी बची, उतनी कानमें रखली। जब सायंकालकी प्रतिलेखना (पडिलेहणा) करने लगे, उस समय मुखवस्त्रिकासे कानोंकी पडिलेहण करते हुए सूंठका गांठिया नीचे गिर पडा। अतएव वज्रस्वामीने विचार किया कि-मुझको ऐसी विस्मृति उदय आई, इससे मालूम होता है कि-अब मेरी आयुष्य क्षीण है।

प्रियपाठक, है यहाँपर पुस्तकारूढका नामोनिशान भी ?। कहीं की बातको, कहीं घुसा करके अपनी इष्टसिद्धि करनेवाले तेरापंथियोंके प्रपंचोंको देखने चाहियें। ऐसे प्रपंचोंमें, सिवाय भोले-अज्ञात लोगोंके और कोई भी नहीं फँस सकता, यह बात भी तेरापंथियोंको अवश्य ध्यानमें रखनी चाहिये।

तेरापंथियोंका यह कहना भी ठीक नहीं समझा जाता है कि-'हमसे उपयोग नहीं रहता, इस लिये बांधते हैं।' क्योंकि-सिर्फ बोलनेके समयमें, मूँहपर मुहपत्ती रखनेका उपयोग नहीं रख सकते हैं, तो फिर पांचों महाव्रतोंके पालनेमें कैसे उपयोग रख सकते होंगे ?। यह एक विचारनेकी बात है। एवं जैसे मुहपत्तीका उपयोग नहीं रख सकते, वैसे ओघेका (रजोहरणका) भी उपयोग क्या रहता होगा ?। कभी चलते फिरते जरूर बगलमें रखना भूल जाते होंगे। और इस न्यायसे तो ओघेको भी कहीं न कहीं बांध करके ही फिरना चाहिये।

प्रियपाठक ! तेरापंथियोंकी चतुराईको देखिये। एक ओर तो तेरापंथी कहते हैं:-" जो लोग यह कहते हैं कि-इस कालमें जैसा चाहिये वैसा चारित्र नहीं पल सकता, यह उनकी भूल है।" जैसे भीखुचरित्रकी तीसरी ढालमें लिखा है:—

"बलसंघयण हीणाकरीरे, पूरो न पाले आचार ।
आगुच जिनजी इम भाषियोरे, इम कहेसे भेषधार ॥ ६ ॥"

और दूसरी ओर स्वयं मुहपत्तीको हाथमें रख करके उपयोग पूर्वक बोलनेकी भी शक्ति नहीं रखते हैं। अब कहाँ रही जैसा चाहिये वैसे चारित्र पालनेकी शक्ति ?। बिचारे, उपयोगसे बोलनेकी भी शक्ति रखते नहीं (क्योंकि वे स्वयं स्वीकार करते हैं) तो फिर और बातोंमें क्या उपयोग रख सकते होंगे ? । अस्तु ।

तेरापंथी भाई, अपनी बातको स्थापन करनेके लिये एक और दलीलकोभी पेश करते हैं । वे करते हैं कि-" मुहपत्तीको हाथमें रखनेवाले भी व्याख्यानके समयमें मूँहपर बांधते हैं। जैसे वे एक प्रहरतक बांधते हैं, वैसे हम दिनभर बांधते हैं । "

ठीक है, लेकिन एक वात जरा बुद्धिसे विचारनेकी है। अव्वल तो व्याख्यानमें मुहपत्ती बांधनेका रिवाज, अब उतना नहीं है, जितना पहिले किसी जमानेमें था। लेकिन वह क्यों था ? इसका कारण भी तो खोजना चाहिये । इसका कारण यह थाः-

जिस समयमें कागज नहीं बनते थे, उस समयमें शास्त्र ताडपत्रोंके ऊपर लिखे जाते थे । जिन्होंने ताडपत्रोंकी प्रतियाँ देखी होंगी, उनको मालूम होगा कि-ताडपत्र लंबे तो हाथ हाथ-डेढ डेढ हाथके होते थे, और चौडे तीन या चार आंगुलकी पट्टीके । जब उन ताडपत्रों पर लिखे हुए शास्त्र व्याख्यानमें वांचे जाते थे, तब व्याख्यान करनेवालेको अपने दोनों हाथोंसे उन लंबे पत्रोंको पकडना पडता था । जब दोनों हाथ पुस्तकके ही पकडनेमें रहे, तब मुहपत्तीको कहाँ रखना ? । और विना मुहपत्तीके बोलें, तो भी जीवोंकी विराधना और ज्ञानकी आशातना हो। बस, इसी

कारणसे व्याख्यानके समयमें मुहपत्ती बांधते थे। और वह रिवाज, कारणके नष्ट होने पर भी कहीं कहीं अभी तक चला आता है। लेकिन व्याख्यानके समयमें बांधने वाले भी यह कभी नहीं सिद्ध कर सकते हैं कि–यह शास्त्रानुकूल प्रवृत्ति है। तेरापंथियोंका यह कहना तो सरासर झूठ ही है कि–'व्याख्यानमें एकप्रहर बांधते हैं'। एक प्रहर कभी नहीं बांधते। सारा व्याख्यान ही घंटे डेढ घंटेका होता है, उसमें भी आधा व्याख्यान होनेके बाद मुहपत्तीकी पडिलेहणा करते हैं। उतने समयमें जीवोत्पत्ति भी नहीं होती, जिसका कारण दिखलाकर तेरापंथी दिन भर बांधना स्थापन करते हैं।

दिनभर मुहपत्तीके बांधे रखनेसे वह बिलकुल थूंकसे गीली (आली) हो जाती है, और इससे उसमें संमूर्च्छिम जीवोंकी उत्पत्ति भी होती है। तेरापंथी कहते हैं कि–मूँहसे निकले हुए कफमें जीवोत्पत्ति नहीं होती, यह भी बिलकुल शास्त्रविरुद्ध ही कथन है। क्योंकि–पन्नवणासूत्रके, प्रथमपद,–पत्र ५५ में इस प्रकारका पाठ है:—

"कहि णं भंते ! संमुच्छिममणुस्सा संमुच्छंति ? गोयमा ! अंतो मणुस्सखेत्ते पणयालीसाए जोयणसयसहस्सेसु अड्ढाइज्जेसु दीवसमुद्देसु पण्णरससु कम्मभूमीसु तीसाए अकम्मभूमीसु छप्पन्नाए अंतरदीवएसु गब्भवक्कंतियमणुस्साणं चेव उच्चारेसु वा पासवणेसु वा खेलेसु वा सिंघाणएसु वा वंतेसु वा पित्तेसु वा पूएसु वा सोणिएसु वा सुक्केसु वा सुक्कपोग्गलपरिसाडेसु वा विगयजीवकलेवरेसु वा इत्थीपुरिससंजोएसु वा नगरनिद्धमणेसु वा सव्वेसु चेव असुइएसु ठाणेसु एत्थ णं संमुच्छिममणुस्सा संमुच्छंति"

अर्थः—हे भगवन् ! वे संमूर्च्छिम मनुष्य कहाँ उत्पन्न होते हैं ? । हे गौतम ! ४५ लाख योजन मनुष्यक्षेत्रमें, ढाईद्वीपमें, पनरह कर्मभूमिमें, तीस अकर्मभूमिमें, ५६ अंतरद्वीपमें, गर्भज-मनुष्योंकी विष्ठामें १, पिशाबमें २, कफमें ३, श्लेष्ममें ४, वमनमें ५, पित्तमें ६, राधमें ७, लोहीमें ८, वीर्यमें ९, शुष्कपुद्गलके परिवर्तनमें, १०, जीवरहित कलेवरमें ११, स्त्री—पुरुषके रुधिर-वीर्यके संयोगमें १२, खाल—गटरमें १३, और समस्त अशुचि पदार्थोंमें १४, संमूर्च्छिम मनुष्य उत्पन्न होते हैं ।

अब, बतावें तेरापंथी, भगवान्के वचनानुसार तुम्हारी मुहपत्ति-योंमें, जो कि दिनभर मूँहपर बांधे रखनेसे आली हो जाती हैं, संमूर्च्छिम जीवोंका उत्पन्न होना सिद्ध हुआ कि नहीं ? । अब वे जीव, जो मरेंगे, उत्पन्न होंगे, मरेंगे उत्पन्न होंगे, उसका पाप आपको लगेगा, या उन मुहपत्तियोंको ? ।

यहाँपर तेरापंथी लोग, एक यह युक्ति आगे करते हैं कि, " जैसे किसीको फोडा हुआ हो, उसपर पट्टीके बांधनेसे उस पट्टीमें जैसे जीवोत्पत्ति नहीं होती, वैसे मूँहपर मुहपत्ती बांधनेसे उसमें भी जीवोत्पत्ति नहीं होती । " लेकिन यह युक्ति ठीक नहीं है । फोडेके ऊपर बांधी हुई पट्टीमें जीवोत्पत्ति नहीं होती, क्योंकि वह पट्टी कसकरके बांधनेसे शरीरकी गर्मीका असर पहुँचता है । परन्तु आप लोग, मुहपत्ती, मूँहपर कसकरके नहीं बांधते । अतएव खुली रहती है । इससे उष्णताकी असर उसपर नहीं होती । और इसीसे मुहपत्तीमें लगे हुए थूंक-कफमें अवश्य जीवोत्पत्ति होती है ।

हम समझते हैं कि—शायद ऐसे अशुचिपदार्थोंमें अशुचिपना नहीं माननेके कारणहीसे तेरापंथी लोग, स्त्रियोंके रजस्वला

धर्मको नहीं मानते हैं। हमारे ही शास्त्रोंमें नहीं, समस्त धर्मके शास्त्रोंमें यह प्रतिपादित किया गया है कि–शरीरमें किसी जगह भी अशूचिपदार्थ लग जाय, तो उसको साफ करके ही कोईभी कार्य करो। लेकिन तेरापंथियोंको इस नियमसे कुछ भी ताल्लुक नहीं है। उनकी साध्विएं–श्राविकाएं रजस्वला धर्ममें आनेपर भी पढना–लिखना और घरका सब कार्य करेंगीं। बतलाईये, बुद्धिके निर्मल रहनेका है एकभी कारण ?। जब रजस्वला धर्म तकको नहीं मानते हैं, तो फिर थूंकसे भरी हुई मुहपत्ती मूँहपर बांधे रक्खें, तो इसमें आश्चर्यकी बातही क्या है ?।

तेरापंथी, एक इस युक्तिको भी पेश करते हैं कि–" खुले मूँहसे बोलनेसे वायुकायके जीवोंकी हिंसा होती है।" लेकिन यह उन लोगोंकी भूल है। अव्वल तो तेरापंथी इस बातको समझही नहीं सके हैं कि–' खुले मूँहसे क्यों नहीं बोलना चाहिये ?।' खुले मूँहसे नहीं बोलनेका खास कारण तो यही है कि– ' संपातिम जीवोंकी रक्षा हो, वायुकायकी रक्षा के लिये नहीं। क्योंकि–भाषावर्गणाके पुद्गल चारस्पर्शी होनेसे, आठ स्पर्शी वायुकायके जीव नहीं हणे जाते हैं। तिसपर भी अगर यह मानलें कि– 'भाषावर्गणाके पुद्गलोंके पीछे निकलती हुई हवासे वायुकायके जीव हणे जाते हैं,' तौ भी यह तो कभी होही नहीं सकता कि–मूँहपर मुहपत्ती बांधनेसे उनका बचाव हो। मूँहकी हवा तो किसी न किसी द्वारा निकलेगी ही। चाहे नाक द्वारा निकले, चाहे मूँह-द्वारा। यदि मूँहकी हवा बाहर न निकलने पावे, और अन्दरकी अन्दर रूंधी जाय, तो मनुष्य बचे ही नहीं। लेकिन यह तो तेरापंथियोंसे भी नहीं होता; तो फिर मुहपत्ती बांधकर वायुकायके

जीव बचानेका घमंड रखना है, यह बिलकुल झूठा नहीं तो और क्या ?।

मुखवस्त्रिकाधिकारके अन्तमें भगवतीसूत्र और दशवैकालिकका प्रमाण देकर यह दिखलानेकी कोशिशकी है कि–'खुले मूँहसे नहीं बोलना चाहिये।' लेकिन इस बातको अस्वीकारही कौन करता है ?। बेशक, खुले मूँहसे नहीं बोलना चाहिये। लेकिन बांधना भी तो नहीं चाहिये। बांधनेके विषयमें किसी सूत्रके प्रमाण दिये होते तो अच्छा होता। खैर, तेरापंथी बांधनेके विषयमें एकभी प्रमाण नहीं दे सकते हैं, परन्तु हम नहीं बांधनेके विषयमें अभी और शास्त्रीय प्रमाण देते हैं।

मुखवस्त्रिकाके, मुहपत्ती, मुहपोतिया, हत्थग, मुहणंतग ये सब पर्यायवाची शब्द हैं। इसी मुखवस्त्रिकाके बांधनेके विषयमें आज तक हमें एक भी प्रमाण न मिला। न कोई मुहपत्तीके बांधनेवाले भी दिखा सकते हैं, जो बात ऊपर के वृत्तान्तसे पाठकोंके समझमें आभी गई होगी।

वास्तवमें देखा जाय तो मुहपत्ती बांधना किसी प्रकारसे सिद्ध हो ही नहीं सकता है। क्योंकि–एक स्थूल बातको देखिये। जिस समय, प्रतिक्रमण या सामायिक करते हैं, उस समय काउस्सग करनेके पहिले, "अन्नत्थ ऊससिएणं, नीससिएणं, खासिएणं, छीएणं, जंभाइएणं," इत्यादि पाठ कह करके इस प्रकारके आगार रखते हैं कि–"यदि काउस्सगमें हमें श्वासोच्छ्वास आवें, खांसी आवे, छींक आवे, बगासा आवे तो हम अपने हाथसे मूँहको ढांकें, इससे हमारा काउस्सग भांगे नहीं।"

अब विचारनेकी बात है कि–यदि मूँहपर मुहपत्ती बांधी होती तो, इस प्रकारके आगारोंके रखनेकी आवश्यकता ही क्या थी ?। इससे सिद्ध होता है कि–मुहपत्ती खास हाथमें ही रखनेकी है।

ऐसे ही एक और पाठको भी देखिये । आचारांगसूत्र; द्वितीय श्रुतस्कंधके दूसरे अध्ययनके तीसरे उद्देशेके, पृष्ठ २४७ में इस प्रकारका पाठ है:—

"से भिक्खू वा भिक्खुणी वा ऊससमाणे वा णीससमाणे वा कासमाणे वा छीयमाणे वा जंभायमाणे वा उड्डोए वा वातणिसग्गे वा करेमाणे पुव्वामेव आसयं वा पोसयं वा पाणिणा परिपिहित्ता तओ संजयामेव ऊससेज्ज वा जाव वायणिसग्गं वा करेज्जा।"

अर्थात्:—साधु, साध्वी, संथारा करनेके बाद श्वासोच्छ्वास लेते हुए, खांसी लेते हुए, छींकते हुए, बगासा खाते हुए, उद्गार करते हुए, अथवा वातोत्सर्ग करते हुए, मुख और अधिष्ठानको अपने हाथसे ढांककर, वे कार्य यतना पूर्वक करे।

इससे भी स्पष्ट जाहिर होता है कि—मुहपत्ती, बांधनेके लिये नहीं है। क्योंकि—देखिये, उपर्युक्त प्रसंगपर यदि मुहपत्ती बांधी हुई होती, तो हाथसे मूँह ढकनेको कहते ही क्यों!।

अच्छा, एक और प्रसंगको भी देखिये। जिस समय हरिकेशी मुनि, यज्ञ करनेवाले ब्राह्मणोंके पास गये, उस समय, ब्राह्मण आपको देखकर इस प्रकार निंदायुक्त वचन बोले:—

"कयरे आगच्छई दित्तरूवे काले विगराले पोक्कनासे।
उमचेलए पसुपिसायभूए संकरदूसं परिहरिय कंठे" ॥६॥
(उत्तराध्ययन, अ—१२, पृष्ठ-३५१)

---

1 राजकोटके प्रीन्टींग प्रेसमें छपा, जिसका भाषान्तर प्रो० रवजी देवराजादिने किया है।

अर्थः—अरे ! यह बीभत्सरूपवाला, काला, विकराल, बैठी नाकवाला, खराब वस्त्रोंवाला, पिशाचरूप तथा कंठमें सडे हूए वस्त्रोंको पहन करके कौन आता है ? ।

ब्राह्मणोंके इस कथनसे हरिकेशीमुनिके वेशका परिचय हो जाता है । यद्यपि ये वचन ब्राह्मणोंने निंदाप्रयुक्त कहे हैं, परन्तु इससे यह तात्पर्य जरूर निकाल सकते हैं कि—'विकराल' शब्दके कहनेसे हरिकेशी मुनिके मुखपर मुहपत्ती बांधी हुई नहीं थी । क्योंकि—संसारके व्यवहारमें यह देखा जाता है कि—'विकराल शब्दका लोग उसी जगह व्यवहार करते हैं कि जहाँ लंबे—मोटे दांत देखे जाँय । 'अनेकार्थसंग्रह' के १२३२ वें श्लोकमें भी 'करालो रौद्रतुङ्गोरुव्रणतैलेषु दन्तुरे' कह करके कराल (विकराल) शब्दका 'दन्तुर' ऐसा दूसरा नाम ही दिया है । और यदि हरिकेशी मुनिके मुख पर मुहपत्ती बांधी हुई होती, तो न उनके दांत देखलाई देते और न 'विकराल' शब्द ही कहते ।

इसी उत्तराध्ययनसूत्रके २६ अध्ययनकी २३ वीं गाथाको भी देखिये । यहाँ पर प्रतिलेखनाकी विधिका अधिकार चला है । इसमें कहा हैः—

"मुहपत्तियं पडिलेहित्ता पडिलेहेज्ज गुच्छयं ।
गुच्छगलायंगुलिए वत्थाइं पडिलेहए ॥" २३ ॥

[पृष्ठ ७७२]

अर्थात्—मुहपत्तीकी पडिलेहणा करके गुच्छे (पातरोंके बांधनेका ऊनी वस्त्र) की पडिलेहणा करे । फिर अंगुलीमें गुच्छेको रखकरके, झोलीके ऊपर रखनेके पल्लोंकी पडिलेहणा करे ।

यहाँपर भी एक विचारनेकी बात है कि-मुहपत्तीकी पडिलेहणाके समय यह नहीं कहा कि–' खोल करके पडिलेहण करे ' अथवा ' पडिलेहणकरके बांध ले । ' एवं ऐसा भी कहीं नहीं कहा कि- ' मुहपत्तीकी पाडिलेहणा करनेके समय दूसरी मुहपत्ती मूँहपर बांधले । ' दो मुहपतियोंके रखनेकाही निषेध है तो फिर बांधनेका और खोलनेका कहें ही कैसे ? अस्तु,

इसी प्रकारसे भगवतीसूत्रके, दूसरे शतकके पांचवे उद्देशे पत्र–१९० में श्रीगौतमस्वामीके अधिकारमें भी लिखा है कि:—

" तएणं से भगवं गोयमे छट्ठक्खमणपारणयंसि पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेइ, बीयाए पोरिसीए ज्झाणं ज्झियाए, तइयाए पोरिसीए अतुरियमचवलमसंभंते मुहपोत्तियं पडिलेहेइ, पडिलेहेइत्ता भायणाइं वत्थाइं पडिलेहेइ, पडिलेहेइत्ता भायणाइं पमज्जइ, पमज्जइत्ता भायणाइं उग्गाहेइ, उग्गाहेइत्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छइत्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ, णमंसइ, वंदइत्ता णमंसइत्ता एवं वयासी"

अर्थः—तब श्रीगौतमस्वामी, छट्ठके पारणेके दिन, प्रथम पोरिसीमें सज्झाय करते हैं, द्वितीय पोरिसीमें ध्यान करते हैं अर्थात् अर्थ विचरते हैं और तीसरी पोरिसीमें शनैः शनैः, मनकी अचपलतासे, असंभ्रान्त अर्थात् यतनापूर्वक मुहपत्ती की पडिलेहणा करते हैं, पडिलेहणा करके, भाजन (पात्र) तथा वस्त्र पडिलेहते हैं, उनकी पडिलेहणा करके भाजनोंको प्रमार्जते हैं, प्रमार्जन करके भाजनोंको ग्रहण करते हैं, और ग्रहण करके जहाँ श्रमण भगवान् महावीर स्वामी हैं, वहाँ आते हैं। आकरके श्रमण भगवान् महावीरस्वामीको वंदणा–नमस्कार करते हैं। वंदणा–नमस्कार करके इस प्रकार कहते हैं।

उपर्युक्त पाठमेंभी यह देखनेका है कि—मुहपत्तीकी पडिलेहणा करनेको कहा, परन्तु साथ साथ यह नहीं कहा कि–'मुहपत्ती छोड करके पडिलेहणा करे, और पडिलेहणा करके फिर बांधे।'

इससे भी हाथमें रखना ही सिद्ध होता है।

हम पहले कह चुके हैं कि—मुहपत्ती, कई नामोंसे शास्त्रोंमें उल्लिखित है। जैसे मुहपत्ती, मुहपोत्तिया वगैरह। वैसे ही मुहपत्ती का 'हत्थग' नाम भी है। जैसे दशवैकालिकसूत्रके पांचवें अध्ययनकी ८३ गाथामें कहा है:—

" अणुन्नवित्तु मेहावी, पडिच्छन्नंमि संवुडे।
हत्थगं संपमज्जित्ता, तत्थ भुंजिज्ज संजए"॥८३॥ पृष्ठ ३०९।

अर्थात्—बुद्धिमान् संयत (साधु), गृहस्थकी आज्ञा लेकरके, ढके हुए स्थानमें उपयोग पूर्वक, हत्थगं यानि मुहपत्तीसे (हस्तादि अवयवोंको) पूंजकरके उसी स्थानमें आहार करे।

यहाँ पर 'हत्थग' शब्द मुहपत्तीका पर्यायवाची है। और उसका अर्थ भी 'हाथमें रही हुई' ऐसा स्पष्ट है। इससे भी जाहिर होता है कि—मुहपत्ती हाथमें ही रखनेकी है—मूँहपर बांध रखनेकी नहीं।

ऊपरके पाठमें 'हत्थग' यानि मुहपत्तीकी पडिलेहणा, आहार करनेके समयकी कही हुई है, उसी प्रकारसे 'ज्ञाता' सूत्रके सोलहवें अध्ययनमें धर्मरुचि अनगारकी कथा चली है। धर्मरुचि अनगार 'नागश्री' नामक ब्राह्मणीके वहाँसे कडुतुंबका शाक ले आए हैं। इनके गुरु श्रीधर्मघोषने कहा है कि–'इसके खानेसे प्राणकी हानि होगी, इस लिये शुद्ध स्थानमें जाकरके परठवणा चाहिये। धर्मरुचि, परवठणेके लिये चले। वहाँ जानेके बाद

उस शाकमेंसे एक बिंदु निर्जीव भूमिमें गिराया, तो उसपर, हजारों कीडिएं इकट्ठीं हो गईं, और मरभी गईं। इसको देखकर धर्मरुचिने विचार किया कि–'यदि इस शाकको परठव दूँगा तो वहुत जीवोंकी हिंसा होगी, इस लिये मैं ही इसको खा जाऊं' बस।

"एवं संपेहेइ २ त्ता मुहपत्तियं पडिलेहइ २ त्ता सिसोवरि कायं पमज्जेइ २ त्ता तं सालइयं तित्तकडुयं बहुनेहावगाढं बिलमिव पण्णगभूएणं अप्पाणेणं सव्वं सरीरकोट्ठंसि पक्खिवइ।"

अर्थात्–ऐसा विचार करके मुहपत्तीकी पडिलेहणा की। पडिलेहणा करके मस्तक सहित काया पडिलेही। प्रमार्जन करके वह बहुत तेलसे पकाया हुआ कटुतुंबेका शाक, धर्मरुचिने, जैसे बिलमें सर्प प्रवेश करे, वैसे अपने कोठेमें डाल दिया।" (पृष्ठ ११६२)

यहाँ कहनेका तात्पर्य यह है कि--आहार करनेके समय जैसे मुहपात्तिकी पडिलेहणा धर्मरुचिने, की है, वैसे दशवैकालिकके उपर्युक्त पाठमें में भी 'हत्थगं' शब्दसे 'मुहपत्ती' लेनेकी है, न कि दूसरी कोई चीज।

चौदपूर्वधर श्रुतकेवली श्रीभद्रबाहुस्वामी, कायोत्सर्ग (काउस्सग) किस तरह करना, इस विषयमें आवश्यकनिर्युक्तिके पांचवें अध्ययनमें लिखते हैं:—

"चउरंगुल, मुहपोत्ती उज्जुए डब्बहत्थरयहरणं।
वोसट्ठचत्तदेहो काउस्सग्गं करिज्जाहि॥ ४९॥

अर्थात्–दोनों पैरोंके वीचमें चार अंगुलका अन्तर रख कर खडे रहेना, मुहपत्ती दाहिने हाथमें, और ओघा बाये हाथमें रखना, फिर अपने शरीरको वोसराकर कायोत्सर्ग करे।

अब देखिये, यहाँपर भी मुहपत्ती हाथमें रखना ही कहा।

कितने प्रमाण दें। ऐसे अनेकों प्रमाण दे सकते हैं, जिससे कि मुहपत्तीका बांधना न सिद्ध हो। जैनसूत्रोंको पढ जाईये, और बडेबडे धुरंधर आचार्योंके बनाए हुए ग्रन्थोंको देख जाईये। एकभी स्थान ऐसा नहीं मिलेगा कि–मुहपत्ती बांधना सिद्ध हो। जैन शास्त्रोंमें ही क्यों, हिन्दु धर्मशास्त्रोंमें भी जहाँ जहाँ जैनसाधुओंका वर्णन आया है, वहाँ भी किसी जगह यह नहीं लिखा कि–जैनके साधु मूँहबंधे होते हैं। देखिये, शिवपुराणके २१ वें अध्यायमें लिखा है:—

> " मुंडं मलिनवस्त्रं च कुंडीपात्रसमन्वितम्।
> दधानं पुञ्जिकां हस्ते चालयन्तं पदेपदे " ॥ १ ॥
> " वस्त्रयुक्तं तथा हस्तं क्षिप्यमाणं मुखे सदा।
> धर्मेति व्याहरन्तं तं नमस्कृत्य स्थितं हरेः " ॥२॥

अर्थः–मुंडे हुए मस्तकवाले, मलिनवस्त्रवाले, काष्ठके पात्र करके युक्त, हाथमें रजोहरणको धारण करनेवाले, पदपदको देखकर चलते हुए, तथा वस्त्रयुक्त हाथवाले, वार २ वह वस्त्रमुखपर रख कर 'धर्मलाभ' इस प्रकारसे बोलते हुए, ऐसे हरिके पास रहे हुए साधुको नमस्कार करके।

उपर्युक्त वृत्तान्तसे जैनसाधुका वेष स्पष्ट जाहिर होता है। यदि मूँह बंधा हुआ होता, तो 'वस्त्रयुक्तं तथा हस्तं' कहते ही क्यों? यों ही कहते कि–मूँहबंधा, जैसा कि आजकल ढूंढक–तेरापंथी साधुओंको देखकर लोग कहते हैं।

इत्यादि अनेकों प्रमाणोंके मिलने पर भी दुराग्रही लोग अपने दुराग्रहको न छोडें, तो इसमें दूसरोंका उपाय नहीं है। वास्तवमें देखा जाय तो मुहपत्ती बांधना किसी प्रकारसे सिद्ध नहीं हो सकता। बल्कि जैनदृष्टिसे कुलिंगपना ही है। और यह कुलिंगपना

मूर्तिपूजाका निषेध करनेवाले लोंकेसेंभी नहीं शुरु हुआ था। लोंकेके मत निकालनेके करीब दोसो वर्ष पश्चात् लवजीने यह कुलिंगपना धारण किया। यह बात हम ही नहीं कहते, किन्तु ढूंढकसाध्वी पार्वती, अपनी बनाई हूइ 'ज्ञानदीपिका' नामक पुस्तकके १३ वें पृष्ठमें भी लिखती है कि:—

"इस रीतीसे पूर्वक यति लोकोंकी क्रिया हीन हो रही थी, सोई पूर्वक यतियोंकी लवजी नाम यतिने क्रिया हीन देखकर अनुमान १७२० के सालमें अपने गुरुको कहने लगे कि—तुम शास्त्रोंके अनुसार आचार क्यों नहीं पालते ? । तब गुरुजी बोले कि—पञ्चम कालमें शास्त्रोक्त संपूर्ण क्रिया नहीं हो सक्ती, तब लवजी बोले कि—तुम भ्रष्टाचारी हो, मैं तुम्हारे पास नहीं रहूँगा। मैं तो शास्त्रोंके अनुसार क्रिया करुंगा, जब उसने मुखवस्त्रिका मुखपर लगाई और दो चार यतियोंको साथ लेके देश देशमें फिरने लगे।"

खैर, इतनी रामकहानीसे अपनेको कुछ तालुक नहीं है। यहाँ देखनेका सिर्फ यही है कि—मुहपत्ती बांधना सं० १७२० से शुरु हुआ है।

लवजी ऋषिने किसीभी कारणसे मूँह बांधना शुरु किया हो, परन्तु हमें तो यही कारण मालूम होता है कि—लवजीके मनमें विचार उत्पन्न हूआ हो कि—"हमारे वडे लोगोंने परमात्माकी मूर्तिको उत्थापन करनेका महान् दुष्कृत्य किया है, तो अब हम लोगोंको उचित है कि-संसारमें किसीको मूँह न दिखावें। क्योंकि संसारमें जो महान् दुष्कृत्य करता है, वह लज्जित होकर किसीको मूँह नहीं दिखाता।"

बस, इसी विचारसे लवजीने मूँहपर मुहपत्ती बांधना शुरू किया मालूम होता है। और यही परंपरा ढूंढियोंमेंसे तेरापंथियोंमें भी आजतक चली आई है।

मुहपत्तीके विषयमें बस, इतनाही लिखकर, अब हम तरोपंथियोंके उठाये हुए **दया—अनुकंपा** के विषयमें कुछ लिखें।

अनुकंपा.

अनुकंपा, एक ऐसी वस्तु है कि-वह संसारके समस्त मनुष्योंके हृदयमें स्वाभाविक ही रही हुई है। जैन, बौद्ध, हिन्दु, मुसलमान, और चाहे इसाई हो, चाहे कसाई, सभीने अनुकंपाको अपने हृदयोंमें स्थान दिया है। इस अनुकंपाको हृदयसे दूर करनेवाले, कुदरतसे युद्ध कर, मानों उसको हरानेकी चेष्टा करते हैं।

जैन धर्मका तो खास सिद्धान्त ही अहिंसा—दया—अनुकंपा है। क्योंकि-**दशवैकालिक** सूत्रके प्रथम अध्ययनकी प्रथमही गाथामें कहा है:—

"धम्मो मंगलमुक्किट्ठं अहिंसा—संजमो तवो।
देवावि तं नमंसंति जस्स धम्मे सया मणो" ॥ १ ॥

इस अहिंसा लक्षण धर्मको माननेका दावा रखनेवालेभी दया-अनुकंपाका निषेध करें, इस जैसा दुःखका कारण और क्या हो सकता है ?। यह तो वैसाही हुआ जैसे, **'सलिलादग्निरुत्थिता'** पानीमेंसे अग्निका उत्पन्न होना।

जिन लोगोंके लिये यह 'हितशिक्षा' लिखी जाती है, वे (तेरापंथी) 'अहिंसा' को मानते हुए भी अनुकंपाको नहीं मानते हैं, यह उस मतके उत्पादककी बुद्धिके वैपरीत्यका ही परिणाम है। अन्यथा 'अपने हाथसे किसी जीवको न मारना', यही धर्म समझ कर, 'मरते हुए जीवको बचानेमें–रक्षाकरनेमें अधर्म' समझते ही क्यों ? ।

'किसी जीवको न मारना' यह अहिंसा, और 'दुःखी जीवोंको दुःखसे मुक्त करना–रक्षा करना, यही दया,' इस प्रकार दोनों शब्दोंकी व्याख्या की जाय, तो कहना होगा कि–तेरापंथी समाजमें दया है ही नहीं। और जिस समाजमें–जिस धर्ममें धर्मकी जड–मूल दया ही नहीं है, वह समाज या धर्म संसार समुद्रसे तारनेको समर्थ हो ही कैसे सकता है ? ।

तेरापंथी 'हम अनुकंपा नहीं मानते हैं' 'हम अनुकंपा नहीं मानते हैं' ऐसी पुकार किया करते हैं, परन्तु जब उनसे युक्तियोंके द्वारा पूछा जाता है, तब वे दूसरा कोई उपाय नहीं चलनेसे अनुकंपा–दयाके दो विभाग कर दिखाते हैं। १ सावद्य और २ निरवद्य। जैसे जीतमल्लजीने, हितशिक्षाके गोशालाधिकारमें, इसीकी पुष्टि करते हुए कहा है:—

" कोई कहे सावद्य दया, किहां कही छे ताम।
न्याय कहुंछुं तेहनो, सुणो राख चित ठाम " ॥७२॥

इससे स्पष्ट होता हैं कि–तेरापंथी सावद्य–निरवद्य दो प्रकारकी दया–अनुकंपा मानते हैं। लेकिन ऐसा माननेमें उन्होंने कितनी भारी भूल की है ? इसको ही प्रथम पाठक देखें।

सम्यक्त्वके पांच लक्षण शास्त्रोंमें दिखलाए हैं:—१ शम, २ संवेग, ३ निर्वेद, ४ अनुकंपा और ५ आस्तिक्य। इन

लक्षणोंमें चौथा लक्षण 'अनुकंपा' है। अब इस अनुकंपाके यदि दो भेद किये जाँय, तो हम नहीं समझ सकते हैं कि-तेरापंथी, उनके सम्यक्त्वके लक्षणोंमें सावद्य अनुकंपा लेते हैं कि-निरवद्य ?। क्या इसका कहींपर खुलासा तेरापंथी दिखला सकते हैं कि-"यहाँपर निरवद्य ही अनुकंपा लेनी, सावद्य नहीं, अथवा सावद्य ही अनुकंपा लेनी, निरवद्य नहीं ?। अपना कुठार अपनेही पैरोंपर गिरानेका साहस तेरापंथियोंने खूबही किया है। जिस दयासे-अनुकंपासे हम संसारसे पार होनेका विश्वास रखते हैं, उसी अनुकंपा-दयाको संसार समुद्रमें डुबानेवाली समझनेवाले तेरापंथियोंकी बुद्धिको धन्य है!

अच्छा, इसके सिवाय एक यहभी यहाँ प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि-जैसे तेरापंथी, अनुकंपाके दो भेद (सावद्य-निरवद्य) करते हैं, उसी तरह क्या शम, संवेग, निर्वेद और आस्तिक्यके भी भेद करेंगे ?। क्या किसी जैनसूत्रमें तेरापंथी, सम्यक्त्वके पांच लक्षणोंके भेद दिखा सकते हैं ?।

प्रियपाठक! तेरापंथी इस विषयमें क्यों ऐसे भ्रमित हैं, इसका कारण दिखलाना समुचित होगा। वास्तवमें कहा जाय, तो तेरा-पंथी, शब्दोंके अर्थोंको समझ ही नहीं सके हैं। 'किस शब्दका क्या अर्थ होता है ?' 'अमुक शब्द एकार्थ है कि अनेकार्थ ?' इत्यादि बातोंका ज्ञान उन लोगोंमें थाही नहीं। यदि होता तो उनके पूज्य जीतमल्लजी, हितशिक्षाके गोशालाधिकारमें निम्न लिखित बात लिखतेही क्यों? :—

"हेमीनाममालाविषे, आठ दयारा नाम।
दया शुक कारण्य फुन, करूणा घृणा जु ताम॥ ७३॥

कृपा अने अनुकंप फुन, वलि अनुक्रोस कहाय ।
नाम एकार्थ आठ ए, तृतियकांडरे मांहि ॥ ७४ ॥
जिनरिषसामुं जोइओ, रत्नाद्रिपनी जेण ।
देवीनी करुणा करी, ज्ञाता नवमे श्रयेण ॥ ७५ ॥
करुणा नाम दया तणुं, ते माटे सुविचार ।
एह दया सावद्य छे, श्रीजिन आज्ञा बहार " ॥ ७६ ॥

जीतमल्लजीकी बुद्धिमें एक प्रकारका अजीर्णही हुआ, मालूम होता है । नहीं तो ऐसा क्यों लिखते ? । हमने मान लिया कि–कलिकाल सर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्यने, दया–शूक–कारुण्य–करुणा–कृपा–अनुकंपा–घृणा और अनुक्रोश ये आठ नाम अनुकंपाके-दयाके दिखलाये हैं । परन्तु इसका, जिनरिखकी कथाके साथमें संबंध ही क्या है ? । जिनरिखको, रयणादेवीके हावभावसे और पश्चात् रुदनादिके करनेसे उसके ऊपर करुणरस उत्पन्न हुआ है । देखिये, ज्ञातासूत्रके नववें अध्ययनका वह पाठः—

" तएणं जिणरक्खिया समुप्पएण कलुणभावं मच्चुगलत्थलणोल्लियमइ अवयक्खतं तहेव जक्खे सेलए ओहिणा जाणिऊण सणियं २ उव्विहइ २ णियगपिट्ठाहिविगयसड्ढे, तएणं सा रयणदीवदेवया णिस्संसा कलुणं जिणरक्खियं सकलुसा सेलगपिट्ठाहि उवयंतं दासे मउसित्ति जंपमाणी अप्पत्तं सागर सलिलं गिण्हियबाहाहिं आरसंतं उड्ढं उव्विहइ अंबरतले उवयमाणं च मंडलग्गेण पडिच्छित्ता णीलुप्पलगवलअयसिप्पगासेणं असिवरेण खंडाखंडिं करेंति । "

पृष्ठ–९५८–९५९,

अब इस पाठमें, ऊपर दिये हुए आठ नामोंमेंसे एक भी नाम नहीं है । इसमें जो कोई शब्द देखा जाता है, वह कलुण (करुण

शब्द है। और इसी 'करुण' शब्द को 'करुणा' समझ करके तेरापंथी सावद्य अनुकंपा–निरवद्य अनुकंपा समझनेकी भूल करते हैं।

'करुणा' शब्द और 'करुण' शब्दका एकही अर्थ समझ लेना, उतनीही भूल है, जितनी नहीं पिताको पिता समझनेकी भूल। करुण शब्दका अर्थ दूसरा होता है, 'करुणा' शब्दका दूसरा। 'करुण' शब्दका, अन्यप्रसंगोंमें उपयोग किया जाता है, 'करुणा' का अन्यप्रसंगोंमें। फिर भी 'करुणा' और 'करुण' को एकही अर्थवाले समझना, अज्ञानता नहीं, तो और क्या?। यदि 'करुण' शब्दका 'करुणा' ही अर्थ होता तो, प्रभुश्री हेमचन्द्राचार्य उपर्युक्त आठ नामोंके साथ इसको (करुण) क्या न लिखते?। बल्कि हेमचन्द्राचार्यने तो 'करुण' का उल्लेख दूसरे काण्डके २०८ वें श्लोकमें अलग ही किया है। अगर तेरापंथी करुणा–दया–अनुकंपा वगैरह शब्दोंके अर्थोंमें 'करुण' शब्दकीभी साथमेंही खिचडी पकाना चाहते हैं, तो हमें बतावें, 'कुमारसंभव' के 'विरुजैः करुणस्वरैरयम्' इस पदका क्या अर्थ करेंगे?। क्या यहाँपर भी तेरापंथियोंकी 'सावद्यदया' ही आकर अडंगा लगावेगी?। कभी नही?। यहाँपर 'करुण' का अर्थ है 'आर्तभाव'। दया–अनुकंपा वगैरह नहीं। इसी तरह सूत्रोंमें भी 'करुण' शब्द अनेक जगहोंपर आता है। जैसे सूयगडांगसूत्रमें:—

"जइ कालुलियाणि कासिया, जइ रोयंति य पुत्तकारणे।"

पृष्ठ-११४, गा० १७।

"मणबंधणेहिं णेगेहिं, कलुणविणीयमुवगासित्ताणं।"

पृष्ठ-२२५, गा० ७।

"ते डज्झमाणा कलुणं थणंति, अरहस्सरा तत्थ चिरट्ठितीया।"
पृष्ठ-२७०, गा० ७।

"सया य कलूणं पुण धम्मठाणं, गाढोवणीयं अतिदुक्ख धम्मं।"
पृष्ठ-२७३, गा० १२।

"पक्खिप्प तासु पययंति वाले, अट्टस्सरे ते कलुणं रसंते।"
पृष्ठ-२८२, गा० २५।

"ते डज्झमाणा कलुणं थणंति, उसुचोइया तत्तजुगेसु जुत्ता।"
पृष्ठ-२८६, गा० ४।

"ते सूलविद्धा कलुणं थणंति, एगंतदुक्खं दुहओ गिलाणा।"
पृष्ठ-२८९, गा० १०।

"चिया महंतीउ समारभित्ता, छिज्जंति ते तं कलुणं रसंतं।"
पृष्ठ-२९१, गा० १२।

इत्यादि स्थानोंमें भी क्या तेरापंथी दया—करुणा—अनुकंपा ही अर्थ ठोकते रहेंगे ?। क्या ये अर्थ यहाँपर उचित गिने जा सकते हैं ?। कभी नहीं। तब कहना ही होगा कि—'करुण' शब्दका अर्थ होता है शोक—आर्तभाव। न कि करुणा—दया वगैरह। और यही अर्थ प्रभुश्रीहेमचन्द्राचार्यने काव्यानुशासनके ७६ पृष्ठमें लिखा है 'शोकः करुणः।'

तेरापंथी लोग, इस 'करुण' और 'करुणा' शब्दके भेदोंको नहीं समझ करके ही दो प्रकारकी दया—अनुकंपा मानने लग गये हैं। हमें आश्चर्य तो इस बातका होता है कि—जब ऐसे भिन्न २ शब्दोंके भेदोंकोही नहीं समझ सके हैं, तो अनुकंपा—दया—करुणा

इत्यादि एक ही अर्थको कहनेवाले, शब्दोंमें रहे हुए आंतरिक वैलक्षण्यको तो समझते ही कैसे होंगे ?।

कहनेका मतलब कि–अनुकंपाके रहस्यको समझनेके लिये जितनी शाब्दिक व्युत्पत्तिके ज्ञानकी आवश्यकता है, उतनीही प्रतिभाकी प्रबलताभी चाहियें। टब्बा–टब्बी और भाषा-भूसासे ऐसे विषयोंमें कार्य नहीं चल सकता। किस विषयमें कैसे शब्दोंके प्रयोग करने चाहियें ? अथवा अमुक प्रसंगमें अमुक शब्दका क्या अर्थ होता है, इस ज्ञानको प्राप्त करनेके लिये व्याकरण न्याय–साहित्यादिके अभ्यासकी बहुतही जरूरत है। ऐसे अभ्यासके अभावहीसे तेरापंथी, अनुकंपाके विषयमेंभी भ्रमित हुए हैं, अर्थात् जहाँ मोहरस अर्थ है, वहाँ भी अनुकंपा मान करके वास्तविक अनुकंपाको उठा देते हैं। इस विषयमें विशेष परिचय पाठकोंको आगे चल करके कराया जायगा।

यहाँ पर एक और वात कह देनी उचित होगी। तेरापंथी कहते हैं कि–हम बत्तीससूत्रोंके मूलपाठोंके सिवाय, न और कोई सूत्र मानते हैं, और न निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, टीका मानते हैं। ऐसा कहते हुए भी-मानते हुए भी, जब हम इस पन्थकी 'भ्रमविध्वंसन' 'ज्ञानप्रकाश' वगैरह पुस्तकें देखते हैं, तब उन पुस्तकोंमें जगह २ सूत्रोंकी टीकाओंका और बत्तीससे अन्य सूत्रोंका भी आश्रय लिया हुआ देखनेमें आता है। अब यह सोचनेकी वात है कि–'ऐसा क्यों ?' । जब बत्तीस सूत्रोंके मूल पाठोंके सिवाय और कुछ मानतेही नहीं हैं, तो फिर अपनी मतलब निकालनेके लिए इधर उधर भटकनेकी जरूरत ही क्या है ?। लेकिन यह नहीं हो सकता ?। चाहे तेरापंथी हों, चाहे ढूंढिये हों, चाहे पैंतालीस सूत्रोंके माननेवाले भले मूर्तिपूजक ही क्यों न हों,

सभीको टीका वगैरहका आश्रय तो लेना ही पडता है। हम लोगोंकी उतनी बुद्धि-प्रतिभा कहाँ, जो मूलसूत्रोंसे ही, उनके यथार्थ तात्पर्यको निकाल सकें। हम लोगोंका उतना ज्ञान कहाँ, कि जो बात, मूलसूत्रोंमें लिखीही न हो, उसको भी अपने आपसे जान लें। तब इसके लिये क्या करना होगा ?। धुरंधर ज्ञानी आचार्योंके वचनोंको हमें मानना पडेगा, और उन वचनोंपर हमें निर्भर भी रहना होगा। क्या तेरापंथी लोग इस बातको अस्वीकार करेंगें ?। यदि अस्वीकार करते हों तो, हम पूछ सकते हैं कि-'जिस सीमंधरस्वामीको तुम लोग मानते हो, और उनके सामने क्रिया करते हो, उस सीमंधरस्वामीका नाम, बत्तीस सूत्रोंमेंसे किस सूत्रके मूल पाठमें है ?' यह दिखलाओ। यदि बत्तीस सूत्रोंके मूल पाठोंमें कहीं नहीं है, तो फिर क्योंकर मानते हो ?। जिस आर्द्रकुमारकी कथा, श्रावकोंके सामने कह सुनाते हो, उस आर्द्रकुमारकी सारी कथा, तुम्हारे बत्तीससूत्रोंमेंसे किस सूत्रमें है ? इत्यादि कई बातें ऐसी हैं, जो मूल सूत्रोंमें नहीं होनेपरभी मानी जाती हैं। इससे कहना होगा कि-बत्तीससूत्रोंके मूलपाठोंके सिवाय और किसी चीजके नहीं माननेका जो वे घमंड रखते हैं, सो बिलकुल झूठाही घमंड है। यदि यह घमंड सच्चा होता तो बत्तीस सूत्रोंके सिवाय और सूत्र एवं टीकादिका आश्रय लेतेही क्यों ?।

अब यहाँपर तेरापंथी यह कहते हैं कि-" प्रमाण तो हर किसीके शास्त्रोंके दिये जा सकते हैं, परन्तु इससे उन शास्त्रोंका मानना सिद्ध नहीं होता। इस पर एक दृष्टान्त देते हैं कि-भगवान् महावीरदेवसे, सोमिलने पूछा है कि-सरसव भक्ष्य वा अभक्ष्य ? इसके उत्तरमें भगवान्ने कहा है कि, 'ब्राह्मणके शास्त्रोंमें सरसव

दो प्रकारके दिखलाए हैं ।' तो क्या ब्राह्मणोंके शास्त्रोंको भगवानूने मान लिये ? ।"

तेरापंथियोंकी यह युक्ति, पानीसे मक्खन निकालने जैसी है। तेरापंथी अभी इस बातको तो समझे ही नहीं हैं कि–दूसरोंके शास्त्रोंके प्रमाण कब दिये जा सकते हैं ? । दूसरोंके शास्त्रोंके प्रमाण तब दिये जा सकते हैं, जबकी वही बात अपने शास्त्रोंमे लिखी हुई मिलती हो । भगवान् महावीर देवने दो प्रकारके सरसव ब्राह्मणशास्त्रोंसे दिखलाए, इसका यही कारण है कि–जैनशास्त्रोंमें भी दो ही प्रकारके सरसव माने हुए हैं। यदि जैनशास्त्रोंमें दो प्रकारके सरसव नहीं माने हुए होते, तो भगवान् कभी ब्राह्मणशास्त्रोंका प्रमाण नहीं देते । ब्राह्मणशास्त्रोंके प्रमाणोंकी क्या बात है ? जिस समय हम 'दया' का प्रतिपादन करते हैं, उस समय हम मुसलमानोंके धर्मशास्त्रके प्रमाण देते हुए कहते हैं कि–' मुसलमानोंके कुराने-शरीफमें भी लिखा है कि–समस्त जीवोंपर 'रहम' रखना चाहिये । ' अब बतलाईये । यदि हमारे जैन शास्त्रोंमे दयाका–रहमका प्रतिपादन न किया होता, तो हम क्या कुराने शरीफका उदाहरण दे सकते थे ? । कभी नहीं । इसी प्रकार 'रात्रिभोजन नहीं करना' इत्यादि विषयोंमें हम हिन्दुधर्मशास्त्रोंके प्रमाण इसी लिये देते हैं, कि–वे बातें हमारे शास्त्रोंमेंभी लिखी हुई पाई जाती हैं । परन्तु हम तेरापंथियोंसे पूंछते हैं कि–जिन २ विषयोंमें, तुम लोग कभी २ निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि और टीकाओंका आश्रय ले ले करके अपना कार्य चलाते हो, उन २ विषयोंका, तुम्हारे माने हुए किन २ शास्त्रोंमें उल्लेख है ? यह दिखलाओ । जो चीजें तुम्हारे घरमें हैं ही नहीं, उन चीजोंके लिये तुम्हारे मन्तव्यानुसार भी तुम कभी दूसरोंका आश्रय नहीं ले सकते हो । हां, सीमंधरस्वामीका

नाम, आर्द्रकुमारकी पूरी २ कथा, इत्यादि बातें, तुम्हारे माने हुए बत्तीससूत्रोंके किसी मूल पाठमें होतीं, और फिर टीका वगैरहका आश्रय लिया होता, तो वह उचित गिना जा सकता था। अस्तु, पराये मालसे पूंजीदार बन बैठनेकी चाल तेरापंथियोंने कैसी सीखी है, यह पाठक स्वयं देख सकते हैं।

यहाँ कहनेका तात्पर्य यह है कि–जैसे हमें सूत्र माननीय हैं, वैसे ही निर्युक्ति–भाष्य–चूर्णि–टीकाएं भी मानने लायक ही हैं। और प्रस्तुतमें अनुकंपाका विधान, जैसे मूलसूत्रोंमें है, वैसे निर्युक्ति–भाष्यादिमें भी है। इतना ही नहीं, आचार्योंके बनाए हुए अनान्य सैंकडों ग्रंथोंमें भी है। यह बात आगे जा करके पाठकोंको स्वयं विदित हो जायगी।

संसारमें दो प्रकारके मनुष्य होते हैं:–१ लौकिक, २ लोकोत्तर। इन दोनों प्रकारके मनुष्योंको अनुकंपा आदरणीय है। लोकोत्तर पुरुष, जो कि तीर्थंकर हैं, वे भी अनुकंपा, समयपर करते हैं, तो फिर हम–लौकिकपुरुष करें, इसमें तो कहना ही क्या है ?। जैसे समस्त तीर्थंकर एक वर्ष पर्यन्त वार्षिकदान अनुकंपाकी बुद्धिसे ही देते हैं। तीर्थंकरोंके वार्षिकदानमें सिवाय अनुकंपाके दूसरा कोई कारण नहीं है। देखिये, श्रीमान् हरिभद्रसूरिजी भी आवश्यक बृहद्वृत्तिमें लिखते हैं:—

" करुणागोचरे पुनरापन्नानामनुकंपया दद्यादपि। यतः उक्तः–

सव्वेहिं पि जिणेहिं दुज्जयजियरागदोसमोहेहिं।
सत्ताणुकंपणट्ठा दाणं न कहिं वि पडिसिद्धं ॥ १ ॥

तथा च भगवंतस्तीर्थंकरा अपि त्रिभुवनैकनाथाः प्रविव्रजिषवः।

सांवत्सरिकमनुकंपया प्रयच्छंत्येव दानमित्यादि।"

(विशेषशतक–पत्र ६ लिखी हुई प्रति)

अर्थात्—करुणा करने लायक मनुष्योंको अवश्य अनुकंपासे देना ही चाहिये। क्योंकि-दुर्जय ऐसे राग–द्वेष–मोहको जीतनेवाले समस्त तीर्थंकरोंने सत्त्वानुकंपाके लिये दानका कहीं भी निषेध नहीं किया है। और भगवान् तीर्थंकर भी अनुकंपासे सांवत्सरिकदान देते ही हैं।

भीष्मजीने, इसके विषयमें, 'ज्ञानप्रकाश' के पृष्ठ १११ में, चतुरविचारकी ढालमें लिखा है:—

" कहे लीधां पापमें दीधा धर्म, तिणलेखे रह गया कोरारे।
देवां खने ले मीनषां न दीधां, परिया अणहुंता फोरारे" चं.॥१०८॥

अर्थात्--भगवान्ने वार्षिक दान दिया, इससे भगवान्को कष्ट उठाने पडे।

क्या तेरापंथियोंका यह कथन जरासा भी युक्तियुक्त गिना जा सकता है?। कभी नहीं। वार्षिकदान भगवान् महावीर स्वामीने ही नहीं दिया, किन्तु समस्त तीर्थंकरोंने दिया है। अब तेरापंथी बतलावें, क्या समस्त तीर्थंकरोंको कष्ट हुआ है?। यदि नहीं हुआ, तो फिर यह असद्भूतकलंक भगवान् महावीर देवके ऊपर लगाना, तेरापंथियोंके लिये कितना दुष्कृत्य गिना जा सकता है, यह पाठक स्वयं विचार कर लें। क्या तेरापंथी, ऐसा किसी सूत्रमें दिखा सकते हैं कि–'भगवान्ने वार्षिकदान दिया, इससे भगवान्को कष्ट हुआ?'। यदि नहीं दिखा सकते हैं, तो फिर तेरापंथियोंके घरके गपोडोंको कौन सच्चे माननेका साहस कर सकता है?। क्या तेरापंथी, इस बातको नहीं समझते हैं कि–भगवान्का

हृदय दयासे परिपूर्ण था। और जिनका हृदय दयापूर्ण होता है, वे अनुकंपा करनेके समय, गुण–अवगुणोंको देखने नहीं बैठते हैं। जैसे कहा भी है:—

" निर्गुणेष्वपि सत्त्वेषु दयां कुर्वन्ति साधवः।
न हि संहरति ज्योत्स्नां चन्द्रश्चाण्डालवेश्मनि " ॥ १ ॥

जैसे चन्द्र, चाण्डालके घरमेंसे भी अपने प्रकाशको नहीं हरण कर लेता है, अर्थात् वहाँ भी प्रकाश डालता है, वैसे सज्जन लोग, निर्गुणी जीवोंपर भी दया अवश्य करते ही हैं।

हमारे लोकोत्तर पुरुषों (तीर्थकरों) ने, जिन २ वातोंका भव्यजीवोंको उपदेश दिया है, उन २ वातोंका स्वयं भी आचरण कर दिखाया है। परमात्माके चरित्रको अवलोकन कीजिये। जिस चार प्रकारके (दान–शील–तप–भाव) धर्मोंकी परमात्माने परूपणा की है, उन्हीं चार प्रकारके धर्मोंकी, स्वयं आराधना भी की है। जिस क्षान्त्यादि धर्मोंको पालनेके लिये यतियोंको–साधुओंको आज्ञा की है, उन्हीं क्षान्त्यादि धर्मोंका खुद परमात्माने भी आचरण किया है। इसी प्रकारसे जिस अनुकंपा करनेको भगवान्‌ने फरमाया है, उसी अनुकंपाको आपने भी कर दिखाई है। जैसे देखिये,

परमात्मा महावीर देवने, गोशालेको बचाया। भगवान् पार्श्वनाथने जलते हुए काष्ठमेंसे सांप (सर्प) को निकलवाया। भगवान् नेमनाथने, अपने विवाह के समय मारनेके लिये इकट्ठे किये हुए मृगोंको, बचाये। भगवान् शान्तिनाथने मेघरथके भवमें कबूतरको बचाया। इत्यादि बहुत दृष्टान्त मिलते हैं।

यहांपर भगवान् महावीरदेवके अनुकंपा करनेसे—गोशालेको बचानेसे, तेरापंथी लोग भगवान्को 'चूका' कहते हैं, इसका हम विचार आगे चलकर करने वाले हैं, इस लिये यहाँ कुछ नहीं लिखते। सिर्फ यहाँपर यही कहेंगे कि, भगवान् महावीरदेवने साधु अवस्थामें अनुकंपा करके, समस्त साधुओंको समय विशेपमें अनुकंपा करनेका सूचन किया। भगवान् पार्श्वनाथ, और नेमनाथजीने गृहस्थावस्थामें अनुकंपा करके, समस्त गृहस्थोंको अनुकंपा करनेका रस्ता दिखलाया।

इस प्रकार जब लोकोत्तर पुरुषोंने ही अनुकंपाका आदर किया है, तो फिर लौकिक पुरुषोंके करनेके लिये तो कहना ही क्या?

इस अनुकंपाके विषयमें, परमात्मा महावीरदेवने तो यहाँतक फरमान किया है कि--यदि जीवरक्षाके लिये साधुको अपवादमें मृषावाद भी बोलना पडे, तो कोइ हर्जकी बात नहीं है। जैसे, आचारांगसूत्रके द्वितीयश्रुतस्कंधके, तीसरे अध्ययनके, तीसरे उद्देशमें इस प्रकारका पाठ है:—

"से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गामाणुगामं दूईज्जमाणे अंतरा से पाडिपाहिया आगच्छेज्जा। तेणं पाडिपहिया एवं वदेज्जा:-आउसंतो समणा, अवियाइं एत्तो पडिपहे पासह, तंजहा-मणुस्सं वा गोणं वा महिसं वा पसुं वा पक्खिं वा सिरीसिवं वा जलचरं वा आइक्खह दंसेह? तं णो आइक्खेज्जा, णो दंसेज्जा, णो तेसिं तं परिण्णं परिजाणेज्जा, तुसिणीओ उवेहेज्जा, जाणं वा णो जाणंति वएज्जा। तओ संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जेज्जा।" (राजकोटमें छपा, पृष्ठ २७०).

अर्थात्—साधु-साध्वीको ग्रामानुग्राम विचरते हुए, मार्गमें कोई मुसाफिर मिल जाय, और वह पूछे कि, 'हे आयुष्मन् श्रमण! आपने इस रस्तेपर कोई मनुष्य, बैल, भैंसा, अथवा कोई पशु-पक्षी एवं सर्प या जलचर प्राणी देखे हैं तो, कहियें'। तब साधु अथवा साध्वीने इस विषयमें कुछ भी कहना अथवा दिखलाना नहीं। अर्थात् मौन रहना। और यदि कुछ न कुछ जवाब देनेकी जरूरत पड ही जाय, तो जानते हुए भी कह दे कि—'नहीं जानते'।

अब यहाँपर सोचनेकी बात है कि, जानते हुए भी साधु, 'नहीं जानते हैं' ऐसा क्यों कह दे?। ऐसे प्रत्यक्ष झूठ बोलनेके लिये भगवान्ने क्यों आज्ञा दी?। लेकिन नहीं, यहाँपर झूठ बोलनेका साधुका इरादा ही नहीं है, यहाँ इरादा है जीव बचानेका। साधु सोचता है कि—अगर मैं यह कह दूँगा कि—'हां, अमुक प्राणी, इधरको गया, तो वह जरूर उसके पीछे पडेगा और हाथमें आवेगा तो मारेगा भी"। बस, इसी अभिप्रायसे साफ २ कह दे कि—'हमने नहीं देखा।'

यहापर कई लोग 'जाणं वा णो जाणंति वएज्जा' इस पाठका यह अर्थ करते हैं कि—'जानता हुआ भी साधु, 'जानता हूँ' ऐसा न कहे' अर्थात् मौन रहे। लेकिन यह अर्थ ठीक नहीं है। क्योंकि 'तुसिणीओ उवेहेज्जा' यही पाठ मौन रहनेके लिये है, तो फिर दूसरी वार मौन रहनेके लिये क्यों कहे?। तब यह कहना पडेगा कि—यह पाठ खास अपवादके लिये है। अर्थात् प्रथमतो साधु मौन ही रहे। और यदि किसी कारणसे कुछ न कुछ बोलनेकी जरूरत पड ही जाय, तो 'जानता हुआ भी 'नहीं जानता,' ऐसा कह दे। और यही अर्थ सच्चा है। दूसरी बात यह है कि

उपर्युक्त पाठ में 'वा' शब्द रखा हुआ है। और 'वा' शब्द दूसरे अर्थको सूचन करता है। इस लिये यहाँ एक तो मौन रहनेकी बात है, और दूसरी 'जानता हुआ भी, नहीं जानता' ऐसे कहनेकी।

यह बात हम ही नहीं कहते हैं, परन्तु बाईससमुदायके पूज्य श्रीरामचन्द्रजिके बनाये हुए 'सत्यमिथ्यार्थनिर्णय ग्रंथ' के ३७ वें पृष्ठमें भी लिखा है कि–

"भावार्थ यह है कि–देखे हुयेको भी कहते हैं कि–हमने नहीं देखा। इस पाठका कोई अर्थ करते हैं कि–'मौन रक्खे,' सो शास्त्रका अज्ञान हैं। क्योंकि–इस सूत्रके पछाडीका सूत्र मौन रखनेका अलग है।"

इसी तरह, इसी बाईससमुदायके साधुजी कनीरामजी विरचित, 'सिद्धान्तसार' नामक ग्रंथके, २११ पृष्ठमें भी लिखा है कि–

"कोइ मृगप्रच्छाने समये मृगरक्षाने कारणे जुठुं बोले ते दयाना प्रणामनुं जुठ टालीने बीजा जुठनां माठां फल कह्यां, एटले दयाना प्रणामथी जुठ बोले, तेनां माठां फल कह्यां नथी. ए पुरुपना जुठ बोलवाना प्रणाम नथी, पण मृग्यादिकने राखवाना प्रणाम छे. ते माटे दयानां फल लागे, पण जुठनां फल न लागे।"

हम उन बाईस समुदायवाले महाशयोंको, जोकि–ऐसे प्रसंगोंमें भी झूठके नामसे चमक उठते हैं, उनके ही मजहबके साधुजी कनीरामजी, और श्रीरामचन्द्रजीके उपर्युक्त वचनोंपर ध्यान देनेके लिये अनुरोध करते हैं।

यह कभी न समझा जावे कि–'हम झूठके पक्षपाती हैं।' हम भी सच्चे सत्यके ही पक्षपाती हैं। परन्तु जहाँ पर भगवान्‌ने

जैसा बोलनेके लिये फरमाया, वहाँ पर वैसाही बोलना पडेगा। जो महाशय मृगपृच्छादिके कारणमें 'हम नहीं जानते' ऐसे कहनेका निषेध करते हैं, अर्थात् इसको झूठ समझकर गभरा जाते हैं, उन महाशयोंसे हम पूछते हैं कि—आप सत्य किसको कहते हैं ?। द्रव्यसे (लोक रूढी मात्रसे) जो सत्य है, उसीको परमार्थसे सत्य कहते हो ?। ऐसे नहीं हो सकता। क्योंकि, एक मनुष्य काणा है, तिसपर भी उसको 'काणा' कहनेके लिये भगवान् निषेध करतें हैं। देखियें दशवैकालिक सूत्रके सातवें अध्ययनमें लिखा है:—

"तहेव काणं काण त्ति पंडगं पंडग त्ति वा।
वाहिअं वा वि रोगित्ति तेणं चोरत्ति नो वए॥ १२ ॥ पृष्ठ-४४०

अर्थात्—साधु, काणेको 'काणा,' नपुंसकको 'नपुंसक,' रोगीको 'रोगी,' और चोरको 'चोर' भी न कहे।

अब बतलाईये, काणेको 'काणा' कहना, नपुंसकको 'नपुंसक' कहना, रोगीको 'रोगी' कहना और चोरको 'चोर' कहना, यह क्या सत्य नहीं है ?। अवश्य सत्य है। परन्तु यह द्रव्यसे सत्य है, भावसे नहीं। और इसी लिये भगवान्‌ने ऐसा बोलनेके लिये निषेध किया इसी तरह मृगपृच्छादिके कारणमें 'हम नहीं जानते' यह द्रव्यसे 'असत्य' है, भावसे असत्य नहीं। और इसी लिये ऐसा बोलनेके लिये भगवान्‌ने आज्ञा फरमाई है।

यह आज्ञा भगवान्‌ने आचारांगसूत्रेंम ही नहीं फरमाई, अन्य-सूत्रोंमें भी फरमाई है। जैसे देखीये,

सूयगडांगसूत्रके प्रथम श्रुतस्कंधके आठवें अध्ययनमें भी कहा है:—

" पाणे य णाइवाएज्जा, अदिन्नं पि य णादए।
सादियं ण मुसं बूया एस धम्मे बुसीमओ "॥१९॥ पृष्ठ ३६७

अर्थात्—साधु, प्राणियोंके प्राणोंका नाश न करे, अदत्त ग्रहण न करे और सादिकं, यानि मायाकरके सहित मृषावाद न बोले, संयमवन्त—जितेन्द्रिय साधुका यही धर्म है।

अब विचार कीजिये। जब यह कहा गया कि—'साधु, माया करके सहित मृषावाद न बोले' तो इससे ही स्पष्ट सिद्ध होता है कि—मृषावाद बोलनेका और भी कोई तरीका जरूर है। और इसी लिये टीकाकार श्रीमान् शीलांगाचार्यजीने टीकामें स्पष्टीकरण करके कह दिया कि—

" यो हि परवञ्चनार्थं समायो मृषावादः स परिह्रियते। यस्तु संयमगुप्त्यर्थं 'न मया मृगा उपलब्धाः' इत्यादिकः स न दोषायेति।"

अर्थात्—जो परवंचनके लिये माया सहित मृषावाद है, वह त्याग करे, परन्तु संयमकी गुप्ति—संयमकी रक्षा के लिये 'मैंने मृग नहीं देखे' ऐसा कहा जाय, तो यह दोषके लिये नहीं है।

वात भी ठीक है, यह मृषावाद अपने स्वार्थके लिये अथवा दूसरोंको ठगनेके लिये नहीं बोला जाता है। किन्तु जीव बचानेकी बुद्धिसे, अनुकंपाके लिये बोला जाता है। इस लिये यह दोषके लिये हो ही नहीं सकता।

अच्छा, इसी मतलबका दशवैकालिकसूत्रका एक और पाठ भी देख लीजिये। दशवैकालिकसूत्रके चतुर्थ अध्ययनमें दूसरे महाव्रतकी व्याख्यामें कहा है:—

" दव्वओ णामेगे मुसावाए णो भावओ। भावओ णामेगे णो दव्वओ। एगे दव्वओ वि भावओ वि। एगे णो दव्वओ

णो भावओ। तत्थ कोइ कहिंवि हिंसुज्जओ भणइ इओ तए पसुमिणाइणो दिट्ठत्ति?। सो दयाए दिट्ठावि भणइ ण दिट्ठात्ति। एस दव्वओ मुसावाओ, नो भावओ। (श्रीहरिभद्रसूरिकृत टीका पृष्ठ १९०)

अर्थात्–दूसरे महाव्रतकी द्रव्यादि चतुर्भंगी दिखलाते हुए कहाः–१ द्रव्यसे मृषावाद, लेकिन भावसे नहीं। २ भावसे मृषावाद, किन्तु द्रव्यसे नहीं। ३ द्रव्य और भाव दोनोंसे मृषावाद। ४ द्रव्यसे और भाव दोनोंसे मृषावाद नहीं। यहाँपर कोई हिंसक यह कहे कि–आपने मृगादि पशु देखे?। तव, उसने देखे हों, तो भी दयासे यही कहे कि–मैंने नहीं देखे। यह द्रव्यसे मृषावाद है, भावसे नहीं।

इसपरसे भी स्पष्ट सिद्ध हुआ कि–दयाके कारणसे साधु मृषावाद भी वोले, तो वह दोषके लिये नहीं है। और ऐसे प्रसंगोंपर मृषावाद वोलनेकी आज्ञा होनेके कारण हीसे भगवान्‌ने पन्नवणासूत्रके ग्यारहवें पदमें चार प्रकारकी भाषा वोलते हुए भी 'आराधक' कहा। देखिये, पन्नवणासूत्रके ३८८ वें पत्रमें इस प्रकारका पाठ है:—

"कतिणं भंते! भासज्जाया पण्णत्ता? गोयमा! चत्तारि भासज्जाया पण्णत्ता। तं जहा–सच्चमेगं भासज्जायं, वीयं मोसं भासज्जायं, तइयं सच्चामोसं भासज्जायं, चउत्थं असच्चामोसं भासज्जातं। इच्चेयाइं भंते! चत्तारि भासज्जायाइं भासमाणे किं आराहए विराहए?। गोयमा! इच्चेयाइं भासज्जायाइं आउत्तं भासमाणे आराहए, नो विराहए।"

अर्थात्–हे भगवन्! भाषा कितने प्रकारकी है?। हे गौतम! भाषा चार प्रकारकी हैः—१ सत्यभाषा, २ मृषाभाषा, ३ सत्या-

मृषाभाषा, और ४ असत्यामृषाभाषा। हे भगवन्! इन चारों प्रकारकी भाषाको बोलता हुआ साधु क्या आराधक है कि विराधक?! हे गौतम! इन चार प्रकारकी भाषाओंको 'आउत्तं' यानि प्रवचन-

मालिन्यादिके कारण विशेषोंमें, लाभालाभको देख करके बोलता हुआ साधु आराधक है, न कि विराधक।

अब देखिये, यहाँ भगवान्ने प्रवचनमालिन्यादि कारणोंमें लाभालाभको देखकरके मृषा बोलने वालेको भी आराधक कहा?।

अहा! कैसी दयाकी महिमा! कैसा अनुकंपाके लिये विधान,। जैनसूत्रोंमें, अनुकंपाकी इतनी महिमा होनेपर भी, हम नहीं समझ सकते हैं कि तेरापंथी लोग क्योंकर इसका निषेध करते हैं?। क्योंकर ऐसा मानते हैं कि 'जीवको मारनेमें एक पाप और बचानेमें अठारह पाप लगेंगे?।'

अगर स्थूलबुद्धिसे भी विचार किया जाय, तो मालूम हो सकता है कि-यदि मारनेकी अपेक्षासे, जीवके रक्षण करनेसे विशेष पाप होता तो, भगवान् 'पाणाइवायाओ वेरमणं' क्यों कहते?। 'पाणरक्खाओ वेरमणं' ही कह देते। क्योंकि-प्राणातिपातविरमणव्रतसे, तो, देशसे एक हिंसाका पाप हटेगा, और जीवरक्षाविरमणव्रतसे, तेरापंथियोंके मन्तव्यानुसार अठारह पाप हटेंगे। लेकिन भगवान्ने तो ऐसा कहीं भी नहीं कहा। तो फिर ये तेरापंथी, जीवके बचानेमें अठारह पाप कैसे मानते हैं?।

बात यह है कि-मनुष्यकी बुद्धि जब विपरीत हो जाती है, तब उसको सत्यासत्यका ख्याल नहीं रहता। वह हरएक बातमें उलटा ही देखता है। यदि तत्त्वदृष्टिसे विचार किया जाय, तो संसारमें

जितने कार्य किये जाते हैं, उनमें पुण्यपापका आधार खास परिणामके ऊपर रहता है। इसी लिये तो हम पहिले लिख आए हैं कि—परिणामसे बन्ध, क्रियासे कर्म और उपयोगसे धर्म होता है। यों तो संसारकी सारी क्रियाओंमें, फिर वे सांसारिक या धार्मिक ही क्यों न हों, जीवोंकी विराधना रही हुइ है, परन्तु, जिन क्रियाओंमें, जीवविराधना करनेका इरादा न हो, और किसी शुभ कार्यके लिये ही प्रवृत्ति की गइ हो, तो उसमें पापका डर रखना, बिलकुल अज्ञानताका सूचक ही है। यदि ऐसी बातोंमें भी पाप लग जाता तो, भगवान् मृगपृच्छादिके कारण साधुको मृषावाद बोलनेकी आज्ञा देते ही क्यों ?। नदीमें पडी हुई साध्वीको, नदीमें गिरकरके निकालनेको फरमाते ही क्यों ?। कोणिकराजा, बडे आडंबरके साथ, रस्तेमें असंख्याता जीवोंकी हिंसा करते हुए भगवान्को वंदणा करनेके लिये, जाता ही क्यों ?। सुबुद्धिमंत्रि, राजाको प्रतिबोध करनेके लिये, खाईके दुर्गंधी—जीवोंके पिंडवाले जलको घडेमें बारंबार परावर्तन करते ही क्यों?। और मल्लीनाथ भगवान्, जितशत्रु आदि छहों राजाओंको प्रतिबोध करनेके लिये सुवर्णकी पोली पुतलीमें छे महीनोंतक आहारके कवल भर २ करके अत्यन्त दुर्गंधवाले पदार्थोंको रख छोडते ही क्यों ?। तब अवश्य कहना होगा कि-यहाँ पर इन लोगोंका अभिप्राय-परिणाम, जीवोंकी विराधना करनेका नहीं था, परन्तु शुभकार्यका ही था। और इससे इन लोगोंको, जीवविराधनेका बुरा फल नहीं कहा, किन्तु शुभकार्य करनेका अच्छा ही फल कहा। क्योंकि—परिणाम अच्छे कार्योंके करनेका था।

इसी प्रकार एक विशेष लौकिक दृष्टान्तको भी सुन लीजिये। एक मनुष्य अपने छोटे बच्चेको दोनों हाथोंसे खडे २ खिला रहा

है। अकस्मात् वह लड़का हाथोंमेंसे गिरगया, और मरभी गया। अब बतलाईये, उस मनुष्यको क्या सरकार फांसी देगी? कभी नहीं। फांसीतो क्या, किसी प्रकारकी शिक्षा भी नहीं करेगी। बल्कि सरकार उसको दिलासा देगी। क्योंकि—उसका इरादा, लडकेको मारनेका था ही नहीं। यदि इरादे पूर्वक लडकेको मारता तो जरूर फांसीका हुकम होता।

बस, इसी तरह जिसका इरादा जीवोंके बचानेका है, उसको जीवोंके बचानेका ही फल मिलेगा। न कि—जीव बच करके पाप कार्य करेंगे, उसका। जीव बच करके चाहे सो कार्य करें, इससे बचानेवालेको क्या ताल्लुक ?।

प्रियपाठक, तेरापंथी जीवको बचानेमें जो पाप समझ बैठे हैं, इसका यही कारण है कि—" वे समझते हैं कि, अगर मरते हुए जीवको बचावेंगे, तो बचनेके बाद वह जीव, जो संसारमें पाप करेगा, उन पापोंकी माला हमारे गलेमें आ पडेगी।" बडी भारी फिलॉसोफी निकाली। जो कार्य, तुम न करोगे, न कराओगे और न अनुमोदन भी करोगे, तो फिर उसका फल तुम्हें आकर कैसे चिपक जायगा ?। क्या 'कृतका नाश, और अकृतका आगम' तुम्हारे धर्मप्रवर्तक भिखुनजीने दिखलाया है ?। यदि यही तुम्हारी फिलॉसोफी है, तो मरते हुए तुम्हारे साधुको भी न बचाना चाहिये। क्योंकि—वह जीएगा तो खायगा, टट्टी जायगा इत्यादि कार्योंको करेगा, तो उसका पाप बचानेवालेको लग जायगा। वैसे मरते हुए माता या पिताको भी न बचाने चाहियें। क्योंकि—वे जीएंगे तो संसारमें अनेक प्रकारके आरंभ-समारंभ के कार्योंको करेंगे, विषय सेवन करेंगे, लडके-लडकियोंको पैदा करेंगे, ये सब पाप, बचानेवालेको लगेंगे। अच्छा, इतना

ही क्यों ? हम तो कहते हैं कि—यदि ऐसा ही होता तो किसीको साधु भी न बनाना चाहिये। क्योंकि—साधु हो करके, वह देवलोकमें जायगा। वहाँ अव्रती—अपचक्खानी होगा। इतना ही नहीं, वहाँ देवांगनाओंसे भोग भी भोगेगा। तो यह सब पाप भी तेरापंथियोंके मन्तव्यानुसार, दीक्षा देनेवालेको लग जाने चाहियें। और अगर ऐसे ही पाप लगते हों, तो फिर मूँडते ही क्यों हैं ?।

कहना कुछ, और करना कुछ, यह अज्ञानता तेरापंथियोंमें खूब ही देखी। अस्तु, अब इस वृत्तान्तको हम यहाँ ही छोडकर, थोडी देरके लिये, तेरापंथी, इस विषयमें जो कुतर्कें करते हैं, उनको ही देखें। पश्चात् जैनसूत्रोंके पाठोंसे और युक्तियोंसे भी अनुकंपाको सिद्ध करेंगे।

पाठकोंको एक बात फिरसे समझ लेनी चाहिये। तेरापंथियोंका यह मन्तव्य है कि—'असंयती जीवोंका न जीना चाहना चाहिये, न मरना। किन्तु तैरना चाहना चाहिये।' जैसें, महारूपचन्द वयद लिखित 'जिनज्ञानदर्पण प्रथमभाग' के ८१ वें पृष्ठमें लिखा है:—

"असंजति अव्रती जीवको जीवणो वंछणो के मरणो वंछणो:—असंजतिको जीवणो वंछणो नहीं मरणो वंछणो नहीं, संसारसमुद्रसें तिरणो वंछणो, ते श्रीवीतरागदेव को धर्म छे।"

बस, ऐसा समझ करके ही मरते हुए जीवोंको वे नहीं बचाते। तेरापंथी साधुओंके सिवाय, संसारके समस्त जीवोंको वे 'असंयती' ही मानते हैं। इससे स्पष्ट हुआ कि—सिवाय तेरापंथी साधुओंके, अगर संसारमें रहा हुआ कोई भी जीव मरता होगा, तो उसको बचानेका प्रयत्न वे नहीं करेंगे।

बस, इसी स्वकल्पित सिद्धान्तको पुष्ट करनेके लिये ही, उन्होंने सूत्रोंके पाठोंके अर्थ उलटे किये, अनेकों प्रकारके कुतर्क किये, और यावत् परमात्मा महावीरदेवको भी 'चूके' कह दिये। कितना अनर्थ! कितनी धृष्टता! कितनी अज्ञानता!। जन्मसे ही

तीन ज्ञानों (मति–श्रुत–अवधि) को धारण करनेवाले, दीक्षा के पश्चात् चतुर्थ (मनःपर्याय) ज्ञानसे विभूषित तथा अप्रमत्तसंयमवाले भगवान् तो 'चूक' गये, और भीखमजी, कि जिसके ज्ञानकी पूंजी, इस ग्रन्थके प्रारंभमें ही दिखला दी है, वे न चूके। भगवान् तो भूल गये, और भट्टाचार्य भीखमजीने सही २ कहा।

वाहरे कुपुत्रता! तूने भी संसारके मनुष्यों पर अपना प्रभाव अच्छा ही जमाया है। जिन माता–पिताओंने बडे परिश्रम, अतुलित खर्च और अनेकों कष्टोंका सामना करके लडकोंको बडे किये हों, उन्हीं माता–पिताओंको गालियां देनेवाले हजारों कुपुत्र संसारमें देखे जाते हैं, परन्तु संसारमें ऐसे भी स्वयं बनबैठे हुए कुपुत्रोंके देखनेका दौर्भाग्य मिला, कि जो जगज्जीवहितावह परमात्मा–परमेश्वरको भी 'चूके' कहनेका दुःसाहस करते हैं।

अस्तु, हम कहाँ तक अपना अफसोस प्रकट करते रहेंगे?। अभी बहुत कुछ लिखनेका है, अतएव उन तेरापंथियोंके कुतर्कोंको ही प्रथम देखें।

जैसे दो मनुष्य लडते हों, और उनमेंसे कमजोर मनुष्य, वारंवार गालियोंका ही मंगलपाठ करके अपनी जीत दिखलानेका प्रयत्न करता है, वैसे ही तेरापंथी भी, इस अनुकंपाके विषयमें, एकही दृष्टान्तको जहाँ तहाँ खडा कर देते हैं।

तेरापंथियोंने अनुकंपाके निषेध करनेमें एक दृष्टान्त पकड लिया है। वे कहते हैं कि–' एक गृहस्थको पेटमें बहुत दर्द हो रहा है। उस समय साधुजी वहाँ आए। गृहस्थ कहता है कि– आपके, पेटपर हाथ फिरानेसे आराम हो जायगा। लेकिन साधुजी कहते हैं कि–यह हमारा धर्म नहीं। जब गृहस्थको बचानेका धर्म नहीं है, तो बिल्लीसे चूहेको, कुत्तेसे बिल्लीको इत्यादि जीवोंके छुडानेमें कैसे धर्म आ गया ?। '

'विवाहकी वरसी' करनेवाले तेरापंथियोंकी बुद्धिमत्ताको देखिये। कहाँ तो गृहस्थका दृष्टान्त और कहाँ आफतमें आए हुए जीवोंके बचानेका ?।

गृहस्थको पेटमें दर्द हो रहा है, उस दर्दको हटानेके लिये गृहस्थको साधुके पास जानेकी आवश्यकता ही क्या है ?। क्योंकि– उन लोगोंके लिये तो संसारमें वैद्य मौजूद ही हैं। और क्या साधु, वैद्य हैं, जो उनसे रोग मिटानेकी प्रार्थना करें ?। यदि इस तरहसे साधु, रोग मिटाते फिरेंगे, तो किसी समय गृहस्थ उसकी स्त्रीके भी रोगके मिटानेकी प्रार्थना करेगा। फिर तो वे साधु ही काहेको ठहरे? एक प्रकारके वैद्य ही समझ लो न ?। कहनेका मतलब कि– गृहस्थ लोग हजारों उपाय करके रोग मिटा सकते हैं, परन्तु चूहे-बिल्ली वगैरह स्वयं बचनेके लिये क्या उपाय कर सकते हैं ?। और एक यह भी बात है कि गृहस्थ, पेटमें दर्द होने के कारण मर ही जायगा, अथवा साधुके हाथ फिरानेसे बच ही जायगा, ऐसा निश्चित ज्ञान क्योंकर हो सकता है ?। और यदि इस प्रकारका ज्ञान साधुको हो भी जाय कि, ' इस मनुष्यके लिये संसारमें दूसरा कोई उपाय नहीं रहा है–अन्य किसी उपायसे बचनेवाला

नहीं है, और मेरे हाथ फिरानेसे ही यह बचनेवाला है, तो उस अवस्थामें अनुकम्पाकी बुद्धिसे, साधु हाथ फिरावे और उसको बचावे, तो कोई हर्जकी बात नहीं है। क्योंकि–यहाँ साधुको किसी प्रकारका स्वार्थ नही है। सिर्फ अन्य कोई उपाय न होनेके कारण, अपवाद मार्गमें ऐसा करना पडता है। और इस प्रकार अपवादके समय गृहस्थकी वैयावृत्त्य करनेके लिये शास्त्रकारोंका फरमान भी है। जैसे–न्यायविशारद–न्यायाचार्य श्रीमद्यशोविजयजी उपाध्याय, अपनी बनाई हुई 'द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशिका' की प्रथम द्वात्रिंशिकामें लिखते हैं किः—

"वैयावृत्त्ये गृहस्थानां निषेधः श्रूयते तु यः।
स औत्सर्गिकतां बिभ्रन्नैनस्यार्थस्य बाधकः॥ १२॥

अर्थात्—गृहस्थोंकी वैयावृत्त्यमें, जो निषेध सुना जाता है, वह उत्सर्ग मार्ग है। और इससे अपवादमार्गमें कोइ हरकत नहीं आसकती। अर्थात् अपवादमार्गमें इसका निषेध नहीं है।

इससे स्पष्ट सिद्ध हुआ कि–अपवादके समय साधु, अगर ऐसा कार्य कर भी ले तो कोई हर्जकी बात नहीं है।

बात यह है कि–प्रत्येक कार्यमें परिणाम देखा जाता है। भगवान् महावीरदेवने गोशालेको बचाया, इसमें क्या था ?। इसमें भी भगवान्ने अनुकंपाके आनेहीसे गोशालेको बचाया है। देखिये, भगवतीसूत्र, श० १५, उ० १, पत्र १२१७ में कहा हैः—

"तएणं अहं गोयमा! गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स अणुकंपयणट्ठाए वेसियायणस्स बालतवस्सिस्स सा उसिणतेयलेस्सा तेयपडिसाहरणट्ठयाए एत्थ णं अंतरा अहं सीयलियं तेयलेस्सं णिसिरामि।"

अर्थात्—तब, हे गौतम! मैंने मंखलिपुत्र गोशालकी अनुकंपाके कारण, बालतपस्वी वैश्यायनकी उष्णतेजोलेश्याके तेजको दूर करनेके लिये, मैंने शीतलेश्या छोडी।

यहाँ पर भगवान्ने स्वयं श्रीमुखसे फरमाया है कि—'मैंने अनुकंपाके कारण ही गोशालेको बचाया है।' अर्थात् गोशालेको बचानेमें अनुकंपा ही कारण है। और कुछ नहीं।

अब सोचनेकी बात है कि-जब भगवान्ने ही अनुकंपाके कारण जीवको बचाया है, तो फिर हम लोग बचावें, इसमें आश्चर्य ही क्या है?। जब तेरापंथियोंकी यहाँपर एक भी न चली, तब इन्होंने कह दिया कि-'भगवान् चूके'.

तेरापंथीलोग, भगवान्को 'चूके' दिखलाते हैं, इसका तो हम जवाब आगे जाकर लिखते हैं, परन्तु अभी तेरापंथियोंकी इस विषयमें द्विधावाक् नहीं, अनेकों वाक् दिखलाना उचित समझते हैं।

तेरापंथियोंके 'अनुकंपा रास'.की प्रथम ढालकी ११ से १५ कडियोंमें लिखा है:—

" साधां ने लब्ध न फोरणी जी सूत्र भगोती मांय।
पिण मोहकर्मवसरागथी, तिणसुं लियो गोसालो बचाय॥११॥
छ लेस्या हुंती जद वीरमें जी, हुंता आठोई कर्म।
छद्मस्थ चूका तिण समेजी, मूरख थापे धर्म॥ १२॥
छद्मस्थ चूक पर्यो तिकोजी, मूढे आणे बोल।
पिण निरवद्य कोय मजाणेज्याजी, सकल हियारी पोल॥१३॥
ज्युं आणंदश्रावकने घरेजी, गोतम बोल्या कूर।
परिया छद्मस्थ चूकमें, सुध हुय गया वीर हजूर॥ १४॥
इम अवस उदे मोह आवियोजी, नहीं टाल शक्या जगनाथ।
एतो न्याय न जाणियोजी, ज्यारे मांहे मूलमिथ्यात ॥१५॥

है वचनका ठिकाना ?। ऊपरकी पांचों कडियोंमें भिन्न २ कारण दिखलाए हैं । अब इनमेंसे सच्चा कारण कौनसा मानना ?।

वास्तवमें देखा जाय तो, गोशालेको बचानेमें उपर्युक्त कारणोंमेंसे एक भी कारण नहीं है, गोशालेको बचानेमें जो कुछ कारण था, वह 'अनुकंपा' ही था । और यह कारण स्वयं भगवान्ने श्रीमुखसे फरमा ही दिया है । यदि उपर्युक्त कारणोंमेंसे कोई एक कारण होता, तो भगवान् वही कारण दिखलाते ।

इसके सिवाय १४ वीं कडीमें गौतमस्वामी और आणंद श्रावकका जो प्रसंग उपस्थित किया है, वह भी अप्रासंगिक ही है। क्योंकि–गौतमस्वामीकी भूल तो स्वयं भगवानने दिखलाई है, और 'मिच्छामि दुक्कडं' दिलवाया, ऐसा लिखा हुआ मिलता है। परन्तु गोशालेको बचानेसे 'भगवान चूके' अथवा 'चूकनेसे मिच्छामि दुक्कडं दिया' ऐसा किसी सूत्रमें लिखा हुआ नहीं मिलता, तो फिर भगवान् और गौतमस्वामीका साम्य क्योंकर किया जा सकता है ?।

तेरापंथीलोग, अभी तक इस बातको समझे ही नहीं है कि–'भगवान्की छद्मस्थ और केवली दोनों अवस्थाओंकी निर्दोष ही करणी होती है। और भगवान् वही कार्य करते हैं, जिसमें गुण देखते हैं । अकार्यको कभी भगवान् करते ही नहीं । जब ऐसा ही नियम है, तो फिर तेरापंथी बतावें कि–भगवान्के किये हुए इस कार्यको अकार्य कैसे कहते हो ?। अगर यह कहो कि–'भगवान्में इस कार्यके समय सरागसंयम था, इस लिये भगवान् चूके'। तो यह भी ठीक नहीं है। हमने मान लिया कि भगवान्में सरागसंयम था, परन्तु इससे भी इस कार्यमें 'चूके' नहीं कह सकते हैं। क्योंकि–यद्यपि भगवान् सरागसंयमी थे, तो भी राग-लेश्या

वगैरह जितनी बातें पाई जातीं हैं, वे प्रशस्त ही पाई जातीं हैं, अप्रशस्त नहीं। हम पूछते हैं कि-भगवान्, संयम-तप वगैरहकी आराधना करते हैं. वे सरागपनेसे करते हैं कि-निरागपनेसे ?। यदि सरागपनेसे करते हैं, तो फिर इन कार्योंमें भगवान्को 'चूके' क्यों नहीं कहते ?। इन कार्योंमें भी भगवान्को 'चूके' कहने चाहिये। अच्छा। भगवान् संयमादि कार्य निरागपनेसे करते हैं, ऐसा तो कह ही नहीं सकते हो। क्योंकि-दशवें गुणठाणे पर्यन्त तो सरागपना रहता ही है। और जब तक सरागपना है, तब तक लब्ध्युपजीवीपना भी रहता है, अर्थात् लब्धि फोरनेका कारण भी रहता है। वीतराग अवस्थामें यह कारण नहीं रहता। इसी लिये तो भगवतीसूत्रके १२१७-१८ पत्रके उपर्युक्त पाठमें, टीकाकारने स्पष्ट खुलासा कर दिया है किः—

"इह च यद् गोशालकस्य संरक्षणं भगवता कृतं तत्सरागत्वेन दयैकरसत्वाद्भगवतः, यच्च सुनक्षत्रसर्वानुभूतिमुनिपुङ्गवयोर्न करिष्यति तद्वीतरागत्वेन लब्ध्यनुपजीवकत्वादवश्यभाविभावत्वाद्वेत्यवसेयमिति।"

अर्थात्-भगवान्ने गोशालेका जो संरक्षण किया है, उसमें भगवान्का 'दयामयपरिणाम ही' कारण है। और जिस समय सुनक्षत्र-सर्वानुभूतीका प्रसंग आया, उस समय भगवान्में वीतरागत्व होनेसे उन दोनोंको बचानेका उन्होंने कुछ भी प्रयत्न नहीं किया। क्योंकि-उस समय लब्धि फोरनेका भी कोई कारण नहीं रहा था, और भावीभावको भी भगवान् जानते थे कि-ऐसा होनेवाला है। परन्तु जब भगवान् छद्मस्थावस्थामें थे, उस समय कार्यविशेषोंमें लब्धिफोरना अपना कर्तव्य समझते थे, और जान बूझ करके ही भगवान्ने गोशालेको बचाया है, तो फिर उसमें भगवान्को 'चूके' कहना

कितनी भारी भूल—महामिथ्यात्वका कारण है ! यह पाठक स्वयं विचार कर सकते हैं ।

तेरापंथियोंका यह कहना भी सरासर झूठा है कि—'भगवान्‌ने लब्धि फोरी इस लिये चूके'। भगवान्‌ने अपने स्वार्थके लिये लब्धि नहीं फोरी । अथवा किसी और माया—कपटसे नहीं फोरी । सिर्फ जीवको बचानेके आशयसे ही फोरी है । और इस तरहसे संघादिके कार्योंके लिये साधु अगर लब्धि फोरे, तो उसमें भगवान्‌की आज्ञा ही है । देखिये, भगवती सूत्रके तीसरे शतकके पांचवें उद्देशेमें, पत्र २८१ में कहा है:—

" से जहा नामए केइपुरिसे असिचम्मपायं गहाय गच्छेज्जा एवामेव अणगारेवि भावियप्पा असिचम्मपायंहत्थकिच्चगएणं अप्पाणेणं उट्ठं वेहासंउप्पएज्जा ? हंता उप्पइज्जा । "

अर्थात्—जैसे कोई पुरुष, ढाल—तलवारको ग्रहण करके जाय, वैसे भावितात्मा—साधु, हाथमें ढाल—तलवारको लेकरके संघादिकके कार्योंके लिये ऊर्ध्व—आकाशमें जावे ? हे गौतम जाय ।

अब विचारनेकी बात है कि—यदि साधुको लब्धिफोरनेका निषेधही होता, तो भगवान् यहाँ आज्ञा ही क्यों देते ? इतनी जरूर बात है कि—साधु अन्य किसी स्वार्थी कार्यके लिये लब्धि न फोरे ! ।

जो लब्धिफोरनेकी चर्चा, ऊपर की गई है, उस लब्धिके विषयमें भी तेरापंथियोंके परस्पर ऐसे विरोधी वाक्य मिलते हैं, जिनको देखकर यही कहना पडता है कि—तेरापंथी मतके उत्पादक भीखुनजीमें शास्त्रकी तो गन्ध तक भी नहीं थी । बल्कि भांगकी ठंडाई पी

आज कल भी उनके साधु भांगकी ठंडाई लेते हुए, बहुतसे लोगोंके देखनेमें आते हैं।)

देखिये, भीखमजी, अपनी बनाई हुइ अनुकंपाके रासकी प्रथम ढालमें लिखते हैं:—

'साधांनें लब्ध न फोरणीजी, सूत्र भगोती मांय।'

बिलकुल झूठ बात है। साधुने लब्धि नहीं फोरना, ऐसा भगवती सूत्रमें कहा ही नहीं। हां, यह जरूर कहा है कि—'वैक्रिय-लब्धि साधु फोरवे, और पश्चात् आलोचना न करे, तो वह विराधक है।' और यही बात, तेरापंथीके पूज्य जीतमल्लजीने अपने बनाए हुए प्रश्नोत्तरके ६ पेजमें लिखी है कि—'भगवती श०—३ उ०४ वक्रियलब्धि फोरे तिणन इम कह्यौ बींना आलोया मरे तेहनें अराधक (आराधक नहीं विराधक चाहिये) कह्यौ ३।"
इन्हीं जीतमल्लजीने हितशिक्षाके गोशालाधिकारमें लिखा है:—

" आहारादिक लब्धिफोडवे, कह्यो विराधक ताहि।
भगवती तिजा शतक, तुर्य उद्देशक मांहि " ॥ ९७ ॥

जीतमल्लजीने भी यहाँपर भीखमकी तरह गप्पें ही मारी हैं अपने ही बनाये हुए प्रश्नोत्तरमें और इस गोशालाधिकारमें परस्पर कैसा विरोधी लिख मारा है, इसको पाठक देखें। भगवतीके ३ शतक, ४ उद्देशमें 'आहारक' लब्धिका नाम नहीं है, वैक्रियलब्धिका प्रसंग है। और वह भी लब्धि फोरने मात्रसे विराधक नहीं कहा, बिना आलोचे मरे तो विराधक कहा। और यह बात जीतमल्लजी अपने प्रश्नोत्तरमें स्वीकार भी करते हैं।

इसी प्रकार, इसी तीसरे शतकके चौथे उद्देशेका एक पाठ हमने पहिले देही दिया है, जिसमें यह दिखलाया गया है कि—

संघादिकके कार्यके लिये साधु लब्धि फोरवे तो, उसमें भगवान्की आज्ञा है ।

इन सब बातों पर विचार करनेसे 'साधु लब्धि न फोरवे' ऐसा भीखमजीका कहना नितान्त झूठ ही मालूम होता है । यदि लब्धि फोरनेका एकान्त निषेध ही होता, तो आराधक–विराधकका प्रश्न ही क्यों उठता, और संघादिक कार्यके लिये भगवान् आज्ञा ही क्यों देते ? । आराधक–विराधकका विचार तो साधुके लिये हरएक बातमें रहा हुआ है । बहुत लंबा विचार क्यों करें । साधु, सौ कदमके आगे जाय, तो उसको 'इरियावहिया' करनेको कहा, यदि इरियावहिया न करे, और काल कर जाय, तो विराधक कहा । अब बतलाईये, क्या हुआ ? । इससे कोई यह कह सकता है कि– 'साधुको, भगवान्ने सौ कदमसे आगे जानेको कहा ही नहीं ? । ' कभी नहीं । इसी प्रकार लब्धिके विषयमें भी समझ लेना चाहिये ।

इत्यादि बातोंके विचार करनेसे स्पष्ट मालूम होता है कि– भगवान्, गोशालेको बचानेमें किसी प्रकार चूके नहीं हैं । और एक यह भी बात है कि–भगवान् अगर कहीं पर भी चूके होते, तो सूत्रोंमें किसी न किसी जगह उल्लेख जरूर होता । और है तो नहीं । बल्कि सूत्रमें तो स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि–'भगवान्, दीक्षित होनेके पश्चात् किञ्चित्मात्र भी पाप सेवन नहीं करते है, न कराते हैं, न करनेवालेकी अनुमोदना करते हैं। जैसे आचारांग सूत्रमें, प्रथम श्रुतस्कंधके, नववें अध्ययनके चतुर्थ उद्देशेमें पृष्ठ १५० में कहा है:—

" णच्चा ण से महावीरे, णो चिय पावगं सयमकासी ।
अन्नेहिं वा ण कारित्था, कीरंतंपि णाणुजाणित्था ॥ ८ ॥ "

अर्थात्—तत्त्वको जानकरके, महावीरदेवने, स्वयं पाप किया नहीं, कराया नहीं और करनेवालेको अच्छा समझा नहीं है।

इनसे स्पष्ट मालूम होता है कि—भगवान्ने कोई पाप नहीं किया। अच्छा और देखिये। इसी *आचारांग सूत्रके नववें अध्ययन के चतुर्थ उद्देशेमें पृ० १५२ में कहा है:—

"अकसाती विगयगेही य, सद्दरूवेसु अमुच्छिए झाति।
छउमत्थोवि विपरक्कममाणो ण पमायं सइंपि कुव्वित्था॥१५॥

अर्थात्–कषायरहित, गृद्धि रहित और शब्दादिक विषयोंमें मूर्च्छा रहित भगवान्, हमेशा ध्यान मग्न रहते थे, और छद्मस्था-वस्थामें भी प्रबल पराक्रम करते हुए किसी समय प्रमाद नहीं करते थे।

अब बतावें तेरापंथी, भगवान्के नहीं चूकनेके विषयमें अब भी कोई संशयकी बात रही ?। खास आचारांगसूत्रमें ही भगवान्की निर्दोषता–अप्रमादता खुल्लंखुल्ला लिखी है, तो फिर अन्य प्रमाणोंकी आवश्यकता ही क्या है ?।

यहाँपर तेरापंथी, एक इस कुतर्कको आगे करते हैं कि–"उप-र्युक्त पाठोंमें तो भगवान्के गुण कथन किये हैं। गुणकथनमें, अव-गुणका वर्णन नहीं हो सकता।" ऐसा कह कर कोणिकका दृष्टान्त देते हैं।

लेकिन इनका यह कुतर्क और दृष्टान्त दोनों ही निरर्थक हैं। क्योंकि, श्रीसुधर्मास्वामीने, अपने आपसे भगवान्के गुण वर्णन नहीं किये हैं। जिस प्रकार भगवान्ने केवलज्ञान होनेके पश्चात् फरमाया है,

* राजकोटमें छपा।

उसी प्रकार गुंथन किया है। भगवान्‌ने छद्मस्थावस्थामें किसी प्रकारका दोषीला कार्य किया होता, तो भगवान् जरूर फरमाते। लेकिन तेरापंथियोंसे हम पूछते हैं कि–'भगवान्‌ने अमुक समय, अमुक अकार्य किया' ऐसा कहीं पर आपके देखनेमें आया हो तो दिखलाईये। भगवान्‌ने तो निष्पक्षपाततासे जिसका जैसा कृत्य देखा–गुण, अवगुण देखा, वहाँ वैसा ही वर्णन किया है। कोणिकके विषयमें भी देख लीजिये।

कोणिकका जीव, श्रेणिकका पुत्र हो करके उत्पन्न हुआ था। कोणिकने, श्रेणिकके प्रति, जो अविनय किया था, इसका तो पश्चात्ताप स्वयं कोणिक इस प्रकार करता है:—

"अहो णं मए अधन्नेणं अपुन्नेणं अकयपुन्नेणं दुट्ठकयं सेणियं रायं पियं देवयं अच्चंपं नेहाणुरागरत्तं निलयबंधणं करे" (निरयावलीसूत्र–पत्र–२४)

कोणिक स्वयं पश्चात्ताप करता हुआ कहता है:—'अहो, अधन्य, अपुण्य, अकृतपुण्य ऐसे मैंने दुष्टकृत्य किया, कि स्नेहानुरागकरके रक्त ऐसे देव समान पिता श्रेणिक राजाको निलय (वेडी) बंधन किया।'

देखिये, कोणिकने स्वयं अपने दुष्कृत्यका–अविनयका पश्चात्ताप किया, यह बात भगवान्‌ने फरमाई, और गणधर महाराजने गुंथन की। अब विचारनेकी बात है कि–मूलवृत्तान्तके साथमें इस बातका ताल्लुक ही क्या है ?। क्योंकि–आचारांगके पाठको यदि भगवान्‌का गुणवर्णन ही समझा जाय, तो ऐसा कोई पाठ तेरापंथी दिखा सकते हैं कि, जिसमें भगवान्‌की भूल दिखलाई हो। जैसा

कि—कोणिकका अविनय जाहिर किया। कोणिकका ही क्यों, खुद भगवान्‌के प्रथम गणधर श्रीगौतमस्वामीकी ही भूल जाहिर की है, तो फिर औरोंकी वात ही क्या ? केवली भगवान्‌के पास किसीका पक्षपात नहीं था।

कहनेका तात्पर्य यह है कि—सूत्रोंमें जो कुछ वर्णन है, वह गणधर महाराजने अपने आपसे गुंथन नहीं कर दिया है। भगवान्‌ने जैसा फरमाया वैसाही गुंथन किया है। फिर भगवान्‌ने जैसे गुण दिखलाये, वैसे गुण, और अवगुण दिखलाये वैसे अवगुण। और ये भी भगवान्‌ने केवली अवस्थामें ही प्रकाशित किये हैं, इसलिये इनकी सत्यतामें अणुमात्र भी संदेह लाया नहीं जा सकता। अब भगवान्‌की निर्दोषता जैसे सूत्रोंमेंसे मिलती है, वैसे किसी जगह भगवान्‌के चूकनेका वृत्तान्त देखनेमें नहीं आता, इससे स्पष्ट मालूम होता है कि—तेरापंथियोंका, दया महादेवीसे—अनुकंपासे द्वेष होनेके कारण ही, भगवान्‌के ऊपर ऐसा असद्भूत कलंक उन्होंने लगाया है।

तेरापंथी कहते हैं कि—" भगवान्‌ने गोशालेको बचाया, इसमें फायदा क्या निकाला ?। गोशालेने और मिथ्यात्व बढाया, और भगवान्‌को लोहीठाणा हुआ। गोशाला मरता तो दोनोंमेंसे एक भी बात न होने पाती।"

तेरापंथियोंका यह नियम यदि ठीक ही है, तो पहिले तो इन तेरापंथियोंको ही चाहिये कि—मरते हुए माता-पिताओंको या लड़के लड़कियोंको न बचावें। क्योंकि—वे भी तो जी करके अव्रत पाप करते हैं।

लेकिन, यह कहो कि–भगवान्की उससमय यह दृष्टि नहीं थी कि–गोशालेको बचाऊंगा तो पीछेसे ऐसा अनर्थ होगा ?। भगवान्की दृष्टि सिर्फ किसी न किसी प्रकारसे जीवको बचानेकी ही थी। और इसीसे बचाया था। तभी तो हम कहते हैं कि–चाहे कैसा ही संसारमें पापोंको करनेवाला मनुष्य क्यों न हो, परन्तु वह भी अगर दुःखी अवस्थामें हो, तो उसे बचानेके प्रयत्न अवश्य ही करने चाहियें।

कदाचित् कोई यह कहे कि–'भगवान्ने गोशालेको स्वीकार ही क्यों किया और बहुश्रुत ही क्यों किया, जो पीछेसे ऐसे अनर्थोंको करनेवाला हुआ।' लेकिन यह कहना भी ठीक नहीं है। क्यों कि, भगवान् परम कृपालु थे। इसी लिये गोशालेको स्वीकृत और बहुश्रुत किया था। और साधु पुरुषोंका कर्तव्य भी यही है कि–दूसरेके हितकरनेमें तत्पर रहना। जैसे कहा है:—

" कस्याऽऽदेशात् क्षपयति तमः सप्तसप्तिः प्रजानां ?
छायां कर्तुं पथि विटपिनामञ्जलिः केन बद्धः ?।
अभ्यर्थ्यन्ते नवजलमुचः केन वाःसृष्टिहेतो–
र्जात्यैवैते परहितविधौ साधवो बद्धकक्षाः " ॥ १ ॥

परन्तु पीछेसे गोशाला अपने दौर्भाग्यसे उलटे रस्तेपर चला गया, तो उसमें भगवान् क्या करें ?। और एक यह भी बात है कि–होनहारके आगे किसीका कुछ नहीं चलता। इसी लिये तो हम पहिले कह आए हैं कि–केवली भगवान्की प्रवृत्ति भी होनहारके अनुकूल ही होती है। यदि ऐसा न होता तो भगवान्ने केवलज्ञान होनेके बाद भी जमालीको शिष्य ही क्यों किया, जो पीछेसे भगवान्के शासनमें निह्नव हुआ ?। क्या भगवान् यह नहीं जानते थे कि–'यह निह्नव होगा ?। जानते थे, परन्तु होनहारका प्रतीकार नहीं हो सकता।

कदाचित् कोई यह कहे कि–'भगवान्‌ने जमालीको दीक्षा नहीं दी थी।' परन्तु यह ठीक नहीं है। जिस समय जमालीके माता–पिताने भगवान्‌के पास आकर भगवान्‌से शिष्यकी भिक्षा लेनेके लिये प्रार्थना की है, उस समय भगवान्‌ने स्वीकृत ही किया है। देखिये भगवती सूत्र, श० ९, उ० ३३ का पाठः—

'तं एसणं देवाणुप्पियाणं अम्हे सीसभिक्खं दलयामो, पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिया! सीसभिक्खं, अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं!" (पत्र ८३५)

अर्थात्–'हे देवाणुप्रिय! आपको हम, यह शिष्यभिक्षा देते हैं, इसको आप स्वीकार करें।' पश्चात्, भगवान्‌ने कहाः- 'यथासुखं, प्रतिबंध मत करो।'

बस, इससे स्पष्ट है कि—भगवान्‌ने जमालीको जरूर स्वीकृत किया था।

देखिये, इसी प्रकार भगवान् ऋषभदेवस्वामीने भी चार हजार पुरुषोंको दीक्षा दी। और वे सबके सब क्षुधावेदनाके परिषहको नहीं सहन करते हुए, भाग गये और गंगाके किनारे तापस हो कर जा बैठे। इतना ही नहीं, उन्हींमेंसे कई लोगोंने पाखंडमत भी चलाए। अब, बतलाईये, इसमें ऋषभदेव भगवान् क्या करें?। भगवान्‌ने तो उन लोगोंको तारनेके लिये दीक्षा दी थी। पीछेसे, उन लोगोंके दौर्भाग्यसे अनर्थ हुआ, तो इसमें भगवान्‌का क्या दोष?। क्या यहाँ भगवान् ऋषभदेवस्वामीको भी चूके कहोगे?। लेकिन नहीं, दौर्भाग्यके कारण अच्छे मनुष्योंकी बुद्धिमें भी विकार हो जाता है, परन्तु इसमें उपकारी पुरुषोंका दोष नहीं गिना जा सकता है

मनुष्यकी बुद्धिमें जब अजीर्ण होता है, तब उन्हें तत्त्वकी वातके समझनेकी शक्ति जरासी भी नहीं रहती। यही हाल तेरापंथियोंका भी हुआ है। तभी तो वे विना समझे ही ऐसी २ शंकाएं करते हैं कि—

" उपाश्रयमें किसी श्रावकको मृगी आई और वह गिर गया, उसको साधु उठावे नहीं, तो फिर साधुके सामने मालेमेंसे गिरे हुए पक्षीको उठा कर क्यों रक्खे ?। बिल्ली चूहेके पीछे पडी हो, तो उस चूहेको क्यों बचावे ?। जलते हुए मकानमेंसे, किंवाड खोल पशुओंको क्यों निकाले ?। गाडाके नीचे बालक आजाय तो उसको क्यों उठा ले ?। इत्यादि।" (देखो अनुकंपा-रासकी प्रथम ढाल)

इन शंकाओंसे तेरापंथियोंने अपने मतको जाहिर किया कि— ' मालेमेंसे पक्षी गिर पडे तो उसको उठाकर अलग नहीं छोडना चाहिये।' ' बिल्ली चूहेको और कुत्ता बिल्लीको मारता हो तो उन्हें नहीं बचाने चाहियें।' ' मकानमें पशु जल रहे हों, तो उस मकानका किंवाड नहीं खोलना चाहिये।' ' गाडाके नीचे बच्चा आ जाता हो, तो उसको भी उठाकर अलग नहीं रखना चाहिये।'

तेरापंथियोंकी दया उन्हींको मुबारिक रहे। क्या दुनियामें ऐसी दयावाला धर्म भी कहीं होगा ?। तेरापंथियोंने उपर्युक्त 'गृहस्थ' के दृष्टान्तके साथमें और बातोंका मुकाबला कर, निषेध किया है, यह बडी भारी भूल की है। श्रावकको मृगी आई और वह गिर गया, तो उसको साधु न उठावे, ऐसा कहा किसने ?। अगर उस स्थान-पर कोई गृहस्थ नहीं है, और वह श्रावक बहुत दुःखी हो

रहा है, तो उसको उठानेकी कहीं भी मना नहीं। हमारे साधुओंका हृदय, तेरापंथियोंके जैसा निर्दय नहीं है, कि–वे अपने सामने पड़े हुए दुःखी जीवको, अपने धर्मकी रक्षापूर्वक, बचानेका प्रयत्न न करें।

तेरापंथी कहते हैं कि—

" मुसादिकने बचावता जी पिनकीने दुःख थाय "

अर्थात्–"बिल्ली चूहेको पकडती हो, तो उस समय यदि चूहेको बचाया जाय, तो बिल्लीको जरूर दुःख होगा। इस लिये उसको नहीं बचाना चाहिये। क्योंकि उसके भोजनमें अंतराय होगी। दूसरा यह भी कहते हैं कि–चूहेको बचानेसे चूहेपर राग और बिल्लीपर द्वेष होगा, इस लिये ऐसे राग-द्वेषका कार्य नहीं करना चाहिये।"

चूहेके नहीं बचानेमें तेरापंथियोंकी, ये दोनों युक्तियाँ निरर्थक ही हैं। देखिये। प्रथम तो बिल्लीको दुःख होनेका कहना ही झूठा है। मनुष्य चूहेको बचावेगा, वह इस अभिप्रायसे नहीं बचावेगा कि, मैं बिल्लीके भोजनको छीन कर उसे कष्ट पहुँचाऊं। चूहेको बचानेवालेका अभिप्राय जीवके बचानेका और बिल्लीको अधिक पापके करनेसे अटकानेका ही है। जैसे, एक विषमिश्रित दूधसे भरा कटोरा पड़ा है। उसको उठाकर एक अत्यन्त भूखा बालक उसे पीनेका प्रयत्न करने लगा। वहाँ बैठे हुए दूसरे मनुष्यने यदि वह कटोरा छीन लिया, तो कहिये, उस मनुष्यको धर्म होगा या पाप? और उस मनुष्यको अन्तराय लगेगी या नहीं?। कहना ही होगा कि–उस मनुष्यको पाप नहीं, किन्तु धर्म होगा। अन्तराय नहीं लगेगी, किन्तु जीवके बचानेका महान् लाभ होगा।

उस मनुष्यका यहाँ यह इरादा—अभिप्राय यह नहीं है कि—मैं इस दुग्धको छीनकर बालकको कष्ट पहुँचाऊं। उसका तो इरादा है बालकको बचानेका।

नैतिक रीतिसे भी यहाँ विचार किया जाय तो मालूम हो सकता है कि-बिल्लीका अधिकार ही क्या है, जो चूहे पर इस प्रकारके अन्यायसे आक्रमण करे ?। और ऐसे अन्यायको रोकना, यह क्या सज्जनोंका धर्म नहीं है ?। अवश्य है। सज्जनोंका यह परम कर्तव्य है कि, 'सबल जीव, दुर्बल जीवके ऊपर आक्रमण करता हो—अत्याचार करता हो—अन्याय करता हो, तो उसको रोकनेके लिये यथाशक्ति अवश्य ही प्रयत्न करें।'

दूसरा कारण राग-द्वेषका दिखलाते हैं, यह भी ठीक नहीं है। अर्थात् चूहेको बचानेसे चूहे पर राग और बिल्लीपर द्वेष नहीं होसकता। यहाँ राग—द्वेष होनेका कारण ही क्या है ?। चूहेने कौनसा हमारा कार्य कर दिया है कि जिससे उसपर राग हो। और बिल्लीने कौनसा हमारा कार्य बिगाड डाला है, जिससे हमारा उसपर द्वेष हो। अगर बिल्लीपर हमारा द्वेष ही होता तो, हम, उसी समयमें एक कुत्ता आकर बिल्लीको मारने लगे, तो, उस बिल्लीको क्यों बचावें ?। लेकिन नहीं, उस समय हम बिल्लीको भी बचावेंगे। अब कहाँ रहा राग—द्वेष ?। इस लिये समझना चाहिये कि—जीवोंको जो बचाये जाते हैं, वे रागसे नहीं, किन्तु दयाके परिणामसे—अनुकंपाकी बुद्धिसे। बस, इसी प्रकार जिस अभिप्रायसे, बिल्लीसे चूहेको और कुत्तेसे बिल्लीको बचाये जाते है, उसी अभिप्रायसे गिरे हुए पक्षीको मालेमें रखनेमें, जलते हुए मकानके किंवाडोंको खोल पशुओंको निकालनेमें और गाडेके नीचे आए हुए बच्चेको उठाकर अलग रखनेमें

किसी प्रकारकी हानि नहीं, किन्तु लाभ ही है। क्योंकि–यहाँ बचानेवालेके ऐसे तुच्छ अभिप्राय नहीं होते हैं कि पक्षी पशु और मनुष्य, ये जीएंगे तो खायगें–पीएंगे–जंगल जाएंगे–विषय सेवन करेंगे, वगैरह पापकर्म करेंगे इसका पाप हमें लगेगा ?। बचानेवालेका परिणाम जीव बचानेका ही होता है। और जैसा परिणाम होता है, वैसाही लाभ होता है, यह तो पहिले ही कहा जा चुका है।

तेरापंथियोंने, दयाको (!) यहाँतक बढा कर कहा है किः—

" गिरसतरे लागी लायो, घरबारे नीकलीयो न जायो।
बलता जीव बिलबिल बोले साधु जाय किंवार न पोले" ॥५॥
(अनुकंपारास, ढाल–६)

हीं हीं हीं, निर्दयताकी हद आ चुकी। घरमें रहे हुए अनेकों मनुष्य अग्निसे जलनेके कारण चिल्लाहट कर रहे हों, लेकिन साधु मजेसे देखता रहे। कितनी निर्दयता ? कितनी कठोरता ?। ऐसे भी धर्मको, लोग संसारसे पार उतारनेवाला समझते हैं ?। क्याही लोगोंकी मूर्खता ?। भगवान् महावीरदेव, प्रभु पार्श्वनाथ वगैरह तीर्थंकर, कि जिनको यह निश्चय है कि–हमारी इसी भवमें मुक्ति होनेवाली है, वे तो अनुकंपासे जीवोंको बचावें, और इस तेरापंथीके साधु (!) आनंदसे जीवोंको जलते हुए देखें। धन्य है इस पंथको।

तेरापंथियोंने, इस अनुकंपाके विषयमें, ऐसी तो ऊटपटांग बातें, बिना समझे लिख मारी हैं, जिनको पढ कर बुद्धिमान लोग सिवाय इनपर तिरस्कार करनेके और कुछ नहीं कर सकते।

कहीं तो कह दिया 'यह अनुकंपा आज्ञामें है'। कहीं कह दिया 'यह अनुकंपा आज्ञा बाहर है।' कहींपर मोहके प्रसंगोंको अनुकंपामें ला घुसाये, और कहीं भगवानपर ही चूकनेका कलंक लगा दिया। यही तो अनुकंपाके रासमें पचरंगी पडदे हैं। पहिले अनुकंपा रासकी दूसरी ढालको देखिये। इस ढालमें पहिले तो यही दिखलाया है कि—

> " वंछे मरणो जीवणो, तो धर्मतणो नहि अंस।
> ए अणकंपा कीधां थकां, वधे कर्मनो वंस " ॥ १ ॥

मंगलाचरण क्याही अच्छा किया ?। जीवका मरना न चाहना यह तो ठीक, परन्तु जीना भी नहीं चाहना ?। अच्छा, तेरापंथी क्या यह भी कुछ कह सकते हैं, कि जीना मरना अपना नहीं चाहना, या दूसरे जीवोंका ?। अगर 'अपना' कहेंगे, तो हमें बतावें कि–रोज खाते–पीते क्यों है ?। बीमार पडते हैं तब दवाई क्यों कराते हैं ? और टट्टी भी क्यों जाते हैं ?। क्या यह 'जीना नहीं चाहा ?। अच्छा अगर यह कहा जाय कि–'दूसरे जीवोंका जीना मरना नही चाहना' तो यह भी ठीक नहीं है। क्योंकि–यदि दूसरे जीवोंका जीना नहीं चाहते हैं तो, 'खुले मूँहसे बोलेंगे तो वायुकायके जीव मरेंगे' ऐसा समझ कर मूँहपर पट्टी क्यों बांधते हैं ?। दालमें मक्खी गिर जाती है, तो उसको निकालते क्यों हैं ?। कपडोंमें जूएं पडती हैं तो उनको धीरेसे निकालकर अलग क्यों रखते हैं ?। कहिये इन कार्योंमें जीवोंका जीना चाहा कि नहीं ?। यदि जीवोंका जीना नहीं ही चाहते हैं, तो फिर जो कुछ होवे सो होने ही देना चाहिये। और प्रयत्नोंके करनेकी आवश्यकताही क्या है ?। बल्कि हम तो यहांतक कह सकते हैं कि–उन लोगोंको चाहिये कि–दयाका नाम तक भी न

में । जहाँतक ' दया ' का नाम लेते रहेंगे—जीवोंके बचानेके इरादेसे क्रियाएं करते रहेंगे, वहाँतक ' जीवोंका जीना नहीं चाहते ' यह कथन वाणीमात्रमें ही समझा जायगा ।

आगे चलकर इसी दूसरी ढालमें कई प्रसंगोका विना समझे ही उल्लेख किया है । जैसे:--

" चंपानगरीके वणिकोंका दृष्टान्त देकर, देवताके उपद्रव होनेपर भी अर्हन्नकश्रावकने अनुकंपा नहीं की, ऐसा दिखलाया है ।' 'नमिराजऋषिने, इन्द्रके कहनेपर भी जलती हुई मिथिलाके सामने नहीं देखा ।' ' केशवके बन्धु गजसुकुमालके सिरपर सोमलने मिट्टीकी पाल बांधी और अंगारे भरे, परन्तु श्रीनेमनाथजीने अनुकंपा नहीं की । ' ' भगवान् महावीर स्वामीको देव—मनुष्य और तिर्यचोंने अनेकों प्रकारके उपसर्ग किये, परन्तु कोई भी इन्द्र, इन उपसर्गोंको दूर करनेके लिये आया नहीं । ' ' सारे द्वीप—समुद्रोंमें मच्छ गलागल हो रही है, अगर भगवान् इन्द्रको कहते तो शीघ्र वह मिटा सकता था, परन्तु भगवान्ने इन्द्रको भी नहीं कहा । ' ' चुलणीपियाने पौषध किया, उस समय देवताने आकर अनेक कष्ट दिये, उसके पुत्रोंको, उनके सामनेही तेलमें तले, परन्तु चुलणीपियाने अनुकंपासे उनको बचानेके लिये नहीं कहा । ' चुलणीपिया, जब अपनी माताको बचानेके लिये गया, उस समय उसका व्रत भांगा । ' ' चेडा और कोणिककी लडाईमें एक क्रोड अस्सीलाख मनुष्य मरे, लेकिन भगवान्ने, अनुकंपा ला करके उनको बचानेके लिये न आप पधारे, और न अपने साधुओंको भेजे । और लडाई होनेके पहिले भी मनाई नहीं की । ' ' समुद्रपालको, (समुद्रपाल) चोरके देखनेसे उत्कृष्ट वैराग्य उत्पन्न हुआ, परन्तु उसने चोरपर करुणा नहीं की । "

उपर्युक्त सारे प्रसंग भोले लोगोकों भ्रमित करने के लिये ही तेरापंथियोंने दिए हैं। वास्तवमें इन प्रसंगोंमें जो हकीकतें बनी हैं, उन बातोंको तेरापंथियोंने छिपाई हैं। अच्छा, एक एक प्रसंगको अनुक्रमसे देख लीजिये।

ज्ञातासूत्रके ८ वें अध्ययनमें अर्हन्नक श्रावककी कथा चली है। अर्हन्नक चंपानगरीके कई वणिकोंके साथ नावको लेकर देशान्तरोंमें जा रहा है। देवता उसकी धर्म दृढताकी परीक्षा करनेको आया है। देवताके किये हुए पिशाचरूपसे अर्हन्नकको छोडकर सभी वणिक् डर गये हैं। अर्हन्नकने विचार किया कि—'इस उपद्रवको दूर करनेके लिये कोशिश करनी चाहिये।' ऐसा विचार करके

" तएणं से अरहण्णए समणोवासए तं दिव्वं पिसायरूवं एज्जमाणं पासइ २ त्ता अभीए अतत्थे अचलिए असंभंते अणाउले अणुव्विग्गे अभिण्णमुहरागणयणवण्णे अदीणविमणमाणसे पोयवाहणस्स एगदेसंसि वत्थं तेणं भूमिं पमज्जइ २ त्ता ठाणं ठायइ २ त्ता करयलजाव तिकट्टु एवं वयासी णमोत्थुणं अरिहंताणं जाव ठाणं संपत्ताणं जइणं अहं एतो उवसग्गओ मुंचामि तो मे कप्पइ पारित्तए अहण्णं जइणं अहं एतो उवसग्गाओ ण मुंचामि तो मे तहा पच्चक्खाएयव्वं तिकट्टु सागारभत्तं पच्चक्खाइ। " (पृ० ७६०–७६१)

अर्थात्—अर्हन्नक श्रमणोपासकने, उस देवके पिशाचरूपको आते हुए देखा। देख करके, अभीत–अत्रासित–अचलित–असंभ्रान्त–अनाकुल–अनुद्वेग, तथा मुखकी आकृति और नेत्रोंका वर्ण बदला नहीं है एवं अदीनमन हो करके, नाव के एक देशमें जाके वस्त्रसे

भूमीका प्रमार्जन करके, उस स्थानपर बैठा। बैठ करके बद्धा-ञ्जलीपूर्वक नमुत्थुणं कहा। कह करके इस प्रकारका अभिग्रह किया कि–' मैं इस उपसर्गसे मुक्त हो जाऊंगा, तो काउस्सग्ग पारूंगा। नहीं तो मुझको सागारिक, भातपानीका पच्चखाण है।

अर्हन्नकने इस प्रकारका अभिग्रह क्यों किया? इस बातको प्रथम सोचना चाहिये। विचार करनेसे यही मालूम होता है कि–यहाँपर अनुकंपाके सिवाय और कोई कारण नहीं था। क्योंकि–अर्हन्नक स्वयं तो धर्ममें दृढ था ही–इसको किसी प्रकारका भी डर नहीं था। फिर भी अनुकंपाके ही कारणसे इस उपद्रवको दूर करनेके लिये इसने ऐसा किया है। तेरापंथी कहते हैं कि–' अर्हन्नकने अनुकंपा नहीं की।' यह उनकी भूल है। क्योंकि, अगर इसने अनुकंपा नहीं की थी, तो बतावें तेरापंथी, इस उपद्रवके होनेके पश्चात् इसको ऐसा अभिग्रह करनेका कारण ही क्या था?।

खैर, तिसपर भी 'तुष्यतु दुर्जनः' न्यायसे यह मान लें कि–अर्हन्नकने अनुकंपा नहीं की, तो यह कहना होगा कि–यहाँ अनुकंपा करनेका कोई कारण नहीं था। क्योंकि–अर्हन्नक यह जानता था कि–' यह मेरी परीक्षा करनेको आया है। और इससे कुछ होनेवाला भी नहीं है। और इसीलिये तो अर्हन्नक, देवताके उपद्रवको देखकर अपने मनमें विचार करता है:–

" अहण्णं देवाणुप्पिया अरहण्णए णामं समणोवासए अभिगयजीवाजीवे णो खलु अहं सक्का केणइ देवेण वा दाणवेण वा जाव निग्गंथाओ पावयणाओ चालित्तए वा खोभित्तए वा विपरिणामित्तए वा तुमण्णं जा सद्धा तं करेही त्तिकट्टु अभीए

उपर्युक्त सारे प्रसंग भोले लोगोंको भ्रमित करने के लिये ही तेरापंथियोंने दिए हैं। वास्तवमें इन प्रसंगोंमें जो हकीकतें बनी हैं, उन बातोंको तेरापंथियोंने छिपाई हैं। अच्छा, एक एक प्रसंगको अनुक्रमसे देख लीजिये।

ज्ञातासूत्रके ८ वें अध्ययनमें अर्हन्नक श्रावककी कथा चली है। अर्हन्नक चंपानगरीके कई वणिकोंके साथ नावको लेकर देशान्तरोंमें जा रहा है। देवता उसकी धर्म दृढताकी परीक्षा करनेको आया है। देवताके किये हुए पिशाचरूपसे अर्हन्नकको छोडकर सभी वणिक् डर गये हैं। अर्हन्नकने विचार किया कि– 'इस उपद्रवको दूर करनेके लिये कोशिश करनी चाहिये।' ऐसा विचार करके

" तएणं से अरहण्णए समणोवासए तं दिव्वं पिसायरूवं एज्जमाणं पासइ २ त्ता अभीए अतत्थे अचलिए असंभंते अणाउले अणुव्विग्गे अभिण्णमुहरागणयणवण्णे अदीणविमणमाणसे पोयवाहणस्स एगदेसंसि वत्थं तेणं भूमिं पमज्जइ २ त्ता ठाणं ठायइ २ त्ता करयलजाव तिकट्टु एवं वयासी णमोत्थुणं अरिहंताणं जाव ठाणं संपत्ताणं जइणं अहं एतो उवसग्गओ मुंचामि तो मे कप्पइ पारित्तए अहण्णं जइणं अहं एतो उवसग्गाओ ण मुंचामि तो मे तहा पच्चक्खाएयव्वं तिकट्टु सागारभत्तं पच्चक्खाइ।" (पृ० ७६०–७६१)

अर्थात्—अर्हन्नक श्रमणोपासकने, उस देवके पिशाचरूपको आते हुए देखा। देख करके, अभीत–अत्रासित–अचलित–असंभ्रान्त–अनाकुल–अनुद्वेग, तथा मुखकी आकृति और नेत्रोंका वर्ण बदला नहीं है एवं अदीनमन हो करके, नाव के एक देशमें जाके वस्त्रसे

भूमीका प्रमार्जन करके, उस स्थानपर बैठा। बैठ करके बद्धा-ञ्जलीपूर्वक नमुत्थुणं कहा। कह करके इस प्रकारका अभिग्रह किया कि–'मैं इस उपसर्गसे मुक्त हो जाऊंगा, तो काउस्सग्ग पारूंगा। नहीं तो मुझको सागारिक, भातपानीका पच्चखाण है।

अर्हन्नकने इस प्रकारका अभिग्रह क्यों किया? इस बातको प्रथम सोचना चाहिये। विचार करनेसे यही मालूम होता है कि–यहाँपर अनुकंपाके सिवाय और कोई कारण नहीं था। क्योंकि–अर्हन्नक स्वयं तो धर्ममें दृढ था ही–इसको किसी प्रकारका भी डर नहीं था। फिर भी अनुकंपाके ही कारणसे इस उपद्रवको दूर करनेके लिये इसने ऐसा किया है। तेरापंथी कहते हैं कि–'अर्हन्नकने अनुकंपा नहीं की।' यह उनकी भूल है। क्योंकि, अगर इसने अनुकंपा नहीं की थी, तो बतावें तेरापंथी, इस उपद्रवके होनेके पश्चात् इसको ऐसा अभिग्रह करनेका कारण ही क्या था?।

खैर, तिसपर भी 'तुष्यतु दुर्जनः' न्यायसे यह मान लें कि–अर्हन्नकने अनुकंपा नहीं की, तो यह कहना होगा कि–यहाँ अनुकंपा करनेका कोई कारण नहीं था। क्योंकि–अर्ह-न्नक यह जानता था कि–'यह मेरी परीक्षा करनेको आया है। और इससे कुछ होनेवाला भी नहीं है। और इसीसे तो अर्ह-न्नक, देवताके उपद्रवको देखकर अपने मनमें विचार करता है:–

"अहण्णं देवाणुप्पिया अरहण्णए णामं समणोवासए अभिगयजीवाजीवे णो खलु अहं सक्का केणई देवेण वा दाणवेण वा जाव निग्गंथाओ पावयणाओ चालित्तए वा खोभित्तए वा विपरिणामित्तए वा तुमण्णं जा सद्धा तं करेही त्तिकट्टु अभीए

जाव अभिण्णमुहरागणयणवण्णे अदीणविमणमाणसे णिञ्चले णिप्फंदे तुसिणीए धम्मज्झाणोवगए विहरइ।" (पृष्ठ–७६५–७६६)

अर्थात्–"हे देवानुप्रिय! मैं अर्हन्नक श्रावक हूं। जीवाजीवादिपदार्थोंको जानता हूँ। मुझको, कोई भी देव–दानव, निर्ग्रंथ प्रवचनके–सिद्धान्तसे चलाय मान करनेके लिये समर्थ नही है। अथवा न क्षोभित करनेके लिये समर्थ है और न विपरिणामी बनानेके लिये समर्थ है। अतएव तेरेको जो करना होवे सो कर।"

"इस प्रकार कह करके, जिसने अपने मुखका रंग बदला नही है, दीनमन किया नहीं है, ऐसा अर्हन्नक, निश्चलरूपसे अपने शरीरके अंगोंको नहीं हिलाता हुआ धर्मध्यानमें स्थित रहा।"

अब इस पाठ परसे विचारनेकी बात यह है कि–अर्हन्नकके मनमें निश्चय था कि–इस देवतासे कुछ भी होनेवाला नहीं है। अर्हन्नकको जब देवताने यह कहा कि–'तू अपने धर्मको छोड दे, नहीं तो मैं तेरी नावको डुबा दूंगा' तभीसे वह जान गया कि–'यह देवताकी झूठी ही करतूत है, करने–धरनेका कुछ नहीं है।' फिर वह अपने धर्मको छोड करके देवतासे क्यों प्रार्थना करे कि–'तू इन लोगोंको मत मार'। हम तेरापंथियोंसे पूछते हैं कि–'क्या देवताने उन वणिकोंको मार डाले हैं?।' बिलकुल नहीं। अर्हन्नकने जैसा विचार किया, उसी प्रकारसे उन वणिकोंकी जरासी भी हानी नहीं हुई। और वे सबके सब जहाँ जाना था, वहाँ पहुँचे हैं। देखिये उस पाठको:—

" तए णं से अरहण्णए समणोवासए णिरुवसग्गेत्तिकट्टु पडिमं पारेइ तएणं अरहण्णगपामोक्खा जाववाणियगा दक्खिणाणुकूलेणं वाएणं जेणेव गंभीरपोयपट्टणे तेणेव उवागच्छइ-"

(पृष्ठ ७७३-७७४)

अर्थात्-इसके बाद अर्हन्नक श्रावकने, निरुपद्रव हो करके काउस्सगको पारा, पश्चात् अर्हन्नक प्रमुख वणिक् दक्षिणदिशाके अनुकूल वायुसे जहाँ गंभीरपोतपट्टन है, वहाँ आते हैं।

इससे स्पष्ट जाहिर होता है कि-उन वणिकोंको कुछ भी हानी नहीं हुई है। अब यहाँपर अनुकंपा करनेका कारण ही क्या है, जो तेरापंथी लंबी २ कुलाँचें मारते हैं ?।

हमारा तो यह भी कहना है कि- अनुकंपा भी की जाती है, तो वह अपने धर्मकी रक्षा पूर्वक की जाती है। अनुकंपा ही क्यों! जितने संसारमें अच्छे कार्य हैं; वे भी, अपने धर्मको रख करके ही किये और कराये जाते हैं। हम पूछते हैं कि-तेरापंथीके साधुको कोई यह कहे कि-' आप एक घंटेभरके लिये मेरी पघडी पहनलें, तो मैं लाख सामायिक करूं '। क्या तेरापंथीके साधुजी इस कार्यको करना मंजूर करेंगे ? अथवा कोई गृहस्थ, तेरापंथी साधुसे यह कहे कि-' आप एक ही साधु गृहस्थ वन जाँय, तो, हम सौ आदमी दीक्षा लें।' क्या तेरापंथीके साधु इस वातको स्वीकार करेंगे ?। अथवा एक ऐसा ही दृष्टान्त ले लीजिये कि, जैसे कोई स्त्री तुम्हारे साधुजीसे यह कहे कि-'आप मुझसे विषय सेवन कीजिये, नहीं तो मैं मर जाऊंगी '। कहिये साधुजी इस वातको स्वीकार करेंगे ?। कभी नहीं। इससे स्पष्ट जाहिर होता है कि-अनुकंपादि अच्छे कार्य भी स्वधर्मकी रक्षापूर्वक ही किये जाते हैं।

अर्हन्नकको तो यहाँपर यह भी प्रसंग नहीं था। यहाँ तो केवल देवताका उपद्रव, अर्हन्नकको धर्मसे चूकानेके लिये था। और अर्हन्नक इस बातको अच्छी तरह जानता भी था। तो फिर क्यों धर्मसे चूके, और प्रार्थना करे।

दूसरा उल्लेख है नमिरायऋषिका। नमिराजा, अपनी मिथिला नगरी-राज-पाट-अन्तेउर वगैरह सबको छोड कर साधु हो गया। इसको संसारके किसी पदार्थपर अब ममत्व नहीं है। राजाके साधु हो जानेसे, सारी नगरीके लोग रुदन कर रहे हैं, इनको देख, नमिरायकी दृढताकी परीक्षा करनेके लिये इन्द्र, ब्राह्मणके वेषमें नमिरायऋषिके पास आया। इन्द्रने इसको चलायमान करने के लिये कहा है:—

" एस अग्गी य वाउ य एयं डज्झइ मंदिरं।
भयवं अंतेउरं तेणं कीसाणं नावपेक्खहि " ॥१२॥
" एयमट्ठं निसामित्ता हेऊकारणचोईओ।
तओ नमीरायरिसी देविंदं इणमब्बवी " ॥१३॥
" सुहं वसामो जीवामो जेसिं मो नत्थि किंचणं।
महिलाए डज्झमाणीए न मे डज्झइ किंचणं " ॥१४॥
" चत्तपुत्तकलत्तस्स निव्वावारस्स भिक्खूणो
पियं न विज्जए किंचि अप्पियंपि न विज्जए " ॥१५॥

(उत्तराध्ययन सूत्र, पृष्ठ—२८३—२८४)

अर्थात्—हे भगवन्! यह अग्नि और वायु दिख रहे हैं। यह मंदिर जल रहा है। अंतेउर जल रहा है। आप सामने क्यों नहीं देखते हैं?।'

इन्द्रके, इस प्रकार कहनेपर, इस अर्थको सुन करके, नमिराय-ऋषिने, इन्द्रसे कहा:—" मैं सुखसे रहता हूँ। मेरी कुछ भी वस्तु नहीं है। मिथिला नगरीके जलनेसे मेरा कुछ नहीं जलता है। क्योंकि-जिसने पुत्र—कलत्रको छोड दिये हैं, ऐसे निर्व्यापार साधुको न तो कोई प्रिय है, और न कोई अप्रिय। "

अव, इस प्रसंगको विचार लीजिये। तेरापंथी यह कहते हैं कि—" इन्द्रने नमिऋषिसे यह कहा कि-'आप मिथिलाके सामने देखें तो वह जलती हुई शान्त हो जाय।' लेकिन ऐसा इन्द्रने कहा ही कहाँ है ?। इन्द्रने तो यही कहा है कि-'आप सामने क्यों नहीं देखते ?।' तव उन्होंने कहा है कि—'मेरा कुछ है ही नहीं, तो मैं क्यों सामने देखुं ?।' अब, यहाँ अनुकंपाकी वातही क्या है। इन्द्र, नमिरायऋषिके मोहकी परीक्षा करता था, नकि यहाँ अनुकंपाका कोई कारण था। और वास्तवमें देखा भी जाय तो, जब नमिरायऋषि, संसारके समस्त पदार्थोंपरसे मोहको हटा करके साधु हो गए, तो फिर उनके संवंधियोंके रुदनसे अथवा मोहजन्य और चेष्टाओंसे उन्हें सामने देखनेकी आवश्यकता ही क्या थी ?। नमिरायऋषिकी ही क्यों वात करनी चाहिये ?। आज कलके जमानेमें भी वहुतसे मनुष्य संसारसे निर्मोही होकर साधु हो जाते हैं, उस समय, उनके पीछे अनेकों मनुष्य अनुकूल उपसर्ग करते हैं, लेकिन उन उप-सर्गोंके सामने देखते ही नहीं हैं, तो क्या इससे अनुकंपाका निषेध हो गया ?। कभी नहीं, ऐसे प्रसंगोंमें अनुकंपाका कारण ही क्या है ?।

तेरापंथियोंने जितने प्रसंगोंको आगे किये हैं, वे सब ऐसेके ऐसे ही हैं। विचारे भोलेलोग, कि जिनको इन वृत्तान्तोंसे

थोडा भी परिचय नही है, वे, ऐसी अधूरी २ बातोंसे भ्रमित हो सकते हैं। खैर, अभी और आगे बढिये।

गजसुकुमाल, जिस समय प्रतिमासाधन करनेके लिये श्मशानभूमीमें गये हैं, उस समय, सोमलब्राह्मणने उनके सिरपर मिट्टीकी पाल बांधी और अंगारे भरे। यहाँपर नेमनाथ भगवान्को अनुकंपा करके साधुओंको भेजनेकी कोई आवश्यकता थी ही नहीं, यह बुद्धिमान् लोग स्वयं विचार सकते हैं। क्योंकि–नेमनाथभगवान् भावीपदार्थोंको अच्छी तरह जानते थे। जब वे स्वयं केवलज्ञानसे जानते थे कि–गजसुकुमाल, इसी निमित्तसे ध्यानमें आरूढ हो कर कर्मोंको क्षय करनेवाले हैं, तो फिर वे इस उपद्रवको निवारण करनेके लिये भेजें ही क्यों ?। ऐसी प्रवृत्ति तो हम लोगोंको करनेकी है कि, जिनको भविष्यमें क्या होगा, इसका ज्ञान नहीं है। इस लिये यह प्रसंग भी स्थानोचित नही है।

'भगवान् महावीर देवको अनेकों उपसर्ग हुए, उस समय कोई भी इन्द्र, अनुकंपा करके रक्षा करनेके लिये नहीं आया।' यह भी कहना ठीक नहीं है। भगवान् महावीर देव, संसारके समस्त जीवोंपर अनुकंपा करते थे। जिन्होंने चारज्ञानोंको धारण करके समस्त कर्मोंको क्षय करनेके लिये कमर कसी थी, जिनको उपद्रवोंका सामना करके ही कर्मोंका क्षय करना था और जो इसी अभिप्रायसे ही ऐसे प्रसंगोंको प्राप्त करते थे, उन परमात्माकी हम जैसे पामर जीव क्या अनुकंपा कर सकते हैं ?। क्या तेरापंथियोंको इस बातका ख्याल ही नहीं है कि–तीर्थंकर देव किसीकी अपेक्षा नहीं करते हैं ?। क्या तेरापंथियोंने यह कभी पढा है कि–जिस समय परमात्मा महावीर देवको उपसर्ग होने लगे,

उस समय, इन्द्रने आकरके प्रार्थना की है कि—'हे भगवन् ! आपको बारह वर्ष पर्यन्त उपसर्ग होनेवाले हैं, इस लिये मैं उनको निवारण करनेके लिये आपकी सेवामें रहूँ ।' भगवान्ने उस समय साफ साफ कह दिया है कि—'अर्हन् दूसरोंके सहायकी जरासी भी अपेक्षा नहीं रखते ।' देखिये, कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचंद्राचार्य, अपने योगशास्त्रके प्रथम प्रकाशमें इसी मत-लबको कहते हैं:—

" ततः प्रदक्षिणीकृत्य त्रिमूर्ध्ना प्रणिपत्य च ।
इति विज्ञापयाञ्चक्रे प्रभुः प्राचीनबर्हिषा " ॥ ७३ ॥
" भविष्यति द्वादशाब्दान्युपसर्गपरम्परा ।
तां निषेधितुमिच्छामि भगवन् पारिपार्श्विकः" ॥७४॥
" समाधिं पारयित्वेन्द्रं भगवानूचिवानिति ।
नापेक्षाञ्चक्रिरेऽर्हन्तः परसाहायिकं क्वचित् " ॥७५॥

(पृष्ठ—१०)

इन श्लोकोंका सार ऊपर दे ही दिया है । इस परसे स्पष्ट जाहिर होता है कि—भगवान् किसीकी सहायताकी अपेक्षा नहीं रखते हैं । हां, यहाँपर अनुकंपाका विषय तो तब गिना जाता, जब कि—भगवान्ने इन्द्रकी सहायता चाही होती, और इन्द्रने, अनुकंपामें पाप समझ करके मूँह मोड लिया होता । लेकिन यह तो हुआ नहीं । इन्द्र तो भक्ति करनेके लिये आया ही था, और भगवान्ने, अपने ही पुरुषार्थसे कर्मक्षय करनेके लिये इन्द्रको निषेध कर दिया था । फिर इस प्रसंगकी यहाँ आवश्यकता ही क्या थी ? ।

सारे द्वीपसमुद्रोंमें, मच्छगलागल हो रही है, उसको बंध कर-नेके लिये भगवान्ने इन्द्रको नहीं कहा, इसमें भी यही कारण

है कि–भगवान् भाविभावको सम्यक्प्रकारसे जानते थे, और तदनुकूल ही उनकी प्रवृत्ति होती थी। भाविभावमें, अर्थात् जैसी होनहार है, उसमें जरासाभी फर्क, कोई नहीं करसकते। हम लोग छद्मस्थ होनेके कारण भविष्यमें इसका क्या होगा ? यह ज्ञान नहीं होनेके कारण, हमें प्रत्येक कार्योंमें प्रवृत्ति करनी पडती है। यदि हमारेमें भी भावीपदार्थके यथार्थ जाननेका ज्ञान हो जायगा, तब, हम भी तदनुकूल ही प्रवृत्ति करेंगे। और यदि होनहार को भी तीर्थंकर भगवान् अन्यथा कर सकते हों, तो, हम तुमसे पूछते हैं कि–

वर्तमान समयमें महाविदेह क्षेत्रमें श्रीसीमंधरस्वामी विराजमान हैं। यदि सीमंधरस्वामी इस बातको चाहें, कि–इन्द्रको कह करके संसारमेंसे मिथ्यात्वको मिटा देना चाहिये, तो मिटा सकते हैं। और इस बातको तो आप लोग भी अच्छा समझते हैं। फिर भी यह बतलाईये कि–श्रीसीमंधरस्वामी ऐसा क्यों नहीं करते ?।

चुलणीपिताका दृष्टान्त भी तेरापंथियोंने बेसमझसे ही दिया है। चुलणीपिता श्रावकने जब पौषध किया है, तब रात्रिके समय एक देवता उसकी परीक्षा करनेको आया है। देवताने साफ २ कह दिया है कि–‘ तू अपने धर्मको छोड दे, नहीं तो मैं तेरे पुत्रोंको मारूँगा। ’ इतना ही नहीं, चुलणीपिताकी धर्मदृढताको देख, इसको चलायमान करनेके लिये, उसके तीन पुत्रोंको लाकर मारते हुए भी दिखाए। तिसपर भी वह चलायमान नहीं हुआ। अन्तमें जब देवताने चुलणीपिताकी माताको मारनेका डर बताया, उस समय माताके मोहसे, उसने कोलाहल कर दिया। और इसको सुन माता, पौषधशालामें आई।

अब कहनेका मतलब यह है कि—यहाँपर चुलणीपिताने अनुकंपाकी ही नहीं है। यहाँ तो मातापर इसको मोह उत्पन्न हुआ है। और यह मोह, इस समय अर्थात् पौषधमें करनेका नहीं होनेसे तथा कोलाहलके करनेसे, इसका व्रतभंग दिखलाया है। नाकि, अनुकंपाके करनेसे। क्योंकि अनुकंपा तो यहाँ थी ही नहीं।

चेडा और कोणिकके संग्राममें एक क्रोड, अस्सी लाख मनुष्य मरे, इनको बचानेके लिये, भगवान्‌ने अनुकंपा लाकर, साधुओंको न भेजे, अथवा स्वयं न पधारे, ऐसा जो कहा जाता है, यह भी अज्ञानताका ही कारण है। क्योंकि—पहिले तो तेरापंथी, 'अनुकंपा'-को ही समझे नहीं हैं। अनुकंपा 'दुःखितेषु अपक्षपातेन दुःखप्रहाणेच्छा' अर्थात्—अपक्षपातसे, दुःखीके दुःखके नाश करनेकी इच्छाको अनुकंपा कहते हैं। अब बतलाईये, यहाँपर अनुकंपाका कारण ही क्या है?। एक राजा, दूसरेके राज्यलेनेकी इच्छासे अथवा ऐसे ही अन्य कारणोंसे जान-बूझ करके लडाई करता है। फिर इसमें अनुकंपाका क्या कारण रहा?। और ऐसे तो क्या भरतराजाने साठ हजार वर्ष पर्यन्त युद्ध नहीं किया था?। लेकिन ये प्रसंग अनुकंपाके नहीं गिने जा सकते हैं। दूसरी बात यह भी है कि—भगवान् तो स्वयं भावीपदार्थोंको जानते हैं, फिर इस प्रकार प्रवृत्ति क्यों करें?।

अब अन्तमें समुद्रपालका दृष्टान्त आगे किया है। समुद्रपाल, एक दिन गोखमें बैठा था, उससमय राजपुरुष, एक चोरको बांध करके वध करनेको ले जाते थे। इसको देखकर, समुद्रपालको परमवैराग्य हुआ, और पश्चात् वह साधु हो गया। तेरापंथी कहते हैं कि—समुद्रपालने दया लाकर उसको छुडाया क्यों नहीं ?।

लेकिन इस प्रसंगको समझना चाहिये। अनुकंपा दो प्रकारसे होती है। द्रव्यसे और भावसे। द्रव्यसे अनुकंपा वह कही जाती है कि–जो शक्तिके रहते हुए दुःखका प्रतीकार किया जाय। भावसे दया वह है, कि जो दुःखीको देख करके आर्द्र हृदय हो जाय। हम कहते हैं कि—'समुद्रपालने, यहाँ अनुकंपा नहीं की' ऐसे कहनेवाले झूठे हैं। इसने यहाँपर भावअनुकंपा की है। अगर इसने भावअनुकंपा नहीं की होती, तो इसको वैराग्य उत्पन्न होता ही नहीं, और न वह साधु ही होता। उस दुःखी मनुष्यको, जिसका कि वध होनेवाला था, देखकर इसका हृदय जरूर आर्द्र हुआ। और इसीसे इसको वैराग्य भी हुआ। हां, द्रव्यअनुकंपा, अपनी शक्ति नहीं होनेके कारणसे नहीं की। एक मनुष्य, कि जिसको किसी अपराधके कारण राज्यकी तर्फसे ही वध करनेका हुकम हुआ हो, उसको छुडाना साधारण मनुष्यका कार्य नहीं है। यह कार्य तो राजा ही कर सकता है। अन्य नहीं।

अब तीसरी ढालको देखिये। तीसरी ढालमें अनुकंपाके अनेक दृष्टान्तोंको दे करके बहुतसे दृष्टान्त जिनआज्ञामें कहे हैं, बहुत जिनआज्ञा बाहर। लेकिन इन प्रसंगोंको जब हम सूत्रोंमें देखते हैं, तब हमें कहीं यह प्राप्त नहीं होता कि–यह अनुकंपा जिनाज्ञा बाहर है। और वास्तवमें देखा जाय तो अनुकंपाका कार्य जिनाज्ञा बाहर हो ही नहीं सकता। क्योंकि–अनुकंपा तो स्वयं भगवान्ने ही की है, और दूसरोंको करनेके लिये फरमाया भी है। तो फिर यह जिनाज्ञा बाहर कैसे हो सकती है?। तब, यही कहना पडेगा कि–तेरापंथियोंने अनुकंपाको मूलसे उठानेके लिये ही ऐसी स्वकल्पित घटना की है। देखिये,

मेघकुमारने, हाथीके भवमें, ससलेकी भावीदुःखसे रक्षा की, इस अनुकंपाको जिनाज्ञामें कहते हैं। नेमनाथ भगवान्ने, अपने विवाहके समय मारनेके लिये इकट्ठे किये हुए पशुओंकी, भावीदुःखसे रक्षा की इसको भी जिनाज्ञामें कहते हैं। धर्मरुचिअनगार, 'जीवोंकी विराधना होगी' इस अभिप्रायसे, कटुतुंबेके शाकको स्वयं खा गये, इसको भी आज्ञामें कहते हैं। और भगवान्का गोशालेको बचाना; हरिणैगमेषीदेवका, सुलसाके वहां छहों पुत्रोंका छोडना; मेघकुमारके गर्भमें आनेपर, धारिणीरानीका, अनुकंपासे इच्छित अशनादिकका खाना, हरिकेशीकी रक्षाके कारण यक्षदेवताका, ब्राह्मणोंको उल्टेकर देना; वृद्ध पुरुषपर दया लाकर कृष्णजीका, उसकी ईंटें घरपर लाना, इत्यादिको जिनाज्ञा बाहर कहते हैं।

लेकिन, यह सोचनेकी बात है कि-अमुक अनुकंपा आज्ञा बाहर है, ऐसा, जब तक कोई प्रमाण न मिले, तब तक कैसे माना जा सकता है?। क्या अन्तःकरणके दयार्द्र परिणाम, आज्ञा बाहर हो सकते हैं?। कभी नहीं। चाहे, जीवोंके भावी दुःखोंके लिये दयार्द्र परिणाम हुए हों, चाहे, जीवोंके वर्तमान दुःखोंके लिये हुए हों। परन्तु दयावाला परिणाम होना, यह तो एकान्त लाभकर्ता ही है।

मेघकुमारने, अपने पैरके नीचे आए हुए ससलेपर पैर न रख करके उसकी रक्षाकी। नेमनाथ भगवान्ने, अपने विवाहके समय, मारनेके लिये लाए हुए जीवोंकी, रक्षा की। और धर्मरुचि अनगारने, कटुतुंबके शाकको खा करके, मरनेवाले जीवोंकी रक्षा की। इसी प्रकारसे जिस अनुकंपाको, तेरापंथी जिनाज्ञा बाहर कहते हैं, उसमें भी जीवोंकी रक्षा और उचित भक्तिका ही कारण है, और कोई नहीं। देखिये उन प्रसंगोंको—

भगवान्ने गोशालेको बचाया, इसका सारा वृत्तान्त सूत्रके पाठोंके साथ पहिले लिख आए हैं। इस लिये पुनः लिखनेकी आवश्यकता नहीं है।

हरिकेशी मुनि, जिस समय यज्ञपाटकमें आए हैं, उस समय ब्राह्मणोंने आपका बहुत तिरस्कार किया है। तिसपर भी हरिकेशी मुनि मौन ही रहे हैं। इनको देखकर तंदुकनामक वृक्षमें रहनेवाले एक यक्षको मुनिजीपर भक्ति उत्पन्न हुई है, और इस भक्तिके कारणसे ही, यक्षने मुनिजीके शरीरमें प्रवेश किया है। जैसे उत्तराध्ययन सूत्रके बारहवें अध्ययनमें कहा है:—

"जक्खो तहिं तिंदुयरुक्खवासी अणुकंपओ तस्स महामुणिस्स।
पच्छायइत्ता नियगंसरीरं इमाइं वयणाइं उदाहरित्था॥८॥पृ.३५३।

अर्थात्—तंदुकनामक वृक्षमें रहनेवाले मुनिके भक्त यक्षने, अपने शरीरको अदृश्य करके (मुनिजीके शरीरमें प्रवेश करके) इस प्रकार बोलने लगा।

अब यहाँपर जो अनुकंपा दिखलाई है, यह भक्ति अर्थमें हैं। क्योंकि—बडोंके प्रति छोटोंका जो कर्तव्य होता है, वह भक्ति अर्थमें ही लिया जाता है। जैसे पुत्र अपने माता—पिताकी रक्षा करता है, यह अनुकंपा भक्ति अर्थमें ही है। और ऐसे दृष्टान्त शास्त्रोंमें भी अनेकों स्थानोंमें मिलते हैं। देखिये—

परमात्मा महावीरदेव, जिससमय माताकी कुक्षिमें आए हैं, उस समय माताकी अनुकंपासे, अर्थात् माताको कष्ट न हो, इस अभिप्रायसे अपने अंगोपांगोंको गोपन कर दिये हैं। देखिये, कल्पसूत्रमें खास लिखा है:—

"तएणं समणे भगवं महावीरे माउय अणुकंपणट्ठयाए णिच्चले णिप्फंदे णिरेयणे अल्लीणपल्लीणगुत्ते आवि होत्था" ॥ ९१ ॥

(पत्र-११४)

यहाँपर अंगोपांगोंको गोपनकरने-निश्चल, निष्पंद होनेमें मातकी अनुकंपा ही कारण लिखा है। तो कहना होगा कि-यहाँ अनुकंपाका अर्थ भक्ति करनेका है। और टीकाकारोंने भी 'मातुर्भक्त्यर्थम्' यही अर्थ किया है।

जिस समय हरिणैगमेषी देवने इन्द्रकी आज्ञासे, गर्भापहरण किया है, उस समय भी 'हिआणुकंपएणं' अर्थात् 'हितानुकंपकेन भगवतो भक्तेन' कहा है। यहाँ पर भी 'अनुकंपा' से भक्ति अर्थ लिया है।

इसी प्रकार, अनुकंपाका 'भक्ति' अर्थ बहुत जगह होता है। क्योंकि कहा भी है कि:—

" आयरिअणुकंपाए, गच्छो अणुकंपिओ महाभागो।
गच्छाणुकंपणाए, अव्वुच्छित्ती कया तित्थे" ॥ १ ॥

(धर्मसंग्रह, पृ०२३०)

अर्थात्-आचार्यकी अनुकंपासे, महाभाग गच्छ भी अनुकंपित ही है। और गच्छ की अनुकंपासे, तीर्थ कदापि व्युच्छिन्न नहीं होता है।

कहनेका मतलब यह है कि-ऐसे प्रसंगोंमें जो 'अनुकंपा' शब्द आया उसका अर्थ 'भक्ति' करनेका है। और यह उचित भक्ति होनेके कारण इसको आज्ञा बाहर कभी नहीं कह सकते। क्योंकि-उचित कार्योंके करनेका तो शास्त्रकारोंका फरमान ही है।

बस, जैसा हरिकेशीमुनिका प्रसंग है, वैसा ही, हरिणैगमेषी-देवने, सुलसाकी अनुकंपासे, देवकीके छहों पुत्रोंको ला ला करके सुलसाके पास रक्खे हैं। यह भी प्रसंग है। यहाँपर भी हरिणैगमेषी देव, सुलसाका भक्त हुआ है। और इस भक्तिके कारण हीसे इसने, देवकीके छहों पुत्रोंको लाकर रक्खे हैं। इस लिये यह भी आज्ञा बाहर नहीं कहा जा सकता। यदि यह अनुकंपा—भक्ति आज्ञा बाहर होती, तो जिस समय देवकीने भगवान्से अपने पुत्रोंका वृत्तान्त पूछा है, उस समय भगवान्ने यह तो कहा ही नहीं है कि—'हरिणैगमेषीदेवने तेरे पुत्रोंको वहाँ रक्खे हैं, यह अनुचित किया है।' फिर इसको आज्ञा बाहर कैसे कह सकते हैं ?।

अच्छा, अब आईये धारिणीकी बातपर। तेरापंथी कहते हैं कि—मेघकुमार जिस समय धारिणीकी कुक्षिमें आया, उस समय धारिणीने गर्भकी अनुकंपासे इच्छित अशनादिकका आहार किया है। तेरापंथी इस अनुकंपाको आज्ञा बाहर कहते हैं।

हम तेरापंथियोंसे पूछते हैं कि—गर्भकी रक्षा करनेमें धारिणीका ही क्यों दृष्टान्त लिया गया ?। संसारमें ऐसी कौन स्त्री है कि—जो अपने गर्भकी रक्षा करनेके लिये प्रयत्न नहीं करती है ? फिर धारिणीने ही क्या गुन्हा किया कि—जो उसका दृष्टान्त आगे किया गया ?। औरोंकी बाततो जाने दीजिये। जिस समय तीर्थंकर, माताकी कुक्षिमें आते हैं, उस समय तीर्थंकरकी माता भी, जिस प्रकार गर्भको नुकसान न पहुँचे, तदनुकूल ही अशनादि आहार करती है, तो बतलाईये, यह किस आशयसे ? कहना होगा की गर्भकी अनुकंपाके आशयसे ही। तब तो फिर तीर्थंकरोंकी माताकी अनुकंपाको भी आज्ञा बाहर कहना चाहिये।

लेकिन नहीं, यह अनुकंपा आज्ञा बाहर नहीं है। क्योंकि माताका यह उचित कर्तव्य ही है। और यदि इस उचित कर्तव्यको न करे, तो प्राणघातका महान् पातकके लगनेका भय है।

हाँ, यह बात जरूर है कि-यह पक्षपाती अनुकंपा है। क्योंकि-कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्यने, अनुकंपाकी व्याख्या करते हुए, यह स्पष्टीकरण किया है कि-" अनुकंपा दुःखितेषु अपक्षपातेन दुःखप्रहाणेच्छा। पक्षपातेन तु करुणा स्वपुत्रादौ व्याघ्रादीनामप्यस्त्येव " (योगशास्त्र, द्वितीयप्रकाश, पृ० १८२) परन्तु इससे यह नहीं कहा जा सकता है कि-यह पक्षपाती अनुकंपा आज्ञा बाहर है। यदि यह अनुकंपा आज्ञा बाहर होती तो संसारमें कोइ भी धर्मात्मा स्त्री (तीर्थंकरकी माता जैसी), अपने गर्भकी रक्षा करनेके लिये प्रयत्न करती ही नहीं। ऐसी अनुकंपा पक्षपाती होने पर भी कर्तव्य स्वरूपा, अर्थात् करने लायक ही है। न कि उपेक्षा करने लायक। क्योंकि, इस अनुकंपाके प्रति उपेक्षा करनेसे जीवहत्याका पातक लगनेका भय रहता है।

कई तेरापंथी यह भी कहते हैं कि—" धारिणीको अकाल वृष्टि होनेका दोहला उत्पन्न हुआ। और उस दोहलेको पूरा करनेके लिये, अभयकुमारने देवताकी आराधना कर, अनुकंपासे अकाल वृष्टि करवाई, यह भी जिनाज्ञा बाहर है "। परन्तु यह भी ठीक नहीं है। क्योंकि—अभयकुमारका यह कर्तव्य था कि—किसी भी प्रकारसे माताका दोहद (विचार)- पूर्ण करना। इसी कर्तव्यको पालन करनेके लिये, अभयकुमारने भक्ति स्वरूपा अनुकंपा की है, तो यह जिनाज्ञा बाहर नहीं हो सकती। हम पूछते हैं कि—जब तीर्थंकर, माताके गर्भमें आते हैं, तब उनकी

माताके भी समस्त दोहद पूरे किये जाते हैं, क्या यह भी जिनाज्ञा बाहर है ! कभी नहीं। दोहदोंके पूरे करनेकी बात तो दूर रही परन्तु उत्तम और धर्मज्ञ पुरुषोंका तो यही कर्तव्य दिखलाया है किः—

"पितुर्मातुः शिशूनां च, गर्भिणीवृद्धरोगिणाम्।
प्रथमं भोजनं दत्त्वा, स्वयं भोक्तव्यमुत्तमैः" ॥ १ ॥

(धर्मसंग्रह, पृष्ठ २०६)

अर्थात्—पिता, माता, बालक, गर्भिणी, वृद्ध और रोगी, इन्होंको पहिले भोजन करा करके, पश्चात् उत्तम पुरुषोंने स्वयं भोजन करना चाहिये।

इतना ही नहींः—

"चतुष्पदानां सर्वेषां, धृतानां च तथा नृणाम्।
चिन्तां विधाय धर्मज्ञः, स्वयं भुञ्जीत नान्यथा" ॥२॥

(धर्मसंग्रह, प० २०६)

अर्थात्—धर्मज्ञपुरुष, समस्त पशुओंकी, और अपने आश्रित मनुष्योंकी चिन्ताकरनेके पश्चात् स्वयं भोजन करें।

अब विचारनेकी बात है, जब उत्तम और धर्मज्ञ गृहस्थ पुरुषोंके यहाँतक कर्तव्य दिखला दिये, तो फिर अभयकुमार जैसा धर्मात्मापुरुष, अपनी माताके दोहदको पूरा करनेके लिये भक्ति स्वरूपा करे, इसमें आश्चर्यकी बात ही क्या है ?।

यह समझनेकी बात है कि—अभयकुमारका यह उचित ही कर्तव्य था। और इस प्रकार जो उचित नहीं करता है, वह श्लाघनीय भी नहीं गिना जाता है। देखिये, इसके लिये कहा हैः—

" संपत्तवहुगुणोवि हु जो न मुणइ सम्ममुचियमायरिउं।
सलहिज्जइ सो न जणे ता मुणिऊणं कुणह उचियं " ॥१॥
(श्राद्धगुणविवरण, पत्र-४७)

अर्थात्-जो मनुष्य, सम्यग् प्रकारसे उचित आचरणको नहीं करता है, वह वहुगुणोंको धारण करते हुए भी, श्लाघाको प्राप्त नहीं कर सकता। अतएव उचित कर्तव्यको अवश्य करना चाहिये।

अभयकुमारका यह उचित कर्तव्य था-भक्तिस्वरूपा अनुकंपा थी, इस लिये, यह जिनाज्ञा वाहर कभी नहीं हो सकती।

अव रही कृष्णने की हुई, वृद्धकी दयाकी वात। यह भी आज्ञा वाहर नहीं है। क्योंकि-एक वृद्ध पुरुष ईंटें उठा उठा कर ले जा रहाथा, उसको देख कर कृष्णको दया आई है। और इस दयाके कारण उसको सहायता की है। क्या ऐसे दुःखी मनुष्यको सहायताका करना अनुचित था, जो इस दयाको हम आज्ञा वाहर कहें ?। क्या इस प्रसंगमें कहींपर यह लिखा हुआ दिखा सकते हैं कि-'इसको आज्ञा वाहर कहना,' अथवा 'यह अनुचित कार्य था ?।' कहीं नहीं। वल्कि-सूत्रमें तो यही मिलता है कि-जिस समय, कृष्णजी भगवान्के पास गये, उस समय भगवान्ने यही कहा है कि-" हे कृष्ण ! जैसे तुम्हारी सहायतासे, उस वृद्ध पुरुषकी शीघ्र कार्य सिद्धि हो गई, वैसे ही सोमलकी सहायतासे गजसुकुमालकी मोक्षप्राप्तिरूप कार्य सिद्धि शीघ्र हुई है।

अव विचार कीजिये, अगर कृष्णका सहायता करना अनुचित होता तो, भगवान् इस कार्यका जिकर करते हुए, योंही कह देते कि-' तुमने रास्तेमें आते हुए वृद्धपुरुष पर उपकार किया

है, वह अनुचित है।' लेकिन ऐसा तो कहा ही नहीं। बल्कि इस कार्यको तो प्रशंसा रूपमें कहा है। फिर इसको आज्ञा बाहर कैसे कह सकते हैं ?।

स्थूलबुद्धिसे विचार किया जाय, तो भी यह मालूम हो सकता है कि–संसारमें परोपकार करना, यह तो परमधर्म माना गया है। और इसी प्रकार बडे लोग, दुःखीमनुष्योंके ऊपर परोपकार करते ही आए हैं। और परोपकार तब ही होता है, जब दुःखीको देख करके अन्तःकरणमें दया आती है। फिर इसको आज्ञा बाहर कहना, कितनी अज्ञानताका कारण है ?।

इस प्रकार और भी बहुतसी बातें निर्दयताकी इस तीसरी ढालमें लिखी है। जैसे कि–' कोई जीव मरता हो, तो उसको उठाकर छायामें नहीं रखना चाहिये।' ' कोई मनुष्य जंगलमें भूला पड गया हो, उजाडमें जा रहा हो, और बहुत दुःखी हो रहा हो, तो उसको सीधा रस्ता नहीं दिखाना चाहिये। उसको वहाँ ही अनशन कराकरके स्वर्गमें पहुँचा देना चाहिये।' इत्यादि। लेकिन इन बातोंका जवाब लिख, पिष्टपेषण करना अच्छा नहीं समझते।

अच्छा, अब चतुर्थ ढालको देखिये। चोथी ढालमें, तेरापंथ मतके उत्पादक भीखमजीने, अपनी मानी हुई दयाका उल्लेख कर, ऐसी कुयुक्तियोंसे लोगोंको भ्रमित करनेकी चेष्टा की है, कि जिसको पढकर सचमुच भीखुनजी और उसके अनुयायियोंपर भावदया ही आती है। इस चतुर्थ ढालको पढकरके, हम यह तो अवश्य कह सकते हैं कि– भीषमजीने, अपने मतके प्रचार करनेके कारण, इस बातपर तो बिलकुल खयाल ही नहीं किया

है कि-किसी भी कार्यके करनेमें मनुष्यके परिणाम खास करके देखे जाते हैं। और इसीका यह परिणाम है कि-इस चोथी ढालमें अनेक प्रकारके कुतर्क करके वास्तविक वातको छिपाई है। देखिये। भीखुनजी कहते हैं:—

"कीडी मांकादिक लटा गजायां, ढांढारा पग हेठे चीथ्या जावे।
भेषधारी कहै में जीवबचावां, तो चुणचुण जीवांने कायनै उठावे" ॥ ९ ॥

यह कहा किसने कि-'जिससमय कोई पशु जा रहा हो, और उसके नीचे अगर कोई जीव आ जाता हो, और दृष्टिमें अगर आ जाय, तो उसको न उठावे?। जरूर उठाकर अलग रक्खे। अगर वहाँपर कोई गृहस्थ न होवे, तो साधु स्वयं उठाकर अलग रक्खे, तो उसमें कोई हर्जकी वात नहीं है। और यह कहना भी विलकुल भूल है कि-'साधुको, वैसे ही दिनभर जीवोंको उठाते फिरना चाहिये।' क्योंकि अच्छे कार्य भी समयपर ही किये जाते हैं। हम तेरापंथी साधुओंसे पूछते हैं कि-आप लोग, जीवको बचानेमें पाप समझते हैं, परन्तु सामायिक करानेमें तो धर्म समझते हो। अच्छा, इसमें अगर धर्म समझते ही हो, तो फिर दिन भर लोगोंके मकानोंमें घूमघूम करके लोगोंको सामायिक क्यों नहीं करवाते?। क्योंकि-स्थानमें बैठकरके तो तुम्हारे उपदेशसे जितने आदमी सामायिक करेंगे। उनसे घरघर घूमकर सामायिक कराते फिरोगे, तो बहुत आदमी करेंगे। तो फिर ऐसा क्यों नहीं करते?। लेकिन, नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। इसी तरहसे हम भी जीवको बचानेके लिये उसी समय प्रयत्न करते हैं, जब कि, हमारे सामने ऐसा

कोई प्रसंग आ गया हो। हां, ऐसे प्रसंगमें, हम तुम्हारे जैसी निर्दयता नहीं रख सकते हैं।

आगे चलकर भीखमजी कहते हैं:-

" अव्रती जीवांरो जीवणो चावे, तिण धरमरो परमारथ नहि पायो।
सरधा अगिनानीरी पगपग अटके, ते न्याय सुणज्यो भवियण चित्तलयायो " ॥ १७॥

भीखमजीके कहनेका सार यह है कि-अव्रतीजिवांका जीना-मरना नहीं चाहना चाहिये। लेकिन यह भीखमजीकी समझकी ही भूल है। यदि अव्रती-असंयती जीवोंका जीना भी नहीं चाहना यह सिद्धान्त सही सही होता, तो आज संसारमें दयाका नाम तक रहने नहीं पाता। पार्श्वनाथ प्रभुने जलते हुए काष्ठमेंसे जिस सांप-को निकलवाया था, वह क्या व्रती था ?। नेमनाथ भगवान्ने जिन पशुओंको बचाए थे, वे क्या व्रती थे ?। मेघरथ राजाने जिस कबूतरको बचाया था, वह क्या संयमी था ?। उतनी दूर क्यों जाना चाहिये ?। आप लोग ही, जिन वाउकायके जीवोंको बचा-नेके लिये मूँहपर पट्टी बांधते हो, वे क्या व्रती है ?। जिस जी-वोंको बचानेके लिये आप लोग लंबासा ओघा (रजोहरण) रखते हैं, वे क्या व्रती हैं ?। तुम्हारे भोजनमें, जो मक्खी वगैरह जीव गिर जाते हैं, और उनको झटसे बाहर निकाल बचाते हो, वे क्या व्रती हैं ?। बल्कि यों ही क्यों न कह दिया जाय कि जिन जीवों-की रक्षा करनेके लिये आप लोगोंने घर छोडा है, वे क्या व्रती हैं?। कभी नहीं ? जब वे व्रती नहीं थे-संयमी नहीं थे, तो फिर, उन पूर्व पुरुषोंने ऐसी प्रवृत्ति क्योंकी ? और आपलोग क्यों करते हो ?। तब कहना पडेगा कि-यह सिद्धान्त बिलकुल मनःकल्पित झूठा ही है।

वास्तवमें, इनसिद्धान्तके माननेमें जो भूलखाई है, उसका स्पष्ट खुलासाकर पाठकोंको सच्चा ज्ञान कराना, हम अपना कर्तव्य समझते हैं।

सूत्रोंमें बहुत जगह ऐसे पाठ आते हैं, कि–जिसका मतलब ऐसा होता है कि–'साधु, असंयतजीवनको न चाहे।' बस, इसी मतलबको ले करके तेरापंथी, अपने साधुओंको छोड करके, संसारमें अन्य किसी जीवोंका जीना नहीं चाहते। परन्तु ऐसा माननेमें, तेरापंथियोंने कैसी भूल की है, इस बातको देखिये।

पहिले सूयगडांगसूत्रको ही देखिये। सूयगडांगसूत्रके, प्रथम श्रुतस्कंधके तेरहवें अध्ययनमें इस प्रकारका पाठ है:—

"आहत्तहीयं समुपेहमाणे सव्वेहिं पाणेहिं णिहाय दंडे।
णो जीवियं णो मरणाहिकंखी परिव्वएज्जा वलयाविप्पमुक्के"।२३।

(पृष्ठ–५०६)

अर्थात्–यथातथ्यमार्गको जानता हुआ, समस्त प्रकारके जीवोंकी हिंसासे रहित, एवं जीवितव्य तथा मरणकी वांछा नहीं करता हुआ (साधु), संयमकी पालना करे, और मिथ्यात्व मोहसे विप्रमुक्त होवे।

अब, इस पाठमें जीना–मरना नहीं चाहना कहा। लेकिन किसका? साधु, अपना जीना-मरना न चाहे। औरोंका नहीं। क्योंकि–'णो जीवियं णो मरणाहिकंखी' यह साधुका ही विशेषण है।

इसी प्रकार सूयगडांगसूत्रके, और पाठोंको भी देखिये।

"निक्खम्म गेहाओ निरावकंखी, कायं विउसेज्ज नियाणछिन्ने।
णो जीवियं णो मरणावकंखी, चरेज्ज भिक्खू वलया विमुक्के॥२४॥

(प्र० श्रु०, अ० १०, पृ० ४१७)

अर्थात्-गृहस्थावासको छोडकरके, साधु, निरपेक्षी हो कर, अपनी कायाको वोसिरावे, अर्थात्-शरीरपर समत्वभाव न रख करके निदान रहित, और जीने-मरने की नहीं आकांक्षा करते हुए एवं संसारसे विप्रमुक्त होते हुए विचरे।

" सुयक्खायधम्मे वितिगिच्छतिण्णे, लाढेचरे आयतुले पयासु।
आयंन कुज्जा इहजीवियट्ठी चयं न कुज्जा सुतवस्सि भिक्खू॥३॥
(प्र० श्रु० अ० १०, पृ० ४०१)

अर्थात्-(परमात्माके कहे हुए) श्रुताख्यात धर्ममें शंका रहित रहे निर्दोष आहारको ले, समस्त जीवोंको आत्मतुल्य माने। अपने जीवनके लिये आश्रवको न सेवे अर्थात्-असंयमाश्रव न करे। एवँ सुतपस्वी साधु, धन-धान्यादिका संग्रह भी न करे।

अच्छा, और आगे चलिये—

" जेहिं काले परिकंतं न पच्छा परितप्पए।
ते धीरा बंधणमुक्का नावकंखंति जीविअं" ॥ १५ ॥
(प्र० श्रु० अ० ३, पृ० २१२)

अर्थात्-जिसने समयपर (धर्ममें) पराक्रम किया है, वह, पीछली अवस्थामें पश्चात्ताप न करे। और वह धीरमनुष्य, बंधनसे मुक्त होते हुए जीवितव्यकी (असंयम जीवितव्य) आकांक्षा न करे।

" जीवितं पिट्ठओ किच्चा अंतं पावंति कम्मुणं।
कम्मुणा संमुहीभूता, जे मग्गमणुसासई" ॥ १० ॥
(प्र० श्रु०, अ० १५, पृ० ५४२)

अर्थात्-वह मनुष्य (असंयम) जीवितव्यका निषेध करके कर्मका नाश करे। और शुभ अनुष्ठानसे मोक्षके सम्मुख होते हुए जिन मार्गका आचरण करे।

कहाँ तक लिखें, सूयगडांगसूत्रमें ऐसे ऐसे अनेकों स्थानमें असंयमजीवितव्यके नहीं चाहनेके लिये पाठ मिलते हैं। परन्तु इससे दयाका निषेध कैसे हो सकता है?। क्योंकि-उपर्युक्त प्रसंगोंमें और अन्य प्रसंगोंमें असंयमजीवितव्यके नहीं चाहनेकी बात आई है, किन्तु यह बात नहीं आई है कि-'असंयती दुःखी जीवोंको न बचाना।'

सूत्रोंका रहस्य तो यह है, और तेरापंथी इसको ले बैठे कि-'असंयतजीवोंका जीना ही नहीं चाहना।' अर्थात् 'कोई असंयत जीव, कष्टोंसे मर रहा तो उसको नहीं बचाना।' कैसा उत्तम (!) तत्त्वनिकाला?। बुद्धिमत्ताका है कुछ ठिकाना?। यह सूत्रोंमें कहा ही कब कि-कोई असंयती जीव मरता हो तो उसको न बचाओ?। परन्तु ठीक है, जिनके हृदय दयासे करुणासे-अनुकंपासे शून्य हो गये हो, वे मजेसे दुःखी जीवोंके दुःख देखते रहें इसमें आश्चर्य ही क्या है।

शायद यहाँपर कोई यह शंका करे कि-जब साधु, अपने ही असंयतजीवनको नहीं चाहता है, तो फिर अन्य जीवोंका असंयतजीवन क्यों चाहे?।'

ठीक है, इस बातको तो हम भी स्वीकार करते हैं। साधु ऐसा चाहे ही क्योंकि दुनियाके प्राणी असंयत रहें? साधुओंकी तो हमेशाके लिये यह भावना रहती है कि-'दुनियाके समस्त प्राणी, संयती-संयमी-व्रती-साधु-मुमुक्षु हो जाँय और उनका मोक्ष हो।' परन्तु ऐसा जानकरके, दुःखी प्राणीको बचानेकी कोशिश क्यों न करे?। क्या नेमनाथप्रभु, पार्श्वनाथ प्रभु तथा श्रीमहावीरस्वामि, कि जिन्होंने जीवोंको बचाए हैं, वे जीवोंका असंयतजीवन चाहते थे?। जब नहीं चाहते थे, तो फिर भी उन्होंने क्यों

बचाये ? । तब कहना होगा कि–' असंयतजीवन नहीं चाहना ' इसका मतलब यह नहीं है कि–असंयती जीवोंको नहीं बचाना। क्योंकि, ' असंयतजीवनका नहीं चाहना ' और ' असंयती जीवोंको बचाना ' ये दोनों भिन्न २ चीजें हैं। अत एव यह सिद्ध नहीं हो सकता है कि–' मरते हुए जीवोंको नहीं बचाना। '

इसी चोथी ढालमें भीखमजीने, अपने आपसे ही ऐसे २ कुविकल्प किये हैं कि—' अमुक प्रसंगमें साधु जीवको क्यों न बचावे ? '। ' अमुक स्थानमें क्यों न बचावे ? ' लेकिन यह सब झूठी ही कल्पनाएं है। जिनका हृदय दयासे परिपूर्ण है, जो लोग जीवोंको बचानेमें धर्म समझते हैं, वे किसी भी प्रसंगमें दुःखी जीवोंको अपनी आंखोंसे नहीं देखसकेंगे। द्रव्य या भाव दोनोंमेंसे एक प्रकारकी तो अनुकंपा अवश्य ही करेंगे।

तेरापंथियोंकी एक और फिलासोफीने तो कमाल कर दिया है। भीखमजी इसी चोथी ढालमें आगे जा करके कहते हैं:—

" साधु तो साधुने जीव बतावे, ते पोतारो पाप टालणरे काजे।
श्रावक श्रावकने जीव नही बतावे, तो किसो पाप लागे किसो व्रत भाजे " ॥ ४२ ॥

बस, हद आ चुकी। भीखमजीने अपने श्रावकोंको खूब ही उपदेश दिया। बस, श्रावक संसारमें कितने ही अनर्थ करें, तेरापंथीयोंके मन्तव्यानुसार, उनको पाप लगेंगे ही नहीं। हम तेरापंथियोंसे पूछते हैं कि—मेघरथ राजाने कबूतरको बचाया था, वह क्या साधु अवस्थामें बचाया था ? । पार्श्वनाथ प्रभुने सांपको निकलवाया था, वह क्या साधु अवस्थामें निकलवाया था ? । नेमनाथ प्रभुने जीवोंको बचाये थे, वे साधु अवस्थामें बचाये थे ? ।

नहीं, गृहस्थावस्थामें ही। तब फिर यह कैसे कहा जाय कि–गृहस्थ, कोई जीव मरता हो तो दिखावे ही नहीं ?। क्या भगवान्ने दया करना साधुओंके लिये ही कहा, गृहस्थोंके लिये नहीं ?। नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता है ?। भगवान्ने, जीवोंको बचाना—बचवाना यह मनुष्य मात्रके लिये कहा। फिर वह साधु होवे चाहे गृहस्थ।

प्यारे पाठक ! तेरापंथियोंका तो यहाँ तक सिद्धान्त है कि–'श्रावक श्रावकको जीमावे, तो भी पाप लगे।' अर्थात् एक दूसरेको खिलाना–पिलाना भी नहीं। खूब कही। क्या तेरापंथी इस बातको नहीं जानते हैं कि–श्रावक यदि शक्ति होनेपर साधर्मिकवात्सल्य न करे अर्थात् स्वधर्मीबन्धुओंको न जिमावे, तो दर्शनाचारका पालन नहीं हो सकता है। (दर्शनातिचार लगता है) देखिये पन्नवणा सूत्रका पाठः—

" निसंकिय निक्कंखिय णिव्वित्तिगिच्छा अमूढदिट्टी य।
उववूहथिरीकहणे वच्छल्लपभावणे अट्ठ " ॥ १४ ॥

(प० ६५)

अर्थात्—१ समस्तप्रकारकी शंकाओंसे रहित पना, २ समस्त प्रकारकी कांक्षासे रहितपना, ३ फलप्राप्तिकी शंकासे राहित्य (साधु विषयक दुगंच्छा करके रहित, ऐसा भी अर्थ होता है) ४ अमूढदृष्टि, अर्थात् अन्यदर्शनीय आडंबरसे चलायमान न होना, ५ उपबृंहण अर्थात् स्वधर्मीबन्धुकी प्रशंसा करनी, ६ स्थिरीकरण, यानि धर्मसे खेदित होते हुए को स्थिर करना, ७ वात्सल्य अर्थात् स्वधर्मियोंकी भक्ति करना, और ८ प्रभावना यानि धर्मोत्सवादि।

बचाये ?। तब कहना होगा कि-'असंयतजीवन नहीं चाहना' इसका मतलब यह नहीं है कि-असंयती जीवोंको नहीं बचाना। क्योंकि, 'असंयतजीवनका नहीं चाहना' और 'असंयती जीवोंको बचाना' ये दोनों भिन्न २ चीजें हैं। अत एव यह सिद्ध नहीं हो सकता है कि-'मरते हुए जीवोंको नहीं बचाना।'

इसी चोथी ढालमें भीखमजीने, अपने आपसे ही ऐसे २ कुविकल्प किये हैं कि—'अमुक प्रसंगमें साधु जीवको क्यों न बचावे ?'। 'अमुक स्थानमें क्यों न बचावे ?' लेकिन यह सब झूठी ही कल्पनाएं है। जिनका हृदय दयासे परिपूर्ण है, जो लोग जीवोंको बचानेमें धर्म समझते हैं, वे किसी भी प्रसंगमें दुःखी जीवोंको अपनी आंखोंसे नहीं देखसकेंगे। द्रव्य या भाव दोनोंमेंसे एक प्रकारकी तो अनुकंपा अवश्य ही करेंगे।

तेरापंथियोंकी एक और फिलासोफीने तो कमाल कर दिया है। भीखमजी इसी चोथी ढालमें आगे जा करके कहते हैं:—

"साधु तो साधुने जीव बतावे, ते पोतारो पाप टालणरे काजे।
श्रावक श्रावकने जीव नही बतावे, तो किसो पाप लागे किसो व्रत भाजे" ॥ ४२ ॥

बस, हद आ चुकी। भीखमजीने अपने श्रावकोंको खूब ही उपदेश दिया। बस, श्रावक संसारमें कितने ही अनर्थ करें, तेरापंथीयोंके मन्तव्यानुसार, उनको पाप लगेंगे ही नहीं। हम तेरापंथियोंसे पूछते हैं कि—मेघरथ राजाने कबूतरको बचाया था, वह क्या साधु अवस्थामें बचाया था ?। पार्श्वनाथ प्रभुने सांपको निकलवाया था, वह क्या साधु अवस्थामें निकलवाया था ?। नेमनाथ प्रभुने जीवोंको बचाये थे, वे साधु अवस्थामें बचाये थे?।

नहीं, गृहस्थावस्थामें ही। तब फिर यह कैसे कहा जाय कि–गृहस्थ, कोई जीव मरता हो तो दिखावे ही नहीं ?। क्या भगवान्‌ने दया करना साधुओंके लिये ही कहा, गृहस्थोंके लिये नहीं ?। नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता है ?। भगवान्‌ने, जीवोंको बचाना—बचवाना यह मनुष्य मात्रके लिये कहा। फिर वह साधु होवे चाहे गृहस्थ।

प्यारे पाठक ! तेरापंथियोंका तो यहाँ तक सिद्धान्त है कि–'श्रावक श्रावकको जीमावे, तो भी पाप लगे।' अर्थात् एक दूसरेको खिलाना–पिलाना भी नहीं। खूब कही। क्या तेरापंथी इस बातको नहीं जानते हैं कि–श्रावक यदि शक्ति होनेपर साधर्मिकवात्सल्य न करे अर्थात् स्वधर्मीबन्धुओंको न जिमावे, तो दर्शनाचारका पालन नहीं हो सकता है। (दर्शनातिचार लगता है) देखिये पन्नवणा सूत्रका पाठः—

" निसंकिय निकंखिय णिव्वित्तिगिच्छा अमूढदिट्ठी य।
उववूहथिरीकहणे वच्छल्लपभावणे अट्ठ " ॥ १४ ॥

(प० ६५)

अर्थात्— १ समस्तप्रकारकी शंकाओंसे रहित पना, २ समस्त प्रकारकी कांक्षासे रहितपना, ३ फलप्राप्तिकी शंकासे राहित्य (साधु विषयक दुगंच्छा करके रहित, ऐसा भी अर्थ होता है) ४ अमूढदृष्टि, अर्थात् अन्यदर्शनीय आडंबरसे चलायमान न होना, ५ उपबृंहण अर्थात् स्वधर्मीबन्धुकी प्रशंसा करनी, ६ स्थिरीकरण, यानि धर्मसे खेदित होते हुए को स्थिर करना, ७ वात्सल्य अर्थात् स्वधर्मियोंकी भक्ति करना, और ८ प्रभावना यानि धर्मोत्सवादि।

उपर्युक्त आठ, दर्शनके आचार दिखलाये हैं। यदि इतनी बातें शक्त्यनुसार न करे, तो दर्शनातिचार लगे। (यही गाथा उत्तराध्ययन सूत्रके ८११ वें पृष्ठमें भी है)

अब सूत्रोंमें तो इस प्रकार, श्रावकोंको आपस २ में भक्ति करनेको दिखलाया है, तो फिर तेरापंथी ऐसे कार्योंमें पाप कैसे दिखलाते हैं ?। क्या श्रावकोंके लिये दया-दानका विधान है ही नहीं ? जरूर है। हम तो यहाँतक कहते हैं कि-वह महाश्रावक ही नहीं कहा जा सकता है कि-जो दुःखी जीवोंको देख करके दया बुद्धिसे, यथाशक्ति धनादिसे उसके दुःखको दूर करनेकी चेष्टा नहीं करता है। देखिये, इस विषयमें, कलिकाल सर्वज्ञ प्रभुश्रीहेमचन्द्राचार्य योगशास्त्रमें क्याही स्पष्ट खुलासा करते हैं:-

"न केवलं सप्तक्षेत्र्यां धनं वपन् महाश्रावक उच्यते, किन्त्वतिदीनेष्वपि निःस्वान्धबधिरपङ्गुरोगार्तप्रभृतिषु कृपया केवलया धनं वपन् , न तु भक्त्या। भक्तिपूर्वकं हि सप्तक्षेत्र्यां यथोचितं दानम्। अतिदीनेषु त्वविचारितपात्रापात्रमविमृष्टकल्पनीयाऽकल्पनीयप्रकारं केवलयैव करुणया स्वधनस्य वपनं न्याय्यम्। भगवन्तोऽपि हि निष्क्रमणकालेऽनपेक्षितपात्रापात्रविभागं करुणया सांवत्सरिकदानं दत्तवन्त इति। तदेवं भक्त्या सप्तक्षेत्र्यां दीनेषु चातिदयया धनं वपन् महाश्रावक उच्यते।"

(पृ० ५९४-५९५)

अर्थात्—केवल सात क्षेत्रोंमें धनका व्यय करे, उसको ही महाश्रावक नहीं कहते हैं, किन्तु अत्यन्त दीन, निर्धन, अन्ध, बधिर, पङ्गु और रोगोंसे दुःखी आदिमें केवल दयाकी बुद्धिसे द्रव्यव्यय भी करे, उसको महाश्रावक कहते हैं। ऐसे दीना-

दिकोंमें द्रव्यव्यय भक्तिसे नहीं किया जाता है। भक्तिपूर्वक तो सातक्षेत्रोंमें ही यथोचित दान कहा है। और अतिदीनादिमें तो पात्र-कुपात्र, कल्पनीय-अकल्पनीय वगैरह विचारोंको छोड केवल दया-करुणा-अनुकंपासे ही स्वधनका व्यय करना योग्य है। और इसी तरह भगवान् भी दीक्षा लेनेके समय पात्रापात्रका विभाग नहीं करके करुणासे सांवत्सरिक दान देते हैं। कहनेका सार यह है कि-भक्तिसे सातक्षेत्रोंमें, दयासे दीनोंमें जो धन-व्यय करे उसीका नाम महाश्रावक है।

अब बतलाईये, तेरापंथियोंका सिद्धान्त कैसे शास्त्रोक्त कहा जा सकता है?। स्वबुद्धिसे भी कोई यह कहनेका साहस नहीं कर सकेगा कि-'श्रावकोंको पाप लगता ही नहीं' और 'किसीको खिलाना-पिलाना चाहिये ही नहीं।' शास्त्रकार तो यह कहते हैं कि-यदि दयासे गरीब मनुष्योंकी रक्षा न करे, तो उसको श्रावक ही नहीं कहना। और तेरापंथीयोंने तो श्रावकोंको यहाँतक छूट दे दी कि-उनको कोई पाप ही न लगे। तब तो तेरापंथी साधुओंसे, तेरापंथी श्रावकोंकी मुक्ति पहिले हो जायगी। जब ऐसा ही है, तो फिर साधु क्यों हो जाते हैं?। अस्तु.

इस चतुर्थ ढालमें भीषमजीने, यह भी बडे महत्त्वकी बात कहि है कि-" किसीके वहाँ लाय लगी हो, तो उसको बुझानेके लिये नहीं जाना चाहिये। अगर लायके बुझानेमें फायदा होता हो, तो कसाईको मारदेनेमें भी फायदा ही होना चाहिये।" जैसे कहा है:—

"जो लाय बुझायां जीव बचे तो, कसाईने मार्यां बचे घणा प्राणो।
लाय बुझायां कसाईनें मार्यां दोयां रो लेखो सरीषो जाणो"॥५१

भीखमजीकी बुद्धिकी हम कहाँ तक तारीफ करें ? । जिनमें इतनी भी समझनेकी शक्ति नहीं है कि—लायको क्यों बुझाई जाती है, और कसाईको क्यों नहीं मारा जाता है ? । लायको बुझानेमें एकेन्द्रियजीवोंकी विराधनाके सिवाय अन्य कौनसा नुकसान है ? । परन्तु कसाईको मारनेमें पंचेन्द्रिय मनुष्यके मारनेका महान् पाप लगता है । हम तेरापंथियोंसे पूछते हैं कि—क्या एकेन्द्रियजीवोंके और पंचेन्द्रियजीवोंके पुण्य एक समान हैं ? । क्या एकेन्द्रियजीवोंकी विराधनामें और पंचेन्द्रियकी विराधनामें समान पाप लगता है? । यदि ऐसा ही सिद्धान्त है तो फिर तुम्हारे श्रावक अन्नको क्यों खाते हैं ? । पंचेन्द्रियजीवोंको ही क्यों पका पका कर नहीं खाते ? । क्योंकि—तुम्हारे हिसाबसे तो एकेन्द्रिय—पंचेन्द्रिय समान ही हैं । और इस हिसाबसे तो हस्तितापसों जैसी प्रवृत्ति करनी पडेगी । खैर, इस निर्दयताके ऊपर हम विशेष लिखना नहीं चाहते, सिर्फ एक दृष्टान्तको ही लिख कर इसका उत्तर मांगना चाहते हैं ।

हम तेरापंथियोंसे पूछते हैं कि—तुम्हारे किसि साधुके पास, एक मनुष्य ऐसा आया कि, जो हमेशा कंदमूलको खाता है, और रोज सौ सौ बकरोंको भी मारता है । वह आ करके कहे कि—' आप मुझे दोनोंमेंसे एक सोगन दीजिये । यातो कंदमूल खानेकी कसम दे दीजिये, अथवा तो सौ बकरों मारनेकी कसम दे दीजिये । अब बतलाईये, तुम्हारे साधुजी किस बातका सोगन देंगे ? । कंदमूल नहीं खानेका, या कि बकरोंके, नहीं मारनेका ? । इसका जवाब दें ।

आगे चल करके पांचवीं ढालमें, एक यह भी विचारणीय बात कही हुई है कि—' द्रव्य देकरके किसीके प्राण न बचाने चाहियें, और जीव मार करके जीव न बचाने चाहियें । ' जैसेः—

"धन देरापे परप्राणने, क्रोधादिक हो अठारेइ सेवाय,
एहीज कामां पोते करी, परजीवांने हो मरतां रापे ताह" ॥२२॥
"जीव मारी जीव राषणा, सूतरमें हो नहीं भगवंत वेण,
ऊंधो पंथ कुगुरां चळाविये, शुद्ध न सूझे हो फूटा अंतर नेण"॥२५॥

ये दोनों बातें मतिभ्रमसे लिखी हुई मालूम होती हैं। द्रव्य दे करके जीवोंको बचानेमें नुकशान कौनसा है? यह पहिले सोचना चाहिये। हमारी दृष्टिसेतो इसमें दो प्रकारके लाभ देखे जाते हैं। एकतो उतने, द्रव्यपरसे मूर्च्छा कम होनेका और जीवके बचानेका। फिर द्रव्य देकरके क्यों न बचाना?। और ऐसे तुच्छ बिचार तो अज्ञानी लोग ही कर सकते हैं कि–'रुपये दे करके जीवोंको छुडाये जायेंगे, तो उन रुपयोंके और जीव ला करके मारेगा।' जिसके हृदयमें दया देवीने निवास किया है, वह मनुष्य, अपने सामने मरते हुए जीवको कभी नहीं देख सकेगा। बचानेवालेका अभिप्राय तो उस मरते हुए जीवको बचानेका ही होता है। नकि रुपये दे करके और जीवोंके मरानेका। यदि द्रव्य व्ययसे जीवोंके बचानेका निषेध ही करते हो तो हम उन तेरापंथियोंसे पूछते हैं कि, आपके साधु-साध्वियाँ, जीवोंको बचानेके लिये जिन उपकरणोंको रखते हैं, वे क्या द्रव्यव्ययके सिवाय आते हैं। तुम्हारे साधु–साध्वी जब बीमार पडते हैं, तब उनकी डॉक्टर-वैद्योंसे दवाई करवानेमें क्या द्रव्यव्यय नहीं होता है?। फिर क्यों कर कह सकते हैं कि–जीवोंके बचानेमें द्रव्यव्यय नहीं करना चाहिये?।

अब रही जीव मारकर जीव बचानेकी बात। सो यह भी ठीक नहीं है। जीवोंके मारनेकी बुद्धिसे जीव बचाये नहीं जाते हैं। किन्तु उस समय जीवोंके बचानेके ही परिणाम होते

और यदि तेरापंथियोंका यही सिद्धान्त सत्य हो कि–' एकेन्द्रिय जीवोंकी विराधनाके भयसे पंचेन्द्रिय जीवोंको नहीं बचाने चाहिये।' तो हम तेरापंथियोंसे पूछते हैं कि–मानलीजिये कि–तुम्हारी कोई साध्वी गोचरी लेनेको जा रही है। उस समय एक सांढ उसके पीछे पडा। और किसी तेरापंथीने अपनी दुकान परसे उसको देखा भी। अब बतलाइये, वह तेरापंथी, अपनी दुकान पर बैठे २ देखता ही रहेगा या कि दौड करके उस साध्वीको बचानेका प्रयत्न करेगा ?। क्या दुकानसे उठ कर उस साध्वीको बचावेगा, तो क्या उसमें एकेन्द्रियजीवोंकी विराधना नहीं होगी ?।

वैसे-ही एक और दृष्टान्तको भी सुन लीजिये। आपके दो साधु, जिनमें एक गुरु है और एक चेला, कहीं पर जा रहे हैं। गुरुजीके सामने एक सांप काटनेके लिये धस आया। अब कहिये, दूर पर रहा हुआ चेला, दौड करके गुरुजीकी जानको बचानेका प्रयत्न करेगा या नहीं ?। यदि दौड करके बचावेगा, तो उसमें जीव विराधना जरूर ही होगी। और यह तो कह ही नहीं सकते हो कि–चेला, गुरुको बचानेका प्रयत्न न करे। क्यों कि–ऐसा करनेसे तो भक्ति भंगका महान् पाप लगेगा।

तब यह कहना ही होगा कि–संसारमें ऐसा कोई मनुष्य ही नहीं है कि–जीव विराधना विना किये ही, जीवको वर्तमान दुःखसे बचाता हो। तो फिर ऐसी झूठी कल्पनाएं करके निर्दयताको क्यों बढाना चाहिये। हां, एक बात जरूर है कि, प्रत्येक कार्यमें मनुष्यको लाभालाभ और अधिकार अवश्य देखना चाहिये। और उसको देख करके ही कार्यमें प्रवृत्ति करनी चाहिये। अस्तु,

अब आगे चलिये। इसी पांचवीं ढालमें, राजाश्रेणिकने जो अमारी पटह बजवाया था, उसका भी उल्लेख किया गया है।

लेकिन इस कार्यको, भीखमजीने राजनीतिमें दिखलाया है, धर्ममें नहीं। इसमें कई एक कुतर्क भी किये हैं कि–' अगर धर्म होता तो अन्य चक्रवर्त्यादि राजाओंने अमारी पटह क्यों नहीं बजवाया ? ' वगैरह ।

भीखमजीकी बुद्धिका परिचय ऐसी बातोंमें खूब ही मिल जाता है। क्योंकि—भीखमजीको अभी तक यह भी मालूम नहीं है कि—अमारी पटह बजवाना, यह राजाओंके लिये राजनीतिका विषय नहीं है, किन्तु धार्मिक बात है। धार्मिक बातोंके लिये यह नहीं कहा जा सकता है कि—"अमुकने यह कार्य किया, तो औरोंने क्यों नहीं किया ? '

अगर ऐसा नहीं है, तो हम पूछते हैं कि—तुम्हारे मजहबमें इतने ही साधु-साध्वी क्यों है ? जितने पुरुष स्त्री हैं, वे सभी साधु--साध्वी क्यों नहीं हो जाते ? ।

अच्छा, अब तेरापंथी इस अमारी पटहके कार्यको राजनीति समझते हैं, यह उनकी बडीभारी भूल है। यदि यह राजनीतिका कार्य होता तो, सभी राजाओंने इस कार्यको करना चाहिये था । और किया तो नहीं है, तो फिर इसको राजनीति कैसे समझी जाय । तेरापंथी क्यों भूलते हैं ? । महाराजा कुमारपालने, क्या कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचंद्राचार्यके उपदेशसे, अपने राज्यमें जीवहिंसा नही बंध करवाई थी ? । मुसलमान पादशाह अकबरने जैनाचार्योंके उपदेशसे क्या एक सालमें छे महिनो तक हिंसा नहीं बन्द की थी ? । क्या इन कार्योंको तेरापंथी, राजनीति समझेंगें ? यह कभी नहीं हो सकता ? । अमारी पटह बजवाकर जीवहिंसा बन्द करवाना यह धर्मकार्य ही है। देखिये प्रश्नव्याकरणसूत्रके पृष्ठ ३३५ से ३३९ में

दया के साठ नाम दिखलाए हैं, उनमें भी ५४ वाँ नाम अमाघाओ है। जिसका अर्थ होता है अनाघात यानि अमारीपटह। अब बतलाइये, इसको अधर्म कैसे कहा जा सकता है ?।

भीखमजीकी बुद्धिका एक और नमूना भी देख लीजिये। भीखमजी कहते हैं कि—" दो स्त्रियाँ कसाईके वहाँ चली गईं। एकने अपने पासके आभूषणोंको दे करके एक हजार जीव छोडाये, और एक स्त्रीने कसाईसे विषय भोग करके हजार जीव छोडाये। अब इन दोनोंमें किसीको धर्म नहीं हुआ। क्योंकि—एकने पाँचवा आश्रव सेवन किया और दूसरीने चौथा। फिर दोनोंमेंसे किसीको भी क्यों धर्म होवे ?।"

इससे तो यही मालूम हुआ कि—आश्रव किसका नाम है, यह भी भीषम नहीं जानता था। अच्छा, इस आश्रवके तत्त्वको हम समझावें, उसके पहिले, भीषमजीके, उपर्युक्त दृष्टान्तके प्रत्युत्तरमें एक और दृष्टान्तको सुनलीजिये।

आपकी दो श्राविकाएं, आपके पूज्यजीको बंदणा करनेके लिये जा रहीं थीं। रस्तेमें चोर मिल गये। एक श्राविकाने अपने पासके आभूषणोंको दे करके अपनी जान बचाई, और एकने विषय सेवन करके अपनी आत्मा बचाई। अब बतलाइये, आपके गुरुजी प्रायश्चित्त किसको देंगे ?। तुम्हारे हिसाबसे तो दोनोंको देना चाहिये, क्योंकि—एकने पांचवाँ आश्रव सेवन किया है, और एकने चोथा। लेकिन नहीं, जिसने अपने आभूषणोंको देदिये हैं, उसने आश्रवको नहीं सेवन किया, वल्कि, उन आभूषणों परसे मूर्च्छाको उतार दिया है। फिर उसको पांचवाँ आश्रव कैसे कहा जाय ?।

हम तेरापंथियोंसे पूछते हैं कि--पांचवा आश्रव कहते किसे हो ? देखो पांचवें आश्रवका नाम है परिग्रह। अब, यह सोचना चाहिये

कि परिग्रह किसको कहते हैं ? । परिग्रह, खान-पान वस्त्र-पात्र इत्यादिको नहीं कहते हैं, किन्तु उनमें की हुई मूर्च्छाको कहते हैं । यदि मूर्च्छाको परिग्रह नहीं मान करके, वस्त्र--पात्र और खाने-पीने वगैरहको ही परिग्रह माना जाय, तो संसारमें किसीको केवलज्ञान होना ही नहीं चाहिये। क्योंकि-सभी मनुष्य, चाहे साधु हों, या गृहस्थ, खाते हैं, पीते हैं और वस्त्र भी रखते हैं। और जिनको केवलज्ञान हो भी गया है, वे भी तो खाते--पीते और वस्त्र रखते थे। फिर उनको केवलज्ञान कैसे हुआ ? । लेकिन नहीं, वस्त्रपात्रको परिग्रह नहीं कहते हैं, किन्तु मूर्च्छाको परिग्रह कहते हैं । और यही बात, भगवान्के वचनानुकूल है । क्योंकि-भगवान्ने अठारह पापस्थानोंको, जिनमें परिग्रह भी है, चारस्पर्शी कहे है । और वस्त्र-पात्र वगैरह तो आठ स्पर्शी हैं, फिर इनको (वस्त्र-पात्रादिको) परिग्रह नहीं कहना चाहिये, किन्तु मूर्च्छाको ही प्ररिग्रह कहना चाहिये ।

अब छठी ढालको देखिये । छठी ढालके प्रारंभमें लिखा है:—

" जे अणकंपा साधु करे, तो नवां न बांधे कर्म ।
तिणमांहिली श्रावक करे, तो तिणने पिण होसी धर्म"॥२॥
" साधश्रावकदोनांतणी, एक अणकंपा जाण ।
अमृत सहुने सारखो, तिणरी मकरो ताण " ॥ ३ ॥

इससे यह दिखलाया कि-जो अनुकंपा साधुको करनेकी है, वह अनुकंपा श्रावकको भी करनी चाहिये । जब ऐसा ही नियम है तो फिर, भीखमजीने, किस भंगके नशेमें, चोथी ढालमें ऐसा लिख मारा कि-" साधुके पाँऊ नीचे जीव आता हो, तो दूसरा साथ चलनेवाला साधु उसको दिखावे । लेकिन, गृहस्थके पैर नीचे जीव आता हो, तो उसको दूसरा श्रावक न दिखावे ।

देखिये, भीषमजीका पूर्वापर विरोध । अब, इसके लिये क्या कहा जाय, जिसके वचनका ही ठिकाना नहीं है ! ।

तेरापंथियोंका एक यह भी कहना होता है, कहना क्या होता है, भीषमजीने लिखा भी है कि–' यदि कोई मनुष्य, किसी जीवको मारता हो, तो उसको द्रव्यादि दे करके छोडाना तो दूर किनार रहा, किन्तु 'मतमार' ऐसा भी नहीं कहना चाहिये' । अब बतलाईये । यहाँतक जिसका उपदेश है, उसको क्या कभी मजहब कह सकते हैं ? ।

अच्छा, और देखिये । आठवी ढालमें कहा है:—

" पहिलीं हिंस्या कीयां पछे धरम बतावै ।
तो कुगुरुवाणी, जेहवी वेहती घाणी " ॥ यां० ॥२०॥

भीखमजीके कहनेका मतलब यह है कि–जिस धर्मके कार्यमें पहिले हिंसा होती हो, तो उस धर्मके कार्यको भी अधर्मका ही समझना चाहिये । हम तेरापंथी साधुओंसे पूछते हैं कि–आप लोग जितनी क्रियाएं करते हैं, उन सबमें जीवविराधना–हिंसा होती है कि नहीं ? । अगर होती है तो फिर उन सब कार्योंको अधर्मके कार्य क्यों नहीं कहते ? । तुम्हारे श्रावक लोग, दूरदूरसे अनेक प्रकारके आरंभ समारंभोंके साथ तुम्हारे पूज्यको वंदणा करनेके लिये जाते हैं, उसको भी अधर्मका कार्य क्यों नहीं समझते ? । अनेक प्रकारकी हिंसा करके पाट महोत्सव करते हो, उसको भी अधर्म क्यों नहीं समझते ? बल्कि हम तो यहाँ तक कहते हैं कि–आपको, व्याख्यान वांचना, प्रतिक्रमण पडिलेहण करना, गुरु वंदन करना, गोचरी जाना, ठंडील (जंगल) जाना, उन सभी कार्योंको छोड करके एक जगह पर चुपचाप बैठ जाना

चाहिये। तब कहना ही होगा कि–प्रत्येक कार्यमें लाभालाभ देखा जाता है। जैसे किसी मनुष्यने एक लाख रुपयोंका व्यापार किया। उसमें उसको पांचसौ रुपये महसूलके भी लग जाते हैं, परन्तु व्यापारी इन पांचसौ रुपयोंके खर्चको नहीं देखता है, किन्तु इस व्यापारमें, इसको जो दश–पांच पचीस हजारका फायदा होनेवाला होता है, उसीको देखता है। बस इसी तरहसे, धर्मके कार्योंमें भी कथंचित् हिंसाका दोष लग भी जाय, तो भी विशेष लाभ की दृष्टिसे इसकी गिनती नहीं की जा सकती है। और वह हिंसा भी, स्वरूप हिंसा है, अनुबंध हिंसा नहीं। और जो स्वरूप हिंसा होती है, उसमें पाप बन्ध नहीं होता है।

जो मनुष्य जिस विषयको अच्छी तरह समझा ही नहीं है, वह यदि उस विषयकी चर्चा करने लग जाय, अथवा यों ही कहिये कि–बिना समझे ही अनधिकार चर्चामें प्रवेश करे, तो उसको बातबातमें ठोकरें खानी पडती हैं। तेरापंथ–मतके उत्पादक भीखमजी, दया–अनुकंपाका स्वरूप नहीं समझ करके ही अनुकंपाकारास लिखने बैठे मालूम होते हैं। अगर ऐसा न होता तो वे नववीं ढालमें दयाका–अनुकंपाका स्वरूप ऐसा दिखलाते ही क्यों कि:—

"जीव जीवे ते दया नही, मरे ते हो हिंसा मति जाण।
मारण वालाने हिंसा कही, नही मारे हो तेतो दयागुणषाण"॥ १-१॥

हमने मान लिया कि–मारनेवालेको हिंसा कही। परन्तु जो ना मारे, उसको दया नहीं कही है। हम तेरापंथियोंसे पूछते हैं कि—

एक मनुष्य जंगलमें शिकार खेलनेको गया है। उसके रोम रोममें किसी पशुके मारनेका परिणाम हो रहा है, लेकिन

पशु, अपने आयुष्यकी प्रबलतासे उस शिकारीके हाथमें नहीं आता है। अब बतलाईये, उस शिकारीको क्या आप लोग उस समय दयालु कहेंगे ?। अगर भीषमजीके वचनको सत्य मानते हो, तो तुम्हें, उसको दयालु ही कहना पडेगा। क्योंकि-उसने पशुको मारा नहीं है। और भीखमजी तो यही कहते हैं कि-'मारे नहीं उसको दया कहो।' लेकिन नहीं, भीखमका कहना नितान्त झूठा है। यदि ऐसा ही सिद्धान्त जिनशासनका होता, तो 'परिणामसे बन्ध' ऐसा कहा ही न जाता। परमात्माके शासनका तो यही सिद्धान्त है कि—चाहे मनुष्य जीवको मारे चाहे न मारे, परन्तु जबसे उसके, हिंसाके परिणाम होते हैं, तबसे उसको पातक लगता ही है।

तेरापंथियोंके सिद्धान्तसे तो एक यह भी बात निकलती है कि—जो लोग, स्वयं जीवको न मारकर, कसाई वगैरहके वहाँसे तय्यार मांसको ला करके पका खाते हैं, उनको पातक न लगने चाहियें। क्योंकि—तेरापंथियोंका तो सिद्धान्त यही कहता है कि—"जीवको मारे उसीको हिंसा लगती है, और तो सब दयालु ही है।" लेकिन, जब हम जैन और जैनतर शास्त्रोंको भी देखते हैं, तब तो यही दृष्टि-गोचर होता है कि—मारनेवाला अकेला पातकी नहीं है, किन्तु उसके पीछे और भी मनुष्य पातकी बनते हैं। जैसे, हिन्दूओंके धर्म ग्रंथोंमें लिखा है:—

"अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी।
संस्कर्ता चोपहर्ता च खादकश्चेति घातकाः" ॥१॥

अर्थात्—मारनेमें सलाह देनेवाला, मरे हुए जीवोंको शस्त्रसे पृथक् २ करनेवाला, मारनेवाला मोललेनेवाला, बेचनेवाला, सँवारने-वाला, पकानेवाला और खानेवाला ये सब घातक ही कहलाते हैं।

अब बतलाईयें, 'मारे नहीं उसको दया कहो,' यह सिद्धान्त कैसे सिद्ध हो सकता है? तब कहना ही होगा कि–'दया' इसीका नाम है कि–"दुःखितेषु दुःखप्रहाणेच्छा," अर्थात् दुःखी जीवोंको दुःखसे मुक्त करनेकी इच्छाको 'दया' कहते हैं। दया उसको नहीं कहते हैं कि–मूँहपर मुहपत्ती बांध करके किसी स्थानमें बैठ जाना। पहिले दयाके रहस्यको समझना चाहिये। 'दया दया' करनेसे दयाका गुण नहीं प्राप्त हो सकता, दया अन्तःकरणके आर्द्र परिणामको कहते हैं। और मनुष्यमें मनुष्यत्व भी यही है कि–'किसी दुःखी जीवको देख करके अपने अन्तःकरणमें दुःखी होना। और इस प्रकार हो करके, उसको दुःखसे मुक्त करनेके लिये प्रयत्न भी करना।'

अब इस विषयमें भीखमजीके अनुकंपा रासकी विशेष आलोचना करके पाठकोंका अधिक समय लेना, व्यर्थ है। क्योंकि–जो मनुष्य, दयाके स्वरूपको समझ ही नहीं सका है, अथवा यों ही कहिये कि–दया किसका नाम है, यह भी नहीं जानने पाया है, वह मनुष्य अपने मनःकल्पित दृष्टान्तोंको देदे कर भद्रिकजीवोंके भावप्राणोंके लेनेका प्रयत्न करे तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। लेकिन बुद्धिमान् लोगोंको तो, एकाध बातसे ही, लिखनेवालेके ज्ञानसागरकी थाह अच्छी तरह मिल जाती है। बस, इसी नियमानुसार, भीखमके उपर्युत वचनसे ही विज्ञ पाठकोंने, उसके झूठे दृष्टान्त–दलीलोंकी कल्पना कर ली होगी, तिसपर भी सन्तोषके लिये, उसके दिये हुए सात दृष्टान्तों पर कुछ विचार कर, अनुकंपा रासकी आलोचनाको खतम करेंगे। और पश्चात् अनुकंपा विषयक और भी दो एक पाठोंको देकर, इस पुस्तककी परिसमाप्ति की जायगी।

अनुकंपारासकी सातवीं ढालमें इस प्रकारके सात दृष्टान्त दिये हैं:—

१ मेंढक–मच्छ वगैरह जीवोंसे भरे हुए पानीके कुंडमें भैंस पानी पीनेको आई।

२ खडे हुए अनाजके ढेरको, जिसमें बहुत जीव हैं, खानेके लिये एक बकरा आया।

३ जमीनकंदसे भरे हुए गाडेको देखकर एक बैल खानेके लिये आया।

४ अनछने कच्चे पानिके घडे भरे हुए पडे हैं, उनको देख एक गाय पानी पीने आई।

५ किसी सडे हुए खातमें बहुत जीव पडे हैं, उनको खानेके लिये कुर्कुट (कूकडे) वगैरह जिव आए।

६ एक स्थानमें बहुत चूहे फिर रहे हैं, उनको पकडनेके लिये बिल्ली आई।

७ खांड–गुडके ऊपर बहुत मक्खियें बैठी हैं, उनको पकडनेके लिये मकोडे आये।

अब तेरापंथी, कहते हैं कि–" साधु, इन सातों प्रसंगोंमें मौन रहे। क्योंकि–उसका तो समस्त जीवोंपर समभाव है, फिर चाहे एकेन्द्रिय हों, चाहे पंचेन्द्रिय।"

लेकिन तेरापंथियोंने ऐसा समभाव दिखलाकर बडा भारी अनर्थ किया है। साधु, कहाँपर मौन रहे? और कहाँपर जीवोंके बचानेका प्रयत्न करे, यह खास समझनेका विषय है। और यह बात तब ही समझी जा सकती है, जब कि–जीवोंके एकेन्द्रियादि भेद समझे जाँय। तेरापंथियोंमें इस प्रकारका ज्ञान नहीं होनेसे ही वे ऐसे

२ अनर्थ कर बैठे हैं । जीव एकेन्द्रियसे ले करके पंचेन्द्रिय पर्यन्त होते हैं। और एक एक इन्द्रियके बढते जानेसे उनका पुण्य भी बढता जाता है । अर्थात् एकेन्द्रियसे बेइन्द्रियका, बेइन्द्रियसे तेइन्द्रियका, तेइन्द्रियसे चउरिन्द्रियका, और चउरिन्द्रियसे पंचेन्द्रियका पुण्य कई गुना अधिक है । पंचेन्द्रियमें भी सबका समान नहीं । ज्यों २ अधिकार बढता जाता है, त्यों २ पुण्यमें भी आधिक्य माना जाता है । जैसे आचारांगनिर्युक्तिमे कहा है: —

" सत्तविराहणपावं असंखगुणीयस्स एगभूयस्स ।
भूयस्साणंतगुणं पावं इकस्स पाणस्स ॥ १ ॥
बेइंदिय तेइंदिय चउरिंदिय तहेय चेव पंचिंदी ।
लक्खसहस्सा तह सय गुणंतपावं मुणेयव्वं " ॥ २ ॥

अर्थात्—असंख्यातगुणे पृथ्वी-अप्-तेज-वाऊ कायके सत्त्वोंके हननेसे एक वनस्पति कायके भूतको हननेका पाप लगता है । और अनन्तगुणे भूत वनस्पतिकायके हननेसे एक बेइंद्रिय प्राणके हननेका पाप लगता है । लक्ष बेइंद्रियके विनाशसे एक तेइन्द्रियके हननेका पाप लगता है । हजार तेइन्द्रियके विनाशसे एक चउरिंद्रियका पाप लगता है । सौ चउरिंद्रियके नाशसे एक पंचेंद्रियका पाप लगे ।

कहनेका मतलब यह है कि—इस प्रकार जीवाके भेदोंको समझ करके ही साधुको ऐसे कार्योंमें प्रवृति करनेकी है । साथ ही साथ दूसरी बात यह भी है कि—साधुको लाभालाभ भी देखना चाहिये असुक कार्यके करनेसे कितना लाभ है ? और कितना नुकशान ? इसको भी अवश्य सोचना चाहिये । यदि इन बातोंको विना सोचे, विना समझे, सभी विषयोंमें समभावकी ही माला जपने लग जाँय,

तो संसारमें साधुके हृदयमें दयाका नाम तक रहने न पावे। इस लिये विचार करनेसे मालूम होगा कि–तेरापंथियोंके दिये हुए उपर्युक्त सातों प्रसंगोंमें समानता हर्गिज नहीं हैं। उनमें कई प्रसंग, साधुको मौन रहने लायक हैं, और कई बचाने लायक। क्योंकि जहाँ जैसा अधिकार–जैसा लाभ है, वहाँ वैसी ही प्रवृत्ति करनी चाहिये।

संक्षेपसे कहनेका तात्पर्य इतना ही है कि–भिखमजीने, उपर्युक्त सात प्रसंग विना समझे ही दिये हैं। इसी प्रकार पांचवीं ढालमें सौ सौ मनुष्योंको, अन्न खिला कर, पानी पिला कर, हुक्का पिला कर, वगैरह एकेन्द्रिय जीवोंकी हिंसा पूर्वक बचानेके सात दृष्टान्त दिये हैं। लेकिन, वे भी, भीखमकी अज्ञानताको ही जाहिर करते है कि उसमें यह ज्ञान था ही नहीं कि– एकेन्द्रिय जीवोंकी हिंसा होते हुए भी पंचेन्द्रियके बचानेमें कितना लाभ होता है ?।

इन सात दृष्टान्तोंमें तो भीखमजीने एक और भी रीतिसे, अपने पांडित्य (!) का परिचय कराया है। वह यह है कि– बहुतसे दृष्टान्त तो असंभवित ही दिये हैं। देखिये, क्या यह कभी हो सकता है कि–सौ मनुष्य मुले–गाजर खाकरके ही बचें, और किसी उपायसे न बचे ?। क्या यह कभी माना जा सकता है कि– सौ बीमार मनुष्य हुक्केके पीनेसे ही बचे, और किसी उपायसे न बचें ?। और, क्या कभी किसीने सुना भी है कि–मरते हुए सौ मनुष्योंको बचानेके लिये किसी एक मनुष्यके मस्तकमेंसे ममाई निकाली जाय ?। लेकिन बहादुरी हैं भीखमजीकी, कि जिन्होंने भोले जीवोंको फँसानेके लिये ऐसे असंभवित भी दृष्टान्त दे दिये हैं। (ममाई मनुष्यके मस्तकमेंसे बनाई जाती है, यह भी बात झूठी है। ममाई, किसी अन्य पदार्थसें बनाइ जाती है, ऐसा वैद्योंका अभिप्राय है।)

अच्छा, अभी एकाध बात और भी सुन लीजिये। तेरापंथियोंका एक यह भी सिद्धान्त है कि-" कोई मनुष्य आकरके साधुके गलेमें फांसी दे गया हो, और साधुजी बडे कष्ट पाते हों, तो भी साधुजीके गलेमेंसे फांसी नहीं खोलनी चाहिये।" खूब कहा। साधुजीकी फांसी खोलनेमें कौनसा पाप लग जाता है ?। यदि यह कहा जाय कि-' साधुजी महाराज अपने कर्मोंको भोग रहे हैं, उसमें अन्तराय नहीं करनी चाहिये।' लेकिन, यह कहना बिलकुल असत्य है। क्योंकि-यदि ऐसा ही है तो फिर हम तेरापंथियोंसे पूछते हैं कि-तुम अपने साधु साध्वियोंको आहारपानी क्यों देते हो ? उनको, अपने कर्मोंको भोगने दीजिये। मालमसाले और पानी देकरके, कर्मोंको भोगनेमें अन्तराय क्यों करते हो ?। जब तुम्हारे साधु-साध्वी बीमार पडते हैं, तब डॉक्टर या वैद्यके लिये दौड-धूप क्यों करते हो ?। उनको अपने कर्मोंको अच्छी तरह भोगने दीजिये। तब कहना ही होगा कि-साधु मुनिराज इस बातको न चाहें कि-' मेरी फांसी कोई खोले '। परन्तु गृहस्थोंका यह धर्म है कि-फांसीको खोल करके साधुको शाता पहुँचावे। जैसे, उत्तराध्ययनसूत्रके, ३५ अध्ययन, पृ० १०१२ में कहा है कि --

"अच्चणं सेवणं चेव वंदणं पूयणं तहा।
इड्ढीसक्कारसम्माणं मणसावि न पत्थए" ॥ १८ ॥

अर्थात्—साधु, अपना, अर्चन, सेवन, वंदन, पूजन तथा ऋद्धि, सत्कार-सन्मान, इनकी मनसे भी अभिलाषा न करे। फिर वचन-कायकी तो बातही क्या ?)

अब बतलाइये, साधु, वंदन-पूजनको न चाहे, तिसपर भी उसको गृहस्थ लोग वंदन-पूजन करते हैं, उस समय निषेध नहीं

किया जाता है, बस, इसी प्रकार साधु, यद्यपि फांसी खुलवानेकी भावना न करे, तो भी गृहस्थोंका धर्म है कि–साधुकी फांसी खोलें।

संसारमें देखनेसे मालुम होता है कि–मनुष्य ही नहीं, बल्कि प्राणि मात्र अपने २ प्राकृतिक–स्वाभाविक धर्मोको पालन करते ही हैं। इसकी दृढताके लिये, पाठक, एक छोटेसे दृष्टान्तको यहाँ सुन ले।

" एक समयकी बात है। एक बिछू, अत्यन्त उष्ण रेतीमें पडा हुआ बहुत कष्ट पा रहा था। एक छोटे लडकेने उसको देखा। और लडकेका बचपनसे यह शिक्षा मिली हुई थी कि–कोई भी जीव यदि कष्ट पा रहा हो, तो उसको कष्टसे मुक्त करनेका प्रयत्न करना चाहिये। लडकेने झटसे बिछूको पकडा, और छायामें रख दिया। कहनेकी आवश्यक्ता नहीं है कि–बिछूका क्या स्वभाव होता है ?। लडकेने ज्योंही बिछूको पकडा, त्योंही उसके हाथमें डंक मारा। थोडी देरके बाद वही बिछू फिर उष्ण रेतीमें आ गया और दुःखी होने लगा। दूसही दफे भी लडकेने उठा कर छायामें रख दिया, और बिछूने काटा भी। ऐसे तीन बार लडकेने बिछूको उठाया, और तीनों बार बिछूने काटा। उस समय वहाँ एक मनुष्य खडा था, उसने उस लडकेसे कहा—अरे ! यह क्या तेरेको सूझा है ?। तीनों-दफे तुझको बिछूने काट खाया, लेकिन फिर भी तू उसको उठा उठा कर अलग रखता है ?। तब उस लडकेने यही जवाब दिया, कि– ' देखिये बिछू जैसा प्राणी भी अपने स्वाभाविक धर्मको नहीं छोडता है,' तो भला, मैं मनुष्य हो करके, अपने स्वाभाविक धर्मको कैसे छोड सकता हूँ। अर्थात् बिछू, अपने काटनेके धर्मको पालन कर

रहा है, तो फिर मैं मेरे दया धर्मको (जो कि–मनुष्योंके अन्तःक-रणमें स्वाभाविक ही रहा हुआ है) कैसे छोड्डूं ।

कहनेका मतलब यह है कि–चाहे साधु हो, चाहे गृहस्थ, अगर वह किसी आफतमें आ फँसा हो, तो उसको अवश्य छोडने-छोडा-नेका प्रयत्न करना ही चाहिये फिर चाहें वह (फँसा हुआ मनुष्य), अपने अन्तःकरणमें कैसी ही भावना रखता हो ।

बहुतसे तेरापंथी, वंदितासूत्रकी

" सुहिसु अ दुहिएसु अ जा मे असंएसु अणुकंपा
रागेण व दोषेण व निंदे तं च गरिहामि " ॥३१॥

इस गाथाको आगे करके कहते हैं कि–" देखो, इस गाथामें असंयतीमें अनुकंपा की हो, उसकी निंदा–गर्हा की है।" लेकिन यह समझना भूल है । इस गाथामें बडा भारी रहस्य रहा हुआ है । पहिले इसका अर्थ समझ लेना चाहिये । इसका अर्थ यह है:—

" सुखी अथवा दुःखी, ऐसे असंयतीमें, राग या द्वेषसे जो अनुकंपाकी हो, उसकी मैं निंदा–गर्हा करता हूँ । "

इस गाथामें, असंयतीकी अनुकंपा करनेमें दो कारण दिखला कर उन दो कारणोंकी निंदा की है । वे दो कारण हैं राग और द्वेष । जैसे, कोई अपना स्वजनादिक असंयती हो, और उसपर प्रेम–रागसे जो अनुकंपा की हो, उसकी निंदा है, और 'द्वेष' से यह है कि–जैसे किसी असंयतीको, ' देखो तुम तो हमारे शासनके द्रोही हो–प्रत्य-नीक हो, तिसपर भी हम तुमको देते हैं ' ऐसे द्वेषपूर्वक अनु-कंपा की जाय, उसकी निंदा है ।

अब, विशेष स्पष्ट करनेकी आवश्यकता ही नहीं है कि–यह निंदा अनुकंपा की नहीं, किन्तु राग–द्वेष की है । लेकिन, इस गा-

द्वेषकी निंदासे, यह कभी नहीं निकल सकता है कि—करुणा बुद्धिसे असंयती जीवोंपर अनुकंपा नहीं करनी चाहिये।

उपर्युक्त गाथाके, 'वंदारुवृत्ति' 'श्राद्धप्रतिक्रमणवृत्ति,' 'धर्मसंग्रहवृत्ति' वगैरह ग्रंथोंमें तीन प्रकारके अर्थ किये हैं, परन्तु उन तीनों प्रकारके अर्थोंमें 'राग—द्वेषकी ही निंदा—गर्हा' होनेसे तीनोंमेंसे एक ही अर्थ यहाँ पर दिया गया है। विशेष जाननेकी इच्छा होवे, वे उन ग्रन्थोंको देख सकते हैं।

जब मनुष्यका, येन केन प्रकारेण अपनी बातके रखनेका ही इरादा होता है, तब यह शब्दार्थ वा प्रकरणके ऊपर खयाल नहीं रखता है। यही हाल तेरापंथियोंका भी है। तेरापंथी कहते हैं कि—

"भगवतीसूत्रके आठवें शतकके पांचवें उद्देशेमें असंयतिके पोषणका निषेध किया है।" लेकिन यह बिलकुल असत्य बात है। तेरापंथी उस प्रसंगको समझे ही नहीं है। बात यह है:—

भगवतीसूत्रके आठवें शतकके पांचवें उद्देशेमें, पनरह कर्मादानोंका प्रसंग चला है। उन पनरहकर्मादानोंमें 'असईपोसणया' ऐसा भी नाम है। देखिये वह पाठः—

"ईंगालकम्मे वणकम्मे साडीकम्मे भाडीकम्मे फोडीकम्मे दंतवाणिज्जे लक्खवाणिज्जे केसवाणिज्जे रसवाणिज्जे विसवाणिज्जे जंतपीलकम्मे निलंछणकम्मे दवग्गिदावणिया सरदहतलावपरिसोसणया असईपोसणया" (पत्र ६०९)

इन पनरह कर्मादानोंमें, पनरहवाँ 'असईपोसणया' दिखलाया है। इसका अर्थ 'असंयतीका पोषण' नहीं होता है, किन्तु 'असतीका पोषण' होता है। और इस असतीके पोषण करनेके लिये भगवान्ने निषेध फरमाया है। अर्थात् जैसे चौदह प्रकारोंके व्या-

पारोंका भगवान्ने निषेध फरमाया, वैसे 'असती' के व्यापारका भी निषेध दिखलाया। जैसे कोई मनुष्य, अनेक दासियोंको रक्खे, और उनको किराये पर दूसरोंको दे कर पैसा पैदा करे, इस व्यापारका निषेध किया है। और टीकाकार भगवान्ने भी 'असयपोसणया' का यही अर्थ किया है कि:—

"दास्यास्तद्भाटीग्रहणाय, अनेन च कुक्कुटमार्जारादिक्षुद्रजीवपोषणमप्याक्षिप्तं दृश्यमिति"

टीकाकार भगवान्ने दासीके उपरान्त कुक्कुटमार्जारादि क्षुद्रजीवोंके पोषणका भी ग्रहण कर लिया है। ठीक है, यह व्यापार भी निंदनीय ही है। अब यहाँपर असंयतीके पोषणका प्रसंग ही क्या है?

विचारनेकी बात है कि—उपर्युक्त पनरहकर्मादान, श्रावकके सातवें व्रत भोगोपभोग के अतिचारमें गिनाए हैं। और 'असई-**पोसणया**' का अर्थ कदाचित् 'असंयतीका पोषण' किया जाय, तो आनन्दादि जिन २ श्रावकोंने बारहव्रत अंगीकार किये थे, उनकी करणीमें असंयतीका पोषण होना ही नहीं चाहिये। लेकिन हम जब उनकी करणीको देखते हैं, तब तो हमें मालूम होता है कि—उन व्रतधारी श्रावकोंने भी गाय—भेंस—बैल वगैरह पशुओंका रक्षण किया है और दास—दासियोंका भी पोषण किया है अब बतलाईये कि, बारह व्रतधारी होनेपर उन्होंने, उन असंयतीयोंका पोषण क्यों किया? । लेकिन, नहीं, कहना होगा कि, यहाँपर 'असईपोसणया' का अर्थ, 'असंयतीका पोषण' नहीं हैं, किन्तु 'असतीका पोषण' है। और 'असतीपोषण' व्यापार निमित्त किया जाय, तब ही वह पनरह कर्मादानोंके अन्दर

गिना जा सकता है। अतएव तेरापंथी जो अर्थ करते हैं, वह बिलकुल असंगत ही है।

अब एक और बात देख लीजिये। निशीथसूत्रके बारहवें उद्देशेमें इस प्रकारका पाठ है:—

"जे भिक्खू कोलुणपडियाए अणयरं तसपाणजायं तण-पासएण वा मुंजपासएण वा कट्ठपासएण वा चम्मपासएण वा वेत्तपासएण वा रज्जुपासएण वा सुतपासएग वा बंधइ बंधंतं वा साइज्झइ, जे भिक्खू बंधेलयं वा मुयइ मुयंतं वा साइज्झइ—

इस पाठको लेकरके तेरापंथी कहते हैं कि—"करुणा (अनुकंपा) करके किसी त्रस जीवको बांधे—बंधावे और बांधतेको अच्छा जाने, उसको चौमासी प्रायश्चित्त आवे, और अनुकंपासे छोडे—छोडावे और छोडतेको अच्छा जाने, उसको भी चौमासी प्रायश्चित्त आवे, ऐसा सूत्रमें कहा है।"

प्रथम तो तेरापंथी '**कोलुणपडियाए**' का अर्थ ही नहीं समझे हैं। और दूसरे साधुके लिये यह प्रसंग कब संभवित हो सकता है, इसको भी नहीं विचारा है। अस्तु, पहिले उपर्युक्त पाठके अर्थको देख लीजिये। उपर्युक्त पाठका अर्थ यह है:—

"जो कोई साधु, कोलुणपडियाए अर्थात् कारुण्यप्रतिज्ञासे अन्य त्रस प्राणीकी जातिको, तृणके बंधसे, मुंजके बंधसे, काष्टके बंधसे, चमडेके बंधसे, वेत्रके बंधसे, रज्जुके बंधसे, अथवा सूत्रके बंधसे बांधे, अथवा बांधनेवालेको सहायता करे तो, एवं बांधे हुए को छोडे अथवा छोडनेवालेको सहायता करे तो चौमासी प्रायश्चित्त आवे।"

अव्वल तो तेरापंथी उपर्युक्त पाठका अर्थ ही झूठा करते हैं। **क्योंकि—उपर्युक्त पाठमेंसे यह नहीं निकलता है कि—"बांधे-**

बंधावे और बांधने वालेको अच्छा जाने, तथा छोडे छोडावे और छोडने वालेको अच्छा जाने उसको चौमासी प्रायश्चित्त आवे।" उपर्युक्त पाठमेंसे तो "बांधे और बांधनेवालेको सहायता करे, छोडे और छोडनेवालेको सहायता करे उसको चौमासी प्रायश्चित्त आवे" यही अर्थ निकलता है। यदि इस अर्थपर तेरापंथियोंने खयाल रक्खा होता, तो उन्हें मालुम हो जाता कि—साधुके लिये ऐसा प्रसंग कब उपस्थित हो सकता है?। क्योंकि—साधु गृहस्थसंबंधि समस्त कार्योंसे पृथक् हो गये हैं। अतएव उन्हें न किसी त्रस जाति (गाय–भेंस वगैरह) के बांधने छोडनेका काम पडता है, और न उनके पासमें तृण, मुञ्ज, काष्ठ, चाम, वेत्र, वगैरह के बंधन (रस्सीएं) ही रहते हैं। फिर भी ऐसे प्रसंगमें प्रायश्चित्त क्यों कहा?। इसके लिये ऐसा प्रसंग खोजना पडेगा और वह यही प्रसंग मालूम होता है कि—जैसे,

कोई साधु गृहस्थके घरपर भिक्षाके लिये चला गया हो। उस समय साधु भिक्षाकी लालचसे, यह विचार करे कि–'इसके गाय–भैंसको बाँधूं तो यह मुझको अच्छी तरह भोजन देगा।' ऐसा विचार करके उसके गाय भैंसको बांधे, अथवा गृहस्थ बांधता हो तो सहायता करे, एवं छोडे अथवा छोडता हो तो सहायता करे। बस ऐसे प्रसंगोंके लिये चौमासी प्रायश्चित्त कहा है। और इसी लिये, '**कोलुणपडियाए**' पाठ दिया है, जिसका अर्थ होता है 'कारुण्यप्रतिज्ञासे।' अर्थात् यहाँपर साधुके मनका यह अभिप्राय है कि—यदि मैं इसका काम करुंगा, तो मेरे पर अनुकंपा लाकर अच्छी तरह आहार देगा। लेकिन इससे अनुकंपाका निषेध नहीं होता है। यदि यह प्रसंग अनुकंपाके लिये होता, अर्थात् साधुके पशुओंको बांधने–छोडनेमें अनुकंपा

दिखलाई होती, तो 'कोलुणपडियाए' पाठ न होता, किन्तु 'अणुकंपयणट्ठाए' ऐसा पाठ होता, और ऐसा है तो नहीं। तब कहना होगा कि—यह प्रायश्चित्त इसी लिये दिखलाया है कि—साधुको भिक्षाके लिये किसी प्रकारकी मूर्च्छा रखनेका निषेध होनेपर मूर्च्छा की और दूसरे अपने भिक्षाके स्वार्थके लिये गृहस्थका काम किया।

इस लिये निशीथके उपर्युक्त पाठको ले करके तेरापंथी अनुकंपाका निषेध करते हैं, यह भी उनका भ्रमप्रदर्शक ही है।

अच्छा एक और पाठको भी देख लीजिये। भगवतीसूत्रके श० ८, उ० ६, पत्र ६१० से ६१२ में इस प्रकारके तीन पाठ हैं:—

"समणोवासगस्स णं भंते! तहारूवं समणं वा माहणं वा फासुएसणिज्जेणं असणपाणखाइमसाइमेणं पडिलाभेमाणस्स किं कज्जइ? गोयमा! एगंतसो से निज्जरा कज्जइ, नत्थि य से पावे कम्मे कज्जइ।"

"समणोवासगस्स णं भंते! तहारूवं समणं वा माहणं वा अफासुएणं अणेसणिज्जेणं असणपाणखाइमसाइमेणं पडिलाभेमाणस्स किं कज्जइ? गोयमा! बहुतरिया से निज्जरा कज्जइ, अप्पतराए से पावे कम्मे कज्जइ।"

"समणोवासगस्स णं भंते! तहारूवं असंजयअविरयअपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे फासुएण वा अफासुएण वा एसणिज्जेण वा अणेसणिज्जेण वा असणपाणजाव किं कज्जइ? गोयमा! एगंतसो से पावे कम्मे कज्जइ, नत्थि से काइ निज्जरा कज्जइ।"

उपर्युक्त पाठोंके अर्थ ये हैं:—

"हे भगवन् ! तथारूप श्रमण माहणको फासुएषणीय, अशन-पानखादिम-स्वादिम देनेसे श्रमणोपासकको क्या होता है ?, हे गौतम ! एकान्त निर्जरा होती है, पाप कर्म नहीं होता है।"

"हे भगवन् तथारूप श्रमण--माहणको अफासु, अनेषणीय अशन-पान--खादिम--स्वादिम देनेसे श्रमणोपासकको क्या होता है ?, हे गौतम ! बहुत निर्जरा होती है और अल्पतर पापकर्म होता है।"

"हे भगवन् ! तथारूप असंयती-अविरती तथा जिसने प्रत्याख्यान करके पापकर्मको दूर नहीं किया है, ऐसेको, अर्थात् अप्रत्याख्यानीको, फासु या अफासु, एषणिय या अनेषणिय, अशन-पान-खादिम-स्वादिम देनेसे, श्रमणोपासकको क्या होता है ? हे गौतम ! एकान्त पाप कर्म होता है, निर्जरा बिलकुल नहीं होती है।"

अब तेरापंथीलोग, इन तीनों पाठोंमेंसे प्रथमके दो पाठोंको छिपा करके तीसरे पाठको आगे करते हैं। और कहते हैं कि-'देखो भगवतीसूत्रमें भी असंयती-अविरतीको दान देनेसे एकान्त पाप दिखलाया है।' परन्तु इन तीनों पाठोंमें, जोकि एक साथ दिये हुए हैं, वडा भारी रहस्य रहा हुआ है। वह यह है उपर्युक्त तीनों पाठ मोक्षफलकी विवक्षासे दिये हुए हैं। क्योंकि-यहाँ सुपात्रदानकी वात चली है। और जो सुपात्र दान होता है, उसका फल मोक्ष दिखलाया है। और यही वात भगवान् टीकाकारने भी यों लिखी है:—

"सूत्रत्रयेणापि चानेन मोक्षार्थमेव यद्दानं तच्चिन्तितं, यत्पुनरनुकम्पादानमौचित्यदानं वा तन्नचिन्तितम्" (प० ६१२)

अर्थात्-उपर्युक्त तीनों सूत्रोंसे मोक्षार्थ दानका ही विचार किया गया है। और अनुकम्पा और उचितदान की यहांपर

की गई है। और विचार करनेसे भी मालूम हो सकता है कि-यदि यहाँपर मोक्षार्थ दानकी बात न चली होती तो प्रथमके दो पाठोंमें श्रमण-माहणको देनेकी बात न कहते-किन्तु सामान्य ही कहते। जब यह बात स्पष्ट हुई कि-ये तीनों पाठ मोक्षार्थ दानके लिये ही दिये हुए हैं, तब इस तृतीयपाठमें भी मोक्षार्थ दानकी ही अपेक्षा की गई है। और यह तो हम भी स्वीकार करते हैं कि-यदि असंयमी-अविरति-अप्रत्याख्यानी को, सुपात्र समझ करके-गुरु समझ करके-गुणवान् समझ करके दान दिया जाय, तो इससे एकान्त पाप अवश्य ही होता है। लेकिन इससे अनुकंपाका निषेध हर्गिज नहीं हो सकता। हां, यहाँ अनुकंपाका प्रकरण चला होता-अनुकंपाकी विवक्षा की गई होती, तो जरूर हम अनुकंपासे एकान्त पाप मान लेते। परन्तु यह तो है ही नहीं। और होवे भी कैसे? क्योंकि-अनुकंपाका तो निषेध, कहीं पर भी भगवान्ने नहीं किया है। देखिये, उपर्युक्त तीसरे पाठकी टीकामें भी कहा है:-

" मोक्खत्थं जं दाणं तं पइ एसो विही समक्खाओ।
अणुकंपादाणं पुण जिणेहिं न कयावि पडिसिद्धं" ॥१॥

अर्थात्-यह विधि (उपर्युक्त तीनपाठोंकी), मोक्षार्थ दानके प्रति कही हुई है। और अनुकंपा दानका प्रतिषेध तो कहीं पर तीर्थंकरोंने नहीं किया है।

जब ऐसा ही है तो फिर अनुकंपासे एकान्त पाप कैसे माना जा सकता है?।

उपर्युक्त तीनों पाठोंमें, (तीसरे पाठमें भी) अनुकंपा दानका वर्णन नहीं है, किन्तु, गुरु-साधु-पात्र मान करके दे, इसका वर्णन है, ऐसा माननेमें एक और भी कारण है। वह यह है:-

पहिलेके दो पाठोंमें, दान देनेवालेका नाम श्रमणोपासक रक्खा है, वैसे ही तीसरे पाठमें भी श्रमणोपासक ही दिखलाया है। इसी प्रकार, जैसे प्रथमके दो पाठोंमें 'पडिलाभेमाणे किं कज्जई ?' यह प्रश्न किया गया है, वैसे ही तीसरे पाठमें भी 'पडिलाभेमाणे किं कज्जई ?' यही प्रश्न किया गया है।

अब विचारनेकी बात है कि—'पडिलाभे माणे' यह शब्दप्रयोग वहाँ ही होता है, जहाँ पूज्यबुद्धिसे—गुरुबुद्धिसे दान दिया जाता है। और जहाँ अनुकंपाकी बुद्धि होती है, वहाँ 'पडिलाभेमाणे' यह शब्द कहा ही नहीं जाता है। सूत्रोंमें जहाँ २ दानशालाओं वगैरहके कार्य दिखलाए हुए हैं, जोकि खास अनुकंपाकी बुद्धिसे किये जाते हैं, वहाँ 'पडिलाभेमाणे' यह शब्द मिलता ही नहीं है।

प्रचलित व्यवहारपर ख्याल करनेसे भी मालूम हो सकता है कि जैसे साधु—मुनिराजको यह कहा जाता है कि—महाराज 'लाभ दीजिये' वैसे किसी रंक—दुर्बल—दुःखी मनुष्यको कुछ देनेकी इच्छा होती है, तब यह कहा नहीं जाता है कि—'आप लाभ दीजिये'। क्योंकि, यहाँ 'अनुकंपा' का प्रसंग है, और साधु--मुनिराजको, देनेके समय गुरुत्वबुद्धिका---सुपात्रदानका प्रसंग है।

तब कहना होगा—मानना पडेगा कि—तीसरे पाठमें भी प्रसंग तो मोक्षार्थदान ही है, परन्तु, असंयती--अव्रती होनेपर भी उसमें गुरुत्वबुद्धि--पात्रबुद्धि रख करके देनेसे एकान्त पाप दिख—लाया है। और अनुकंपा दानके लिये तो पात्रापात्रके विचार ही करनेकी आवश्यकता नहीं दिखलाई है, तो फिर निषेध करनेकी तो बात ही क्या ? जिसकी पुष्टि हम पहिले अच्छी तरह कर आए हैं, इस लिये पुनः लिखनेकी आवश्यकता ही क्या है ?

प्यारे पाठक, यहाँतक तो हमने तेरापंथियोंकी ही युक्तियाँको तथा वे सूत्रोंके जिन पाठोंको आगे करते हैं, उन्हींपर विचार किया। अब हम अन्तमें अनुकंपाकी पुष्टिके और कतिपय प्रमाण लिख कर इसको समाप्त करेंगे।

ठाणांगसूत्रके दशवें ठाणे के पाठको देख लीजिये। ठाणांग-सूत्रके दशवें ठाणेमें दश प्रकारके दान दिखलाए हैं। वे दान ये हैं:—

"अणुकंपा संगहे चेव भयाकालुणिए ति य।
लज्जाये गारवे णं च अधम्मे पुण सत्तमे ॥ १॥
धम्मे य अट्ठमे वुत्ते काहिई य कयं ति य"।

१ अनुकंपादान, २ संग्रहदान, ३ भयदान, ४ कारुण्यदान (शोकदान), ५ लज्जादान, ६ गौरवदान, ७ अधर्मदान, ८ धर्मदान, ९ करिष्यतिदान और १० कृतदान।

इन दश प्रकारके दानोंमें सबसे प्रथम 'अनुकंपा' दानको रक्खा गया है। इस अनुकंपा दानका स्पष्टीकरण करते हुए टीका-कार भगवान् भी कहते हैं कि:—

"अनुकंपया कृपया दानं दीनानाथविषयमनुकंपादानम्, अथवा अनुकंपातो यद्दानं तदनुकंपादानम्।"

अर्थात् अनुकंपासे--कृपासे दीन—अनाथ—संबंधि जो दान है, उसको, अथवा दयासे जो दिया जाता है, वह अनुकंपा दान है।

फिर येही टीकाकार श्रीउमास्वातिवाचकजीके शब्दोंमे भी कहते हैं कि:—

"कृपणेऽनाथदरिद्रे व्यसनप्राप्ते च रोगशोकहते।
यद्दीयते कृपार्थादनुकंपा तद्भवेद्दानम्" ॥ १ ॥

अर्थात्—कृपण, अनाथ, दरिद्र, दुःखप्राप्त और रोग—शोकसे हनाये हुएको दयासे जो दिया जाता है, वह अनुकंपादान है।

अब बतलाईये, ऐसे अनुकंपा दानका क्योंकर निषेध हो सकता है ? फिर आगे चलीये।

उत्तराध्ययन सूत्रके २१ वें अध्ययनमें कहा है किः—

" सव्वेहिं भूएहिं दयाणुकंपी खंतीखमे संजयबंभयारी।
सावज्जजोगं परिवज्जयंतो चरिज्ज भिक्खू सुसमाहि इंदिए॥१३॥

(पृ० ६४५)

अर्थात्—समस्त भूतोंमें हितोपदेशरूप दया करके, अनुकंपा करनेका स्वभाववाला, तत्त्वचिंतवनरूप क्षान्ति करके दुर्वचन—ताडनादि रूप उपसर्गोंको सहन करनेवाला, संयमी, ब्रह्मचारी, सावद्ययोगोंका परित्याग करनेवाला और वशीकृत है इन्द्रियाँ जिसकी ऐसा होके साधु विचरे।

अब देखिये, इस गाथामें समस्त जीवोंकी अनुकंपा करनेका और हित वांछनेका कहा। फिर भी अनुकंपाका निषेध हो, यह बड़े आश्चर्य की बात है।

कदाचित् कोई यह कहे कि—" उपर्युक्त गाथामें तो अनुकंपा करनेको कहा, परन्तु दुःखी जीवोंको दुःखसे मुक्त करनेका और शाता उपजानेको तो नहीं कहा ?। " लेकिन नहीं, यह भूल है। जीवको नहीं मारना, उसीका नाम अनुकंपा—दया नहीं है, किन्तु जीवकी रक्षा करना—बचाना—दुःखमेंसे मुक्त करना इसका नाम अनुकंपा—दया है। अगर ऐसा न होता तो, भगवान् भगवतीसूत्रके सातवें शतकके छठवें उद्देशेमें, प्राणातिपात, प्राणातिपातविरमण, प्राणानुकंपा और परपीडन इन चार प्रकारके कारणोंसे चार प्रकारके कर्म रूप कार्य कभी न दिखलाते। क्यों-

कि–' नहीं मारना ' और ' अनुकंपा ' ये दोनों एक ही अर्थके सूचक होते तो, प्राणातिपात विरमण (जीवको मारनेसे हटना) से अकर्कश वेदनीयकर्म और प्राणकी अनुकंपासे शातावेदनीयकर्म, ऐसे भिन्न २ कर्म भगवान् नहीं दिखलाते । देखिये इस पाठको:–

" अत्थि णं भंते ! जीवाणं कक्कसवेयणिज्जा कम्मा कज्जंति ? हंता अत्थि । कहण्णं भंते ! जीवाणं कक्कसवेयणिज्जा कम्मा कज्जंति ? गोयमा ! पाणाइवाएणं जाव मिच्छादंसणसल्लेणं. एवं खलु गोयमा ! जीवाणं कक्कसवेयणिज्जा कम्मा कज्जंति । अत्थि णं भंते ! नेरइयाणं कक्कसवेयणिज्जा कम्मा कज्जंति ? गोयमा ! एवं जाव वेमाणियाणं ॥ अत्थि णं भंते ! जीवाणं अकक्कसवेयणिज्जा कम्मा कज्जंति ? हंता अत्थि । कहण्णं भंते ! जीवाणं अकक्कसवेयणिज्जा कम्मा कज्जंति ? गोयमा ! पाणाइवायवेरमणेणं, जाव परिग्गहवेरमणेणं, कोह विवगेणं, जाव मिच्छादंसणसल्लविवेगेणं, एवं खलु गोयमा ! जीवाणं अकक्कसवेयणिज्जा कम्मा कज्जंति । अत्थि णं भंते ! नेरइयाणं अकक्कसवेयणिज्जा कम्मा कज्जंति ? णो इणट्ठे समट्ठे, एवं जाव वेमाणियाणं, ण वरं मणुस्साणं जं जीवाणं ॥ अत्थि णं भंते ! जीवाणं सायावेयणिज्जा कम्मा कज्जंति ? हंता अत्थि । कहण्णं भंते ! जीवा सायावेयणिज्जा कम्मा कज्जंति ? गोयमा ! पाणाणुकंपयाए, भूयाणुकंपयाए, जीवाणुकंपयाए, सत्ताणुकंपयाए, बहूणं पाणाणं जावसत्ताणं अदुक्खणयाए, असोयणयाए, अजूरणयाए, अतिप्पणयाए, अपिट्टणयाए, अपरियावणयाए, एवं खलु गोयमा ! जीवाणं सायावेयणिज्जा कम्मा कज्जंति, एवं नेरइयाण वि, जाव. वेमाणियाणं ॥ अत्थि णं भंते ! जीवाणं असायावेयणिज्जा कम्मा कज्जंति ?

हंता अत्थि । कहण्णं भंते ! जीवाणं असायावेयणिज्जा कम्मा कज्जंति ? गोयमा ! परदुक्खणयाए, परसोयणयाए, परजूरणयाए, परतिप्पणयाए, परपिट्टणयाए, परपरितावणयाए, बहूणं पाणाणं जाव सत्ताणं दुक्खणयाए, सोयणयाए, जाव परियावणयाए, एवं खलु गोयमा ! जीवाणं असायावेयणिज्जा कम्मा कज्जंति, एवं नेरइयाणवि, जाव वेमाणयाणं ॥ ”

(पत्र ४७५ से ४७७)

अर्थात्–हे भगवन् ! जीव, कर्कश वेदनीयकर्म उत्पन्न करे ! करे । हे भगवन् ! जीव कर्कश वेदनीय कर्म कैसे उत्पन्न करे ? गौतम ! प्राणातिपातसे, यावत् मिथ्यादर्शनशल्य अर्थात् अठारह पापोंसे कर्कश वेदनीयकर्म उपार्जन करे । हे भगवन् ! नारकीके जीवोंको कर्कश वेदनीय कर्म उत्पन्न होते हैं ? । होते हैं, यावत् वैमानिक जीवोंपर्यन्तको होते हैं ।

हे भगवन् ! जीव अकर्कशवेदनीय कर्म उत्पन्न करते हैं ? करते हैं । हे भगवन् ! अकर्कशवेदनीय कर्म कैसे उत्पन्न होते हैं ?, हे गौतम ! प्राणातिपातविरमणसे, यावत् परिग्रह विरमणसे, और क्रोधके त्यागसे, यावत् मिथ्यादर्शन शल्यके त्यागसे जीवोंको अकर्कश वेदनीयकर्म उत्पन्न होते हैं ? हे भगवन् ! नारकीके जीवोंको अकर्कशवेदनीय कर्म उत्पन्न होते हैं ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, अर्थात् नहीं होते हैं, यावत् वैमानिक पर्यन्त । लेकिन मनुष्योंकों तो, जैसे जीवको कहा, वैसे समझना । अर्थात् मनुष्योंको यह कर्म उपार्जन होते हैं ॥

हे भगवन् ! जीवोंको शातावेदनीय कर्म उत्पन्न होते हैं ? होते हैं। हे भगवन् ! किस प्रकारसे शातावेदनीयकर्म उत्पन्न होते

हैं? हे गौतम! प्राणकी अनुकंपासे, भूतकी अनुकंपासे, जीवकी अनुकंपासे, सत्त्वकी अनुकंपासे, और बहुत प्राणीभूत–जीव–सत्त्वोंको दुःखके नहीं देनेसे, दीनपनेके नहीं करानेसे, शोकके नहीं करानेसे, अश्रुआदिके नहीं करानेसे, यष्ट्यादिके ताडनके अभावसे, शरीरके तप्त करनेके अभावसे, जीव शातावेदनीय कर्म उपार्जन करते हैं। इस प्रकार नारकीके जीवोंसे लेकर वैमानिक पर्यन्त समझ लेना॥

हे भगवन्! जीवोंको अशातावेदनीय कर्म उत्पन्न होते हैं? होते हैं। हे भगवन्! जीवोंको अशातावेदनीय कर्म कैसे उत्पन्न होते हैं?, हे गौतम! परको दुःखदेनेसे, परको दीनपना करानेसे, परको शोक करानेसे, अश्रुआदिके गिरवानेसे, यष्ट्यादिसे ताडन करनेसे, और शरीरको तप्त करनेसे तथा बहुत प्राणियोंको पीडन करनेसे; यावत् शरीरको तप्त करनेसे जीव अशातावेदनीय कर्मको उपार्जन करता है। इस प्रकार नारकी के जीवोंसे लेकर वैमानिक पर्यन्त समझ लेना॥

अब विचारनेकी बात यह है कि–उपर्युक्त पाठमें चार प्रकारके कर्मोंके उत्पन्न होनेमें, कारण भी भिन्न भिन्न ही दिखलाए हैं। इससे स्पष्ट होता है कि–"जीवोंको नहीं मारना, ' इसीका नाम ' अनुकंपा ' नहीं है किन्तु एक जीवोंकी रक्षा करना–दुःखोंसे मुक्त करना, इसीको भी कहते हैं। और इससे भी अनुकंपा करनी, यह जाहिर होता है।

अब, आगमोंके प्रमाणोंसे अनुकंपाका विशेष स्पष्टीकरण करनेकी आवश्यकता नहीं है, तो भी यह कहना अनुचित न होगा कि–' निरनुकंपा ' यह अनार्य के लक्षणोंमे दिखलाई हुई है। जैसे सूयगडांगसूत्रके प्रथम श्रुतस्कंधके पृ० २६२ में अनार्यके लक्षण दिखलाते हुए कहा है कि:—

"पावा य चंडदंडा अणारिया णिग्घिणा णिरणुकंपा"

इससे भी सिद्ध हुआ कि–आर्यपुरुष, अनुकंपासे रहित नहीं हो सकते। कहिये, इससे बढकर और क्या कहा जा सकता है?।

हम दावेके साथ कह सकते है कि–चाहे पैंतालीस आगमोंको देख लीजिये, चाहे बत्तीस, लेकिन किसी स्थानमें अनुकंपाका निषेध नहीं देखनेमें आवेगा।

इन आगमोंको ही क्यों? हम पहिले कह आये हैं, उसी तरह संसारके समस्त धर्मके, धर्म ग्रन्थोंको देख लीजिये, किसी-मेंसे यह नहीं पाया जायगा कि–'जीवोंकी रक्षा नहीं करनी चाहिये–' 'जीवों पर दया नहीं करनी चाहिये'–'जीवोंको नहीं बचाना चाहिये'। यदि ऐसे ही सिद्धान्त संसारमें प्रचलित होते, आज संसारमें मनुष्य, मनुष्य ही नहीं कहे जाते, किन्तु उनका कुछ और ही नाम होता।

हम कहते हैं कि–सूत्र--सिद्धान्तोंके उन गूढ रहस्योंको जाने दीजिये, हमारे तत्त्ववेत्ताओंने–ऋषि–महर्षियोंने, उन रहस्योंका भी मक्खन निकालकर, हमारे सामने जो सुभाषित रक्खे हैं, उन्हीपर हम ख्याल करे, तो हमें मालूम हो सकता है कि–अनुकंपा क्या चीज हैं? वह हमें करने लायक है या नहीं?। देखिये, एक जगह कहा हैः–

"विद्या विवादाय धनं मदाय,
शक्तिः परेषां परिपीडनाय।
खलस्य साधोर्विपरीतवृत्तिः,
ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय" ॥ १ ॥

अर्थात्–दुर्जनकी विद्या विवादके लिये, धन मदके लिये, और शक्ति दुसरोंके दुःख देनेके लिये होती है। किन्तु, साधु पुरुषकी इससे विपरीतवृत्ति होती है। अर्थात् साधु–सज्जनकी विद्या ज्ञानके लिये, धन दानके लिये और शक्ति दूसरोंकी रक्षाके लिये होती है।

कैसा उत्तम सुभाषित! यदि इस एक ही सुभाषित पर खयाल रक्खा जाय, तो मनुष्योंको मालूम हो सकता है कि–दान करना और जीवोंकी रक्षा करना, ये दोनों मनुष्योंके परम कर्तव्य ही हैं।

शास्त्रकारोंने तो आगे बढ़करके यहाँतक कहा है किः–

"वर्षन् क्षारार्णवेऽप्यब्दो मुक्तात्वं क्वापि जायते।
सर्वेषां ददतो दातुः पात्रयोगोऽपि संभवेत्" ॥ १ ॥

अर्थात्–जो मनुष्य हमेशां देता ही रहता है–दान करता ही रहता है, उसको कभी न कभी पात्रका योग मिल ही जाता है, जैसे क्षारसमुद्रमें भी वर्षते हुए मेघका जल, कभी न कभी मोती पनेको भी प्राप्त कर लेता है।

इस लिये मनुष्योंको हमेशां दान देते ही रहना चाहिये। यों नहीं समझना चाहिये कि–यह तो असंयमी है–यह तो अव्रती है, इसको कैया कर दिया जाय?। नहीं, व्रती–अव्रतीका, पात्र–अपात्रका विचार मोक्षार्थदानमें करनेका है, अनुकंपा दानमें नहीं। इसके लिये कहा भी है कि:–

"इयं मोक्षफले दाने पात्रापात्रविचारणा।
दयादानं तु सर्वज्ञैर्न क्वापि प्रतिषिध्यते" ॥ १ ॥

अर्थात्-यह पात्रापात्रका विचार मोक्षफल संबंधी दानमें करनेका है, परन्तु दया–दान (अनुकंपा) का तो सर्वज्ञप्रभुने कहीं

भी निषेध नहीं किया। क्योंकि—" दीनाय देवदूष्यार्धं यथाऽदात् कृपया प्रभुः " स्वयं परमात्माने भी अपना आधा-देवदुष्यवस्त्र, दीन ऐसे ब्राह्मणको अनुकंपासे दिया ही है। फिर इसका निषेध करना-इसमें प्रवृत्ति न करना, यह बडी भारी अज्ञानताका कही जा सकती है।

अगर बुद्धिमत्तासे विचार किया जाय, तो मालूम हो सकता है कि--धर्मके शोभित होनेमें करुणा—अनुकंपा ही एक कारण है। बल्कि योंही क्यों न कहा जाय कि धर्मका मूल ही दया--अनुकंपा—करुणा है। सिवाय अनुकंपाके सिवाय दयाके धर्मरूपी वृक्ष कभी खडा रह ही नहीं सकता है। इसी लिये एक कविने भी कहा है:—

" लक्ष्म्या गार्हस्थ्यमक्ष्णा मुखममृतरुचिः श्यामयाऽम्भोरुहाक्षी
भर्त्रा न्यायेन राज्यं वितरणकलया श्रीर्नृपो विक्रमेण।
नीरोगत्वेन कायः कुलममलतया निर्मदत्वेन विद्या
निर्दम्भत्वेन मैत्री किमपि करुणया भाति धर्मोऽन्यथा न "॥१॥

अर्थात्—गृहस्थीपना लक्ष्मीसे, मुख आंखसे, चन्द्र रात्रीसे, स्त्री पतिसे, राज्य न्यायसे, लक्ष्मी दान करनेसे, राजा विक्रमसे, शरीर निरोगत्वसे, कुल पवित्रतासे, विद्या निरभिमानतासे, मैत्री निष्कपटभावसे और धर्म करुणासे शोभित होता है। अन्यथा नहीं।

कहाँ तक कहा जाय ? दया और दानकी महिमा शास्त्रोंमें स्थान स्थानमें पाई जाती है। बल्कि योंही अगर कह दें कि—' संसारके समस्त शास्त्रोंका ' दान और दया करना ' यही सार है, ' तो इसमें जरा सी भी अत्युक्ति नहीं कही जा सकती

अतएव, अन्तमें निम्नलिखित भावनाके साथ 'हितशिक्षा' की पूर्णाहुति की जाती है कि:—

" इस श्रेयस्कर उद्यम द्वारा, पुण्य मुझे उपजा है जो,
आशा करता हूँ मैं, उससे मिथ्याविभ्रमका लय हो।
और इसीसे भविजन पाओ शिवपदके अविचल पथको,
रागद्वेष-विभाव-तिमिरसे कोई भी अन्धा न बनो " ॥१॥

" देवें सर्व मनुष्य, दान दिलसे दुःखी तथा दीनको,
पीडा-विह्वलका प्रपालन करें, रक्खें दया भावको " ।
आशीर्वाद यही प्रदान करके, सद्भावनासे भरे,
'शिक्षा' पुस्तकका समापन यही विद्या विनोदी करे ॥२॥

भव्यानामुपकाराय हितशिक्षामिमां व्यधात् ।
धर्माचार्यपदोपासी श्रीविद्याविजयो मुनिः ॥३॥

समाप्त.



॥ अर्हम् ॥



॥ परमगुरुश्रीविजयधर्मसूरिभ्यो नमः ॥

शिक्षा-शतक.

१

मित्रो! देखो एक जगत्में ऐसा पंथ निराला है,
मानें नहि कुछ धर्म-कर्म, मन मानी मौज उडाता है।
चेतन-जडका भेद न जाने, शास्त्र कुशस्त्र वनाया है,
ऐसे तेरापंथ मजवने जगमें गजव मचाया है ॥

२

सुनो सर्व सिद्धान्त इसीका, सार सार दिखलाता हूँ,
नहीं लेखिनी माने तो भी, हृदय कठोर वनाता हूँ।
दया दानका मूल उखाड़ा, प्रतिमा पत्थर माना है,
ऐसे तेरापंथ मजवने, जगमें गजव मचाया है ॥

३

जो अनुकंपा मानी जगने, उससे भी मुख मोडा है,
सावद्य-निरवद्य भेद दिखाकर, रास[1] भयंकर जोड़ा है।

---

१ तेरापंथ मतके उत्पादक भीखमजीने, 'अनुकंपा रास' वनाया है, जिसमें निर्दयताको ये सव वातें लिखी हूई हैं।

सूत्रोंमें नहि भेद दिखाया, अपने आप जमाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

४

जो बिल्ली चूहेको पकड़े, उसे नहीं छोड़ाता है,
बिल्लीको उसमें दुख माने, निर्दयभाव बढ़ाता है ।
नहीं समझते ही 'दुख देना', किसका नाम कथाया है ?
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें गजब मचाया है ।

५

"पानीके विण तड़फ रहा जन, आकुल-व्याकुल होता हो,
हाय हायरे! बाप मुआ! बोले मुझको कोई जल दो ।
नहि देना उसको भी पानी," ऐसा मत मन-माना है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

६

"पानी देकर उसे बचावें, तो पापोंको सेवेगा,
अन्न खायगा, जल पीएगा, फिर विषयोंको सेवेगा ।
वे सब हमको पाप लगेंगे, हमने क्योंकि बचाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

७

"जिस वाडेमें गौएं रहतीं, उस वाडेमें आग लगी,
मत खोलो फाटक उसकी तुम, कारण गौएं जीएंगी ।
जीकर वे तो पाप करेंगी," यह उपदेश सुनाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

८

" किसी गृहस्थका घर जलता है, उसमें वहुत मनुष्य भरे,
किलविल किलविल वे करतेहैं, हाय मरे! रे हाय मरे।
पर मत खोलो किंवाड उसका, " ऐसा धर्म मनाया है,
ऐसे तेरापंथ मजवने, जगमें गजव मचाया है ॥

९

" गाडा नीचे बच्चा आवे, उसको भी न उठाओ कोई,
मरता हो तो मरने दो, चिंता न करो जीनेकी कोई।
जीना-मरना कभी न चाहो " यह सिद्धान्त दिखाया है,
ऐसे तेरापंथ मजवने, जगमें गजव मचाया है ॥

१०

" साधु-संतको किसी दुष्टने आकर फांसी दीनी है,
भोगन दो उसको वह अपनी, जैसी करणी कीनी है।
मत खोलो फांसी उसकी तुम, " ऐसा ज्ञान कराया है,
ऐसे तेरापंथ मजवने, जगमें गजव मचाया है ॥

११

" जाडेसे मरते को मत दो, कपडेका टुकडा तुम एक, "
" भूखोंको मत अन्न खिलाओ, ऐसी मनमें रक्खो टेक "!
ऐसी दया प्ररूपी जिसने, क्या क्या नहि दिखलाया है?
ऐसे तेरापंथ मजवने, जगमें गजव मचाया है ॥

१२

" कोई मारे जीव मार्गमें, पैसा दे मत छूडाओ, "

" सवल जीव दुर्वलको मारे, धर्म छुडाये मत मानो । "
" लाय बुझाओ—कसाइ मारो, दोनों सम समझाया है, "
ऐसे तेरापंथ मजवने, जगमें गजव मचाया है ॥

१३

" विद्याशाला—दानभवन—हॉस्पिटल और पानीकी पो,
ऐसे कार्योंके करनेसे, धर्म—पंथको वैठे खो । "
यही बोध है इसी पंथका, क्या ही तत्त्व निकाला है ?,
ऐसे तेरापंथ मजवने, जगमें गजव मचाया है ॥

१४

" जीवोंका जीना नहि चाहें " ऐसी डींग अडाते हैं,
फिर भी मक्खी गिरे दालमें, तुरत निकाल वचाते हैं ।
वायुकायके जीव वचानेको पाटा वंधाया है,
ऐसे तेरापंथ मजवने, जगमें गजव मचाया है ॥

१५

" जीवोंका हम तरना चाहें " इसी भूतके कारणसे,
मरतेको सुखसे वे देखें, क्या है ऐसे तारणसे ? ।
आया इसका यही नतीजा, दया—दान उठवाया है,
ऐसे तेरापंथ मजवने, जगमें गजव मचाया है ॥

१६

यह तरना वे भी तो चाहें:—कसाइ नाम धराते हैं,
ईश्वरका ले नाम, पशुव्रजका जो जभे कराते हैं ।
रहा फरक क्या इन दोनोंमें ? नहीं समझमें आया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

१७

करूँ कहाँ तक वर्णन इसका ? बहुत विषय कहनेका है,
दया-वृक्षको तोड दिया, बी बोया निर्दयताका है ।
आर्द्रभावको दूर किया, निज मन पाषाण बनाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

१८

दया दयाका नाम पुकारें, दया नहीं जानें लवलेश,
'दुःखीको दुखसे छोडाना,' कही दया यह ही परमेश ।
इसी दयाको, पर, नहीं जानें, मानें मन जो आया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

१९

"जीव मारनेसे लगता है, पाप एक, मारे उसको,
पाप अठारों लगे उसीको, मरतेको परिपाले जो ।"
यह सिद्धान्त खास है इसका, इसमें सब कुछ आया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

२०

"जो कुछ देना सो हमको दो, मत दो और किसीको कुछ,
नहीं पात्र है और जगत्में, हमहीको समझो सब कुछ ।"
साध्वाभासोंकी यह शिक्षा, नवीन पंथ चलाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

२१

अब कुछ सुनो सूत्रकी वातें, जो इसने पलटाई हैं,
नहीं समझकर अर्थ इन्हींके, कुयुक्तियाँ दिखलाई हैं ।

" सबल जीव दुर्बलको मारे, धर्म छुडाये मत मानो । "
" लाय बुझाओ–कसाइ मारो, दोनों सम समझाया है, "
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

१३

" विद्याशाला–दानभवन–हॉस्पिटल और पानीकी पो,
ऐसे कार्योंके करनेसे, धर्म–पंथको वैठे खो । "
यही बोध है इसी पंथका, क्या ही तत्त्व निकाला है ?,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

१४

" जीवोंका जीना नहि चाहें " ऐसी डींग अडाते हैं,
फिर भी मक्खी गिरे दालमें, तुरत निकाल बचाते हैं ।
वायुकायके जीव बचानेको पाटा बंधाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

१५

" जीवोंका हम तरना चाहें " इसी भूतके कारणसे,
मरतेको सुखसे वे देखें, क्या है ऐसे तारणसे ? ।
आया इसका यही नतीजा, दया–दान उठवाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

१६

यह तरना वे भी तो चाहें:–कसाइ नाम धराते हैं,
ईश्वरका ले नाम, पशुव्रजका जो जभे कराते हैं ।
रहा फरक क्या इन दोनोंमें ? नहीं समझमें आया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

१७

करूँ कहाँ तक वर्णन इसका ? बहुत विषय कहनेका है,
दया-वृक्षको तोड दिया, बी बोया निर्दयताका है।
आर्द्रभावको दूर किया, निज मन पाषाण बनाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

१८

दया दयाका नाम पुकारें, दया नहीं जानें लवलेश,
'दुःखीको दुखसे छोडाना,' कही दया यह ही परमेश।
इसी दयाको, पर, नहीं जानें, मारें मन जो आया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

१९

"जीव मारनेसे लगता है, पाप एक, मारे उसको,
पाप अठारों लगे उसीको, मरतेको परिपाले जो।"
यह सिद्धान्त खास है इसका, इसमें सब कुछ आया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

२०

"जो कुछ देना सो हमको दो, मत दो और किसीको कुछ,
नहीं पात्र हैं और जगत्‌में, हमहीको समझो सब कुछ।"
साध्वाभासोंकी यह शिक्षा, नवीन पंथ चलाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

२१

अब कुछ सुनो सूत्रकी बातें, जो इसने पलटाईं हैं,
नहीं समझकर अर्थ इन्हींके, कुयुक्तियाँ दिखलाईं हैं।

जहाँ चली नहि एक, वहाँ तव 'प्रभु चूके' दिखलाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

२२

रयणादेवीके रोनेसे हुआ **शोक** उस जिनरिखको,
ज्ञाताके नववें अध्ययनमें '**करुण**' शब्दको तुम देखो ।
'करुण' शब्दको 'करुणा' कहकर झूठा अर्थ लगाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

२३

दिया दान वार्षिक, प्रभुने जब, अनुकंपाके आशयसे,
बार वर्षका कष्ट बतावें, प्रभुको, दारुण विभ्रमसे ।
दान दिया सब अर्हन्तोंने, औरोंको न कहाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

२४

[2]पंचमस्यागम पनरशतकमें[3], मंखलिपुत्र बचाया है,
'अनुकंपा' शब्दके देखते, 'प्रभुचूका' दर्शाया है ।
चार ज्ञानके स्वामी प्रभुपर, यही कलंक लगाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

२५

निर्दोषी प्रभु थे, अप्रमादी, कभी न चूके संयममें,
श्रीआचारे यही बताया, देखो नववें अध्ययनमें ।

---

१ पृष्ठ ९५८–९५९ । २ भगवतीसूत्र । ३ पृ० १२१७–१२१८ ।
४ आचारांगसूत्र । ५ पृष्ठ १५०–१५२ ।

'प्रभु चूके' का पाठ नहीं, फिर अपने आप दिखाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

२६

अरणकका दृष्टान्त बताकर, कहें:-' न की करुणा इसने, '
पर करुणाका काम वहाँ क्या, सुरलीला जानी इसने ।
' नहि छोडेंगे धर्म हमारा ' यह अरणक फरमाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

२७

' नहीं करेगा हर्ज हमारा ' यही बात इसके मनकी,
फिर यह क्योंकर करे प्रार्थना, बनियोंके संरक्षणकी ?।
ज्ञातसूत्रमें स्पष्ट बात है, फिर भी झूठ चलाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

२८

मिथिलापति नमिराय, ' ऋषीश्वर ' होकर चलदें जंगलमें,
रुदनकरें सब लोग नगरके, अपने अपने मंदिरमें ।
नहीं मोह उन पर ऋषिजीको, यही सत्य फरमाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

२९

गया इन्द्र, हो विप्र, वहाँपर, मोह-परीक्षा करनेको,
वैक्रियद्वारा पुरी जलाकर, पूछे 'क्यों न इसे देखो ?' ।
इसको भी 'करुणा' बतलाकर, दया-धर्म उठवाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

---

१ पृ०७६५ ।

३०

प्रतिमाके साधन करनेको, पहुँचा मेरघट[1] गजसुकुमाल,
सोमलने आकर इसके सिर, बांधी है मिट्टीकी पाल।
उसमें भरे ज्वलित अंगारे, यही सूत्रमें आया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

३१

कहें, 'न क्यों अनुकंपा की प्रभुने,' यह झूठ बताते हैं,
भाविभावको जानें प्रभुजी, नहीं प्रयत्न उठाते हैं।
इसी निमित्तसे कर्मनाश, प्रभुने इसका समझाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

३२

"महावीरको हुए अनेकों कष्ट, देव-मनु-तिर्यक्से,
की नहि रक्षा क्यों सुरपतिने अनुकंपाके कारणसे ?"
सार इसीका नहीं समझते, देखो यह बतलाया है:-
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

३३

आया सुरपति सेवा करने, जहाँ जिनेन्द्र विराजे हैं,
पर, प्रभुने फरमाया ऐसे "जिननिरपेक्षक होते हैं।
करें कर्मक्षय स्वकीय बलसे" योगशास्त्र[2]में आया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

३४

चेडा-कोणिक समरसमयमें, भी है सार समझनेका,

---

१ स्मशान। २ पृ० १०।

"नहीं किया क्यों प्रयतन प्रभुने, जीवोंके परिपालनका"?।
भाविभावको जानें जिससे, नहीं प्रयत्न कराया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

(३५)

"चुलणिपियाके तीन पुत्रको मारे पौषधशालामें,
पर, नहि की अनुकंपा उनपर, रहा धर्मकी दृढतामें"।
प्रसंग था वह मोहरायका, उसको और बताया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

(३६)

माताके आनेपर इसने, कोलाहलको बहुत किया,
रजनीका था समय, अतः व्रतभंग इसे तो कही दिया।
सूत्र उपासकमें[1] यह आया, दया-निषेध न आया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

(३७)

"मच्छ गलागल नितप्रति होती, सारे द्वीप समुद्रोंमें,
इनको क्यों न बचावें प्रभुजी, रहे इन्द्र जब आज्ञामें?।"
भाविभावको जानें जिनवर, जैसा होनेवाला है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

(३८)

कइ अनुकंपा 'जिनआज्ञामें' कइको 'आज्ञाभिन्न' गिनें,
नहीं भेद दिखलाए कहिंपर, फिरभी अपने आप गिनें।

---

१ पृ० १४०।

मनमाने ये भेद दिखाकर, मूलतत्त्व उठवाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबनें, जगमें ढोंग मचाया है ॥

३९

" नेमनाथने पशुओंकी रक्षा की है भावी दुखसे, "
" धर्मरुचीने जीव बचाये, भाविकालमें मरनेसे । "
" मेघकुमरने ससलेको भी इसी प्रकार रखाया है, "
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

४०

वे अनुकंपा जिन आज्ञामें, इनको आज्ञा रहित गिनेः—
" हरिकेशी पर भक्ति जगाकर, यक्ष, शरीर प्रवेश करे । "
" धारिणिने अनुकंपा लाकर इच्छित भोजन खाया है, "
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

४१

" हरिणिगमेषी देव, दयासे षट् पुत्रोंको लाया है, "
" अनुकंपासे ही जिनवरने, मंखलिपुत्र[1] बचाया है । "
" हरिका ईट उठाना, " " सुरने जलधरको बरसाया है "
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

४२

क्या अनुकंपा हो सकती है, प्रभु आज्ञासे रहित कभी ?
दुःखनाशकी इच्छा तो रखते हैं, मानवमात्र सभी ।
फिर भी इसको नहीं मानते, यही इन्होंकी माया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

---

१ गोशाला.

(४३)

" अव्रतिजीवन नहीं चाहना ' यह सूत्रोंमें आया है,
नहीं समझ कर अर्थ इसीका, इसको यों पलटाया है–
" अव्रति जीवोंका जीना नहि चाहो, यह बतलाया है "
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

(४४)

ऐसा झूठा अर्थ समझकर, दया हृदयसे खो डाली,
दान–पुण्य शुभकरणी अपने ही हाथोंसे धो डाली ।
समकितको खो बैठ हृदयसे, जो मिथ्यात्व बसाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

४५

पार्श्वनाथने सांप बचाया, शान्तिनाथने कबुतरको,
नेमनाथने पशु बचवाये, देखो उन अधिकारोंको ।
नहीं व्रतीथे, फिर भी उनका, क्यों रक्षण करवाया है ?
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

४६

शास्त्रोंमें तो यही बताया, श्रावक यह कहलाता है:–
" सात क्षेत्रमें भक्ति–प्रेमसे धनका व्यय जो करता है ।
दीन दुखीमें धनका व्यय भी जिसने नित्य कराया है, "
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

४७

फिर भी इसको नहीं मानकर, दान–पुण्य भगवाया है,

श्रावक-श्रावकको न खिलावे, इसको धर्म बताया है।
" दीन-दुखीको कुछभी नहि दे, यह श्रावक कहलाया है, "
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

४८

एकेन्द्रियादि भेद दिखाये जीवोंके, जो सूत्रोंमें,
पुण्य-पाप भी भिन्न बताये, जीने-मरने दोनोंमें ।
नहीं मानकर इन भेदोंको, सबको सम समझाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

४९

नहीं समझमें आता मुझको, क्यों वे रोटी खाते हैं ?
इसके बदले बडे अजोंको[1], क्यों वे नहीं उडाते हैं ? ।
पाप लगेंगे दोनोंमें सम, कारण, यही मनाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

५०

' जीव मारकर जीव न रखना, ' यह जो बात बनाते हैं,
आवे यद्यपि सांढ सामने, कैसे भागे जाते हैं ? ।
'क्या भगनेमें जीव न मरते ?, ' फिर भी झूठ बताया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

५१

दया दयाका नाम पुकारें, दया किसीकी नानी है ?
दया रही अंतर ही घटमें नहीं, बडा वह पापी है, ।

---

१ बकरोंको ।

इसी दयाका मूल उठाकर, क्रूरकर्म फैलाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबनें, जगमें ढोंग मचाया है ॥

५२

दया दानका मूल उठाया, इतना भी तो नहीं किया,
अपनी पूजा ही के कारण, प्रभुपूजाको उठा दिया ।
अपनी प्रतिमाको मानें, जिन-प्रतिमाको न मनाया है,
ऐसे तेरापंथ मजबने, जगमें ढोंग मचाया है ॥

५३

सूत्रोंमें तो ठौर ठौर अधिकार जिन प्रतिमाका है,
पाठ छिपाकर इसका, इसने कृत्य किया चोरीका है ।
प्रभुवाणीकी चोरी करके, साहूकार बनाया है,
ऐसे देखो अजब मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

५४

जिनप्रतिमा–जिनवाणी, ये दोनोंका हमें सहारा है,
मानें इनमें एक, उसे क्या कहना ? यही विचारा है:–
‘ बाप विनाका पुत्र समझ लो ’ यही उचित समझाया है,
ऐसे देखो अजब मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

५५

जिन प्रतिमाके दर्शनसे, दर्शन ही निर्मल होता है,
‘दर्शन व्रतका मूल कहावे,’ जिन आगम यह कहता है ।
इसी मूलका मूल उखाडा, क्या ही जग भरमाया है ?,
ऐसे देखो अजब मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

५६

भेजी प्रतिमा अभयकुंवरने, आर्द्रकुमरके पास सही,
देख, हुआ उस समय उसीको 'जातिस्मरण' ज्ञान वहीं ।
सुयगडांगके छठे अध्ययनमें[1], यह अधिकार बताया है,
ऐसे देखो अजब मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

५७

कहें कुपंथी ' भेजा ओघा, ' नहीं तत्त्वको सोचा है,
ओघेको कहता आभूषण क्या ? उसने जो सोचा है।
इसी कल्पना हीके कारण, नहीं तत्त्वको पाया है,
ऐसे देखो अजब मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

५८

दोवेईने[2] जिन प्रतिमा पूजी, ज्ञाता[3] यह फरमाता है,
स्पष्ट पाठ मिलने पर, क्यों यह मूढमती शरमाता है ? ।
प्रभुपूजा–प्रभुदर्शनके विण, यों ही जन्म गमाया है,
ऐसे देखो अजब मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

५९

देव–देवियोंको मानें, फिर जाकर नाक घिसाते हैं,
प्रभुप्रतिमाके आगे जानेको, क्यों ये हिचकाते हैं ? ।
नहीं शरम आवे इनको, यह नवीन पंथ चलाया है,
ऐसे देखो अजब मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

६०

नाम ' अहिंसा ' के दिखलाए, उसमें ' पूजा ' दिखलाई,

१ द्वितीय श्रुतस्कंधमें । २ द्रौपदी । ३ पृ० १२५५ ।

प्रश्नव्याकरणसूत्र[1] कहे, यह आंख खोल देखो भाई।
पकडा सो पकडा यह रक्खे, छोडे नहि पकडाया है,
ऐसे देखो अजब मजबने, जगमें गजब मचाया है॥

६१

समकित धारी सूरयाभने प्रभुप्रतिमा पूजी देखो,
इसी सूत्र रोयपसेणीमें[2] नाटक भी इसका देखो।
स्पष्ट पाठ होनेपर, कैसा फिर, इसको पलटाया है:-
ऐसे देखो अजब मजबने, जगमें गजब मचाया है॥

६२

" नाटककी जब आज्ञा मांगी, वहाँ वीरप्रभु मौन रहे, "
कहें कुपंथी 'धर्म कहाता, क्यों आज्ञा प्रभु नहि देते ?'
समझ नहीं इस न्याय नीतिकी:-'अनिषिद्ध, स्वीकृत होता है'
ऐसे देखो अजब मजबने, जगमें गजब मचाया है॥

६३

अगर न होती प्रभुकी आज्ञा, जब गौतमने पूछा था,
क्यों करते वर्णन नाटकका ? कहते 'अनुचित ही यह था'।
इन बातोंको नहीं समझकर, ठोके जो मन आया है,
ऐसे देखो अजब मजबने, जगमें गजब मचाया है॥

६४

जिन प्रतिमाकी सेवा करता साधु, निर्जरा करता है,
ऐसा खुल्लंखुल्ला देखो, प्रश्नव्याकरण[3] कहता है।

---

१ पृ० ३३९। २ पृ० ७५ से। ३ पृ० ४१५।

भाव–भक्तिका पाठ दिखाया, फिर भी मूँह छिपाया है,
ऐसे देखो अजव मजवने, जगमें गजव मचाया है।

६५

जिन प्रतिमाकी पूजा करनेवाला सम्यग्दृष्टी है,
पूजासे जो विमुख रहा नर, वह तो मिथ्यादृष्टी है।
महाकल्पके इसी पाठको, जिसने नहीं मनाया है,
ऐसे देखो अजव मजवने, जगमें गजव मचाया है॥

६६

जब आणंदने व्रत लिये, उस समय प्रतिज्ञा यह की है:–
'अन्य तीर्थके देव न वांदुं' प्रतिमा सिद्ध इसीसे है।
अक्कल नहीं ठिकाने जिसकी, मूढ पंथ भरमाया है,
ऐसे देखो अजब मजवने, जगमें गजव मचाया है॥

६७

जिन प्रतिमाकी तरह साधुकी सेवा करने वालेको,
दीर्घायुष्य शुभ कर्म बंधाते, देखो [1]तीजे ठानेको।
उपमासे प्रतिमाकी पूजा, नहीं हृदयमें लाया है,
ऐसे देखो अजब मजबने, जगमें गजब मचाया है॥

६८

इसी सूत्रमें फिर भी देखो, **ठवणा सत्य** बताया है,
निक्षेपे जो चार बताये, उसमें **ठवणा** आया है।
इन सबको भी नहीं मानकर, कैसा ऐब लगाया है,
ऐसे देखो अजब मजबने, जगमें गजब मचाया है॥

---

१ ठाणांगसूत्र पृ० ११७

६९

उंववाइ 'अरिहंत चेइयाणि,' क्या यह पाठ बताता है ?[1],
अंबड़ने भी प्रतिमा पूजी, यही सूत्र दिखलाता है।
अपने घरकी बात न जानें, झूठा ढोंग मचाया है,
ऐसे देखो अजब मजबने, जगमें गजब मचाया है ॥

७०

सतर भेदसे जिनप्रतिमाकी, पूजाका अधिकार कहा,
इसी सूत्र रायपसेणीमें, प्रतिमाको 'जिनसदृश' कहा।
'निःश्रेयस' का फलभी आया, फिर भी हठ पकडाया है,
ऐसे देखो अजब मजबने जगमें गजब मचाया है ॥

७१

आलोयण विधि चली सूत्रमें, उसमें भी यह दर्शायाः—
"साधु, पास प्रभुप्रतिमाके जा, आलोयण ले" यह आया।
करें अर्थ, इसका क्या वे जो, जिनने मुख बंधाया है ?[2],
ऐसे देखो अजब मजबने जगमें गजब मचाया है ॥

७२

भरतरायने अष्टापद पर, मणिमय बिंब भराये हैं,
गौतमस्वामी जिनवंदनके हेतु यहाँ पर आये हैं।
संप्रतिने भी सवाक्रोड जिन बिंबोंको बनवाया है,
ऐसे देखो अजब मजबने जगमें गजब मचाया है ॥

७३

महानिशिथमें यही बताया, 'जो जिनबिंब भराता है,

---

१ पृ० २९६-२९७। २ पृ० १९०।

श्रावक करणी वही पालकर, स्वर्ग बारवें जाता है'।
इस करणीको नहीं मानकर, समकित बीज जलाया है,
ऐसे देखो अजब मजबने जगमें गजब मचाया है ॥

७४

प्रतिमाका आकार देख कर, और मच्छ भी बूझे हैं,
समकित पाकर जातिस्मरणसे, पूर्वभवोंको पेखे हैं।
तिसपर मानें नहीं, जिन्होंने सच्चा अर्थ चुराया है,
ऐसे देखो अजब मजबने जगमें गजब मचाया है ॥

७५

अंग पांचवेंमें गणधरने, ब्राह्मी लिपिको वांदी है,
फिर भी प्रतिमाके निंदकने, पूरी निंदा ठोकी है।
सुनो कुतर्कोंको भी इसके, जिनसे जग भरमाया है,
ऐसे देखो अजब मजबने जगमें गजब मचाया है ॥

७६

कहें कुपंथी, "पत्थरकी गौ क्या हमको पय देती है?
इसी तरहसे पत्थरकी प्रतिमा न हमें कुछ देती है"।
कहा खूब, अक्कलका परिचय अपने आप कराया है,
ऐसे देखो अजब मजबने जगमें गजब मचाया है ॥

७७

पत्थरकी गौसे क्या हमको गौका ज्ञान न होता है?
ऐसे ही जिनप्रतिमासे, जिनेका उद्बोधन होता है।

---

१ भगवतीसूत्र। २ तीर्थंकरका। ३ ज्ञान।

कहिये, माता-पुत्री-स्त्रीमें क्योंकर भेद मनाया है?
ऐसे देखो अजब मजबने जगमें गजब मचाया है ॥

७८

नाम मात्रके ही लेनेसे, इष्ट-सिद्धि क्या होती है?
नाम रटो दिनभर लड्डूका भूख नष्ट क्या होती है ?।
नाम-मूर्ति इन दोनोंसे ही कार्यसिद्ध दिखलाया है,
ऐसे देखो अजब मजबने जगमें गजब मचाया है ॥

७९

साधु कदाचित् पघड़ी पहने, क्या वह साधु कहावेगा ?
साधु मानते लोक वेषसे, नहिं तो 'गेही होवेगा ।
नहीं मूर्ति, तो है क्या यह भी ? क्यों कुलको लजवाया है,
ऐसे देखो अजब मजबने जगमें गजब मचाया है ॥

८०

जिनसूत्रोंको 'प्रभुवाणी' कहते हैं, इसको भी देखो,
प्रभुवाणी तो चली गई, अब बनी मूर्ति उसको पेखो ।
फिर भी प्रतिमाको नहि मानें, पोलंपोल चलाया है,
ऐसे देखो अजब मजबने जगमें गजब मचाया है ॥

८१

प्रतिमामें यह शक्ति रही है, परिणामों बदलानेकी,
जैसे चित्रित वनिताओंमें, 'इससे न वहाँ रहनेकी ।
आज्ञा तीर्थंकरने दी है' यह मनमें न जचाया है,
ऐसे देखो अजब मजबने जगमें गजब मचाया है ॥

१ गृहस्थ । २ स्त्रियोंके चित्रोंमें ।

८२

अब कुछ सुनो मजेकी बातें, जो है चूरणकी गोली,
देकर, मित्रो ! खतम करुं बस, इतनेमें इसकी होली ।
वेष और आचार इन्होंने, शास्त्रविरुद्ध रखाया है,
देखो ऐसे अजब मजबने, अपना जन्म गमाया है ॥

८३

जैनीका तो नाम धरावें, नहीं जैनका लेश रहा,
आचारोंको छोड़, वेषको तोड़, दैत्यका रूप धरा ।
मैले कपड़े रक्खें, मानो तेली राजा आया है,
देखो ऐसे अजब मजबने, अपना जन्म गमाया है ॥

८३

मुखपर पाटा बांधा, लंबा पूंछ बगलमें मारा है,
कपड़ेकी गाती बांधी, यह देखो भील गँवारा है ।
नहीं वेष मुनियोंका है यह, अपने आप धराया है,
देखो ऐसे अजब मजबने, अपना जन्म गमाया है ॥

८५

शास्त्रोंमें नहि यह फरमायाः–‘ मुखपर पाटा बांधो तुम ’,
साफ साफ तो यही कहाः–‘ जब बोलो यतना रक्खो तुम । ’
कहा इसीमें धर्म [1]वीरने, क्यों इसको न मनाया है ?
देखो ऐसे अजब मजबने, अपना जन्म गमाया है ॥

---

१ महावीरस्वामीने ।

८६

गौतमस्वामी गये मृगावतीके[1] वहाँ, जब यही कहाः—
'भगवन्! मुखको बांधो' ऐसा श्रीविपाकमें साफ कहा।
बांधी हो, तो क्योंकर कहती? इसमें कुछ न विचारा है,
देखो ऐसे अजब मजबने, अपना जन्म गमाया है॥

८७

औवश्यकमें[2] विधि बतलाई, काउस्सगके करनेकी,
मुहपत्ती हाथमें कही है, फिर भी मुखको दे ताली।
दशवैकालिक और अनेकों, सूत्रोंमें बतलाया है,
देखो ऐसे अजब मजबने, अपना जन्म गमाया है॥

८८

दंडा रखनेका दिखलाया, भगवत्यादि अनेकोंमें,
फिर भी इसको नहीं ग्रहें, करते ऐसे सब बातोंमें।
बात एक भी नहीं रखी, साधूका वेष लजाया है,
देखो ऐसे अजब मजबने, अपना जन्म गमाया है॥

८९

सब चीजोंको खानेवाले, बनकर बैठे बावाजी,
'खमा', 'पूज्यपरमेश्वर' में, हैं और बने पूरे काजी।
वासि–विदल और मधु–मक्खन भी, जो आया, सो खाया है,
देखो ऐसे अजब मजबने, अपना जन्म गमाया है॥

९०

लाला कर, आर्याएं[3] देती हैं, जो हरदम रहती हैं,

---

१ पृ. २२। २ आवश्यकनिर्युक्तिमें, काउस्सगके अधिकारमें। ३ साध्वीएं।

पास इन्हींके बैठ मजेसे भोजनको करवाती हैं।
ललनाओंका ढेर हमेशा, दिनभर पास जमाया है,
देखो ऐसे अजब मजबने, अपना जन्म गमाया है ॥

९१

एक दिवसके अन्तरसे, उस घरमें भिक्षा जाते हैं,
हलवा-पूरी और रायता, सब कुछ ही ले आते हैं।
आधाकर्मी दोष न देखें, सबको इसने खाया है,
देखो ऐसे अजब मजबने, अपना जन्म गमाया है ॥

९२

कच्चा पानी पिएं राखका, जो सूत्रोंमें नहीं कहा,
बरतणके धोअणको लेलें, जिसमें हैं उच्छिष्ट भरा।
ऐसे करनेसे अपने पर 'म्लेच्छ' कलंक लगाया है,
देखो ऐसे अजब मजबने, अपना जन्म गमाया है ॥

९३

अजब बात, रखते ही नहि हैं, रात्रिसमयमें पानीको,
करते क्या होंगे यह सोचो, जब जावें वे जंगलको ?।
अशुची रखनेका तो देखो, दंड निशिथमें आया है,
देखो ऐसे अजब मजबने, अपना जन्म गमाया है ॥

९४

'रजस्वला' यह धर्म न मानें, मानें फोड़ा फूटा है,
उससे भी भिक्षा मंगावें, सब कुछ इसको छूटा है।
करुं कहाँ तक श्लाघा इसकी? धर्म-कर्म सब खोया है,
देखो ऐसे अजब मजबने, अपना जन्म गमाया है ॥

---

१ रजस्वलावाली स्त्रीसे।

९५

बाहिर काले, भीतरकाले, काले कृत्य कराते हैं,
कूड़-कपटकी खान समझ लो, आडंबर रखवाते हैं।
सूत्र-अर्थका भेद न जानें, भोला जग भरमाया है,
देखो ऐसे अजब मजबने, अपना जन्म गमाया है॥

९६

सब तीर्थोंको छोड़ जगत्के, आप तीर्थ बन बैठे हैं,
गागा कर गीतोंको दिनभर, मूढोंको बहकाते हैं।
शास्त्रोंकी तो बात न करते, ठोक दिया मन आया है,
देखो ऐसे अजब मजबने, अपना जन्म गमाया है॥

९७

'तीर्थेश्वर' का अर्थ न जानें, तीर्थेश्वर बन बैठे हैं,
'खमा' 'घणी खम्मा' की धुनमें, फूले नहीं समाते हैं।
जा पूछा यदि प्रश्न किसीने, बस, झघडा उठवाया है,
देखो ऐसे अजब मजबने, अपना जन्म गमाया है॥

९८

'देव' गिनें वे भीखमजीको, 'गुरु' मानें कालूजीको,
'धर्म' प्ररूपा भीखमका है, छोड़े प्राक्तन[1] पूज्योंको।
इन्हीं तीन तत्त्वोंको ले कर, धोका पंथ चलाया है,
देखो ऐसे अजब मजबने, अपना जन्म गमाया है॥

९९

'तीर्थंकर' का नाम छुडाकर, 'भीखम' नाम सिखाते हैं,

---

१ प्राचीन-पूर्वके।

'भीभाराजिममाडाका'[1] की माला नित्य फिराते हैं।
इसी तरहसे सबकुछ फेरा, यह पाखंड बढ़ाया है,
देखो ऐसे अजब मजबने, अपना जन्म गमाया है ॥

१००

'करो कभी मत संगत इसकी,' अन्तिमकी यह शिक्षा है,
'मानो मेरा वचन हृदयसे,' बस, यह मेरी भिक्षा है।
स्नेहिमित्रको शतक सुनाओ, जो इस मतमें चलता है,
सेवो दान–दया–जिनप्रतिमा, जिससे पाप पिगलता है ॥

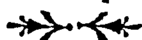
मुझमें जरा नहि शक्ति है, पद जोड़नेकी भी सही,
भाषा न हिन्दी जानता, फिर और क्या कहना यही ?
तो भी कृपासे धर्मगुरुकी, भाव अंतर जो भरे,
व्यक्त कर, उनको जगत्के सामने विद्याधरे ॥



---

१ भीखम, भारमल, रायचंद जीतमल, मघराज, माणकचन्द, डालचंद और कालुराम, इन आठोंके आद्यक्षरोंको मिलाकर तेरापंथी लोग माला फिराते हैं ॥

निवेदन ।



हमें अपने पाठकोंके करकमलोंमें 'मुनि' के विशेषांक रखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इस वर्ष विशेषांकके निकलनेकी कोई आशा न थी। क्योंकि, 'मुनि'के पास न तो स्थायी फंड है और न विशेष सहायताकी ही प्राप्ति है। ऐसी दशामें विशेषांक निकालनेका साहस कैसे हो सकता था, परन्तु हमारे सभापति साहब श्रीमान् सेठ राजमलजी लखीचंदजीने हमें विशेषांक निकालनेके लिए अनुरोध किया। इधर हमारे मित्रोंने भी हमें उत्साहित किया। अतएव आज हम अपनी साधारण भेटके साथ अपने पाठकोंके सामने उपस्थित होते हैं।

जब विशेषांक निकालनेका विचार किया था तब दूसरे भाद्रपदके पर्यूषणका एक महीना शेष था। इतने अल्प समयमें कोई भी विशेषांकको उत्तम नहीं बना सकता। ब्लाकोंका बनवाना, लेखोंका लिखवाना और अंकका छपवाना आदि सब एक ही महीनेमें करना पड़ा है। इतनी शीघ्रताके कारण हम जैसा अच्छा विशेषांक निकालना चाहते थे वैसा नहीं निकाल सके। फिर भी विशेषांकको उत्तम बनानेमें कोई कसर नहीं रक्खी गई।

अंकके निकलनेमें पन्द्रह बीस दिनकी देरी हो गई। क्योंकि समय थोड़ा था और काम बहुत, तिस पर भी अंक सूरत छपता था। शायद इस समय भी वह अंक पाठकोंके हाथमें न पहुँचता, यदि दिन रातके परिश्रमसे कार्य नहीं किया जाता। इस अंकमें शीघ्रता और दूर छपनेके कारण अशुद्धियें भी रह गई हैं, पर इन सब त्रुटियोंके लिए हम क्षमा माँगनेके लिए तैयार नहीं हैं, क्योंकि हमने अपने प्रयत्नोंमें किसी प्रकारकी कसर नहीं रक्खी।

इस वर्ष हम लेखोंके विषयमें कुछ भी नहीं कहना चाहते। वे अपनी बातोंके स्वयं ही परिचायक हैं और पाठक स्वयं ही उनसे परिचय प्राप्त करें।

जिन मित्रोंने अपनी लेखनीसे हमारी सहायता की है और जिन्होंने अन्य प्रकारसे हमें इस भारको उठानेके लिए उत्साहित किया है, मुनि-पाठकोंके धन्यवादके पात्र हैं। हम भी उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रगट करते हैं। 'दिगंबरजैन' के संपादक श्रीयुत् मूलचंद किसनदासजी कापड़ीयाका हम आभार मानते हैं कि जिन्होंने इस विशेषांकके लिये सेठ माणेकचंदजी, संसारवृक्ष, कल्पतरुसिंचन और पं. अर्जुनलालजी सेठी के ब्लोक देकर हमें सहायता पहुंचाई। अंतमें अपने सहयोगियोंको, जिन्होंने 'मुनि'के विशेषांककी सूचना निकालकर कृपा दिखाई है धन्यवाद देते हैं। "जैन विजय" प्रेसके मालिक और कर्मचारी भी धन्यवादके पात्र हैं जिन्होंने अपनी भरसक शीघ्रतासे इसका कार्य किया।

अवकाश न होनेके कारण "भेदभाव कहाँ हैं," "मुनिसुधारकी प्रथम आवश्यकता" और "उपदेश पद्धति" शीर्षक लेख प्रकाशकने हमें विना दिखाये सीधे प्रेसको भेज दिये थे अतएव पाठकोंको उनकी त्रुटियोंपर ध्यान न देना चाहिये।

विनीत—**सम्पादक।**

विषय सूची।

चित्रोंकी सूची ।

मुनि



श्रीमान शेठ राजमलजी-जामनेर निवासी

सभापति, प्रबंधकारिणी कमेटी, महावीर मुनिमंडल।

जैनविजय प्रेस-सूरत।





महावीर मुनिमण्डलसे प्रचारित ।

वाह्याचारपराश्च बोधरहित इच्छाख्ययोगोद्धता: ।
ये केऽपि प्रतिसेवनाविधुरितास्ते निन्दिता शासने ! ॥
ये तु स्वच्छमतुच्छ—वाङ्मयकलाकौशल्यमाबिभ्रति ।
सार्वोक्तामृतपानसादरधियस्तेभ्यो मुनिभ्यो नमः ॥

वर्ष २ } भाद्रपद वीर नि० सं० २४४३, } अंक २

परमात्माके चरणोंमें प्रार्थना ।

(प्रार्थी–मुनि परमानन्द जैन ।)

प्रभो, जैन शासनको उन्नत बनाइए । देव, जैनोंका हृदय ज्ञानसे परिपूर्ण कीजिये । नाथ, जैनियोंकी अंधश्रद्धा–अंधविश्वास दूर भगाइये । दयामय ! जैनसमाजको कलंकित करनेवाली कुरीतियोंका काला मुँह कीजिये । विभो, शासनके चालक स्वयं सेवकों (मुनियों और श्रावकों) को अपने कर्त्तव्योंका ज्ञान कराइये । दयासागर, हम कुछ समयसे कर्त्तव्यच्युत बन गये हैं, इसलिए हमें फिर कर्त्तव्यनिष्ठ बनाइए । स्वामिन्, आजकल समाजमें अत्यन्त अन्याय, अत्याचार, मिथ्यात्व, सांप्रदायिक ममत्व और क्लेश आदि फैला हुआ है, इसे शीघ्र दूर कीजिये । अनंतशक्तिमान्, हम आपकी सन्तान हो कर परस्पर लड़ रहे हैं–कट रहे हैं, एक एकको झूठा सिद्ध करनेका प्रयत्न कर रहे हैं, लोगोंको तमाशा दिखा रहे हैं । हम ईर्षा, द्वेष, दंभ, छलकपटसे भरे पड़े हैं, अतः इसका प्रतीकार कीजिये अन्यथा हम डूब जायँगे । त्रिभुवनपति, बहुत विलम्ब हुआ, अब विलम्ब न कीजिये और शीघ्र हमारा उद्धार करिये–हमारी ओर दयाकी दृष्टिसे देखिये । कृपा-सिन्धु, हमें

ज्ञानवान् बनाइए और उस ज्ञानसे हम संघसेवाके काममें दृढ़ श्रद्धा और दृढ़ संकल्प पूर्वक लग जायँ ऐसी सन्मति दीजिए। हे शासन नायकदेव! साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका इन चारों अंगोंसे बने हुए जैनशासनकी बाह्य और आन्तरिक उन्नतिके महान् श्रेष्ठ और आनंदमय कर्त्तव्यमें अपना जीवन-अपना सर्वस्व होम देनेको हम सदा तत्पर रहें, ऐसी बुद्धि प्रदान कीजिये।

पर्यूषणपर्व,

अथवा

पवित्र जीवनका परिचय।

(लेखक-श्रीयुत नाथूरामजी प्रेमी)

जो धर्म हमें उच्च बाननेकी शिक्षा देता है, वही धर्म मुझे मान्य है। जो धर्म और उसकी क्रियायें तथा भावनायें हमें उन्नतिसे रोकती हैं, वह धर्म और वे क्रियायें तथा भावनायें मुझे मान्य नहीं। जो धर्म जीवनको उच्च बनानेमें, अपनी उन्नतिमें सहायता पहुँचानेमें, परोपकारमय जीवन बितानेमें और आत्मोन्नति, समाजोन्नति तथा राष्ट्रोन्नतिमें सहायक हो वही धर्म मुझे मान्य है और प्रत्येक विचारशील पुरुषको मान्य होना चाहिए। जो धर्मकी भावनायें आधिव्याधिके समुद्रसे तैरनेमें सहायक होती हों और जो संसारके प्रति कर्तव्य बताती हों, वे ही मुझे मान्य हैं। जो क्रियायें और भावनायें इसके प्रतिकूल हैं, वे मुझे-इस बीसवीं शताब्दिके कलहके बीच रहनेवालोंके लिए मान्य नहीं। यही क्यों, इसके प्रतिकूल क्रियाओं और भावनाओंके माननेकी आज्ञा चाहे कैसा ही प्रतिष्ठित विद्वान दे, पर मुझे वे मान्य नहीं, न मैं किसी बातको ईश्वरकी आज्ञा मानकर ही मान सकता

हूँ, जबतक वह आज्ञा, वह उपदेश, सत्यकी कसौटीपर न कसा जाय।

आज पर्यूषण पर्व है। अतएव पर्यूषण पर्वको स्वीकार करनेके पहले यह जान लेना परम आवश्यक है कि वह क्या है और क्यों माना जाना चाहिए? इसके लिए इसका स्वरूप समझ लेना चाहिए और उपयोगिता भी जान लेनी चाहिए।

पर्यूषण अथवा पर्यूपासना, अर्थात् अपने भीतर त्रिगढ़ रूपी ओटमें विराजे हुए आत्मदेवकी उपासना, आत्मावरमण, आत्मास्थिरता, आत्मैकता, मन वचन कायके योगोंका आत्माभिमुखीकरण और विशेष स्पष्ट शब्दोंमें कहना हो तो आत्मिक जीवन, दैवी जीवन अथवा पवित्र जीवन।

यद्यपि आत्माके लिए आत्मिक जीवनमें जीना सहज अथवा स्वाभाविक ही है और इसलिए यह बहुत ही सुगम कार्य है, तथापि आत्माने अपनी ही इच्छासे जो जो शरीर बांधे हैं वे सब अपने स्वभावके अनुकूल रात-दिन प्रवर्तित होते रहते हैं, इस कारण उनके भीतर निवास करनेवाले आत्माको, उनके गाढ़ सहवासके कारण उनका स्वभाव ही जान पड़ता है, इससे स्वस्वभावका स्मरण नहीं रहता।

जिस तरह गणिकाके सहवासमें रहनेवाले पुरुषको शायद ही कभी अपनी पत्नीका स्मरण होता है, उसी तरह आत्माको भी औदारिक, तेजस और कार्माण इन तीन शरीरोंके निरन्तर सहवासके कारण स्वस्वभावका स्मरण शायद ही कभी होता है और वह भी प्रयत्न करनेसे होता है।

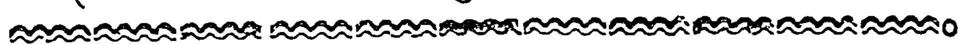
इस परसे तीन सिद्धान्त फलित होते हैं—१ स्वभाव अथवा स्वस्वभावमें रमण करना मनुष्यके लिए स्वाभाविक है, अशक्य नहीं। २. परन्तु मनुष्य प्रायः विभावमें अथवा जड़भावमें ही मग्न रहता है—

परप्रदेशमें ही और स्वभावविरुद्ध वातावरणमें ही सारा जीवन अथवा जीवनका अधिक भाग व्यतीत करता है। ३. और स्वभावविरुद्ध वातावरणमें रहनेके कारण उसे स्वभावतः ही दुःखानुभव करना पड़ता है, जिस तरह कि हवामें स्वेच्छाविहार करनेवाले किसी पक्षीको यदि मछलियोंके साथ सरोवरमें रहना पड़े तो उसे दुःख ही होगा। यद्यपि यहां जिस प्रकार मछली या पानी स्वयं 'दुःख' नहीं है—वास्तवमें दुःख कोई पदार्थ ही नहीं है—स्वभावविरुद्ध वर्ताव करनेसे जिन परिणामोंका अनुभव होता है उन्हें ही दुःख कहते हैं—उसी प्रकार शरीरों अथवा सृष्टिके पदार्थोंके किसी भागविशेषमें कोई 'दुःख' नामकी चीज़ भरकर नहीं दी गई है कि जिससे उसका संग करनेवालेको दुःख चिपक जाता हो; तथापि जब अमर्यादित स्वभाव-वाला आत्मा इन मर्यादित स्वभाववाले शरीरों या पदार्थोंमें निवास करने लगता है तब उस स्वभावविरुद्ध कार्यसे स्वभावतः ही कुछ अप्रिय अनुभव होता है और उसे ही हमने 'दुःख' संज्ञा दे रक्खी है। वास्तवमें दुःख सुख ये सब कल्पनायें हैं, विना अस्तित्वके कोरे नाम मात्र हैं। अतएव दुःखके दूर करनेका केवल एक ही मार्ग हो सकता है कि विभावसे मुक्त होने और स्वभावमें रक्त होनेके लिए जितना बन सके उतना उद्योग करना।

अमुक स्थलमें वैठेंगे तभी विभाव--विरक्तता होगी, अमुक जातिके वस्त्र पहरेंगे, तभी स्वभावका स्मरण होगा, अमुक मंत्र या पाठका जाप करेंगे, तभी स्वभावकी रमणता होगी, अमुक प्रकारकी क्रिया करेंगे तभी, आत्मलीनता होगी—इस तरहका न कोई नियम है और न हो सकता है। क्योंकि स्थल, वस्त्र, पाठ, क्रिया ये सब स्वयं भी विभाव हैं—जड़ हैं। जो पन्थ या सम्प्रदाय सबसे श्रेष्ट होनेका दावा करता हो उसीकी आज्ञाके अनुसार वस्त्र पहने जायँ, उसीकी बतलाई

हुई उग्र तपश्चर्या की जाय और उसीके पवित्र शास्त्र जिह्वाग्र कर लिये जायँ, तोभी ऐसा हो सकता है कि विभाव वृत्ति न मिटे और स्वभावलीनता न हो। क्योंकि, साधनोंमें स्वयं कोई शक्ति नहीं है—वे आत्माभिमुखीकरणके निमित्त मात्र हैं। यह सच है कि साधन किसी अच्छे आशयसे बतलाये जाते हैं; परन्तु वे जड़ शरीरके लिए नहीं किन्तु आत्माके लिए हैं, और उनका उपयोग आत्माभिमुख वृत्तिसे जितने परिमाणमें किया जायगा उतने ही परिमाणमें उनसे आत्मस्मरण और आत्मस्थैर्यका होना संभव है।

ऊपर जो तीन सादे सिद्धान्त बतलाये गये हैं वे सादे होने पर भी बहुत गहन हैं, बारबार विचार करने योग्य हैं और हृदयपटपर लिख रखने योग्य हैं। स्वभावमें रमण करना मनुष्यके लिए यद्यपि चिरकालीन विभावपरिचयके कारण कठिन है, परन्तु अशक्य नहीं है—बल्कि स्वभावरमणता, धार्मिक जीवन, पवित्र जीवन या दैवी जीवनको हमने जितना समझ रक्खा है उतना कठिन भी नहीं है। एक काम अभ्यास, आदत या टेवके विना अतिशय कठिन जान पड़ता है, परन्तु वह काम कठिन नहीं होता; उसका अभ्यास डालना या उसे अपनी आदत बना लेना ही कठिन होता है। आदत या टेव पड़ी कि वह काम सुगम और स्वाभाविक हो जाता है। पानीमें डुबकी लगाना बहुत ही कठिन काम है, परन्तु आदत पड़ जानेसे वही एक मामूली बात हो जाती है। इसी तरह आत्माकी उपासना, आत्मरमणता या धार्मिक जीवनका भी सारा दारोमदार टेव या आदतपर है। शराब पीनेवाले कहते हैं कि क्लेरेट नामकी शराबका प्याला जब सबसे पहले वे अपने मुँहके पास ले जाते हैं, तब ऐसा मालूम हुआ कि कै हुई जाती है, परन्तु पीछे अभ्यास पड़ जानेपर उन्हें इस शराबके आगे और सब शराबोंका मजा तुच्छ



मालूम होने लगता है! योगी ज़नोंको शहरके कोलाहल और ठाटबाटके पास जाना भी पसन्द नहीं आता, पर जिस एकान्तवाससे हम लोग घबड़ाते हैं उसमें उन्हें निःसीम आनन्द आता है। एक निर्दोष मनुष्य बास्टाइलके किलेमें कैद कर दिया गया था। लम्बी सज़ाकी अवधि बीत जानेपर जब वह जेलखानेकी अँधेरी कोठरीमेंसे बाहर निकाला गया, तब उसने यह प्रार्थना की थी कि मुझे उसी अँधेरी कोठरीमें अपना शेष जीवन व्यतीत करनेकी आज्ञा दी जाय! वर्षोंके अभ्यासके कारण, आदत पड़ जानेके कारण, वह स्थान ही उसे सुखरूप भासने लगा था और उसे छोड़कर प्रकाशमें आनेसे उसे दुःख होता था। डा० एटरबरी नामका विद्वान कहता है कि "पहले मुझे दफ्तरके और हिसाबकी जाँच करनेके काममें जरा भी अच्छा न मालूम होता था—मेरी तबियत ऊब जाती थी, परन्तु अब लगातार इसी काममें लगे रहनेसे मुझे इसमें बड़ा आनन्द आता है।" इन सब दृष्टान्तोंसे लार्ड बेकनके ये वाक्य सर्वथा सत्य मालूम होते हैं कि "जो चीज़ हमें पहले बुरी और कठिन मालूम होती है वही चीज़, जब हमारे अभ्यासमें आ जाती है—आदतमें दाखिल हो जाती है, तब इतनी आनन्ददायक, स्वाभाविक और सुगम हो जाती है कि उतनी और कोई चीज़ नहीं होती!" मनुष्यस्वभावकी रचनाका यह रहस्य—यह छुपी हुई कल जान लेनेसे मनुष्यको एक प्रकारका आश्वासन मिलता है। वह इस विश्वासको दूर कर सकता है कि धर्ममय या पवित्र जीवन बहुत कठिन है और आदत डालनेका प्रयत्न करने लगता है। जगत्के अकारणबन्धु तीर्थंकरोंने भी इस आदतके डालनेके लिए ही पर्यूषणपर्वकी योजना की है। पर्यूषणपर्वको पर्युपासनाका परिचय करानेवाला, आत्मिक जीवनकी टेव डालनेवाला, एक पाठ—एक अभ्यास पाठ (Exercise) समझना चाहिए।

मेरी समझमें, विभावके वातावरणमें ३६५ दिन फिरनेवाले या अस्वाभाविक जीवन व्यतीत करनेवाले मनुष्यको केवल आठ या दश+ दिनोंमें स्वाभाविक जीवनका परिचय करानेके लिए—आन्तर्जीवनका अभ्यास अथवा टेव डालनेके लिए ही पर्यूषणपर्वकी योजना की गई है। इन आठ या दश दिनोंमें जिस प्रकारका जीवन व्यतीत किया जाता है, उसी प्रकारका जीवन व्यतीत करनेकी टेव हमेशके लिए पड़ जाय तो मनुष्य कृतकृत्य हो जाय।

यहाँ इस प्रश्नका खुलासा करनेकी आवश्यकता है कि पर्यूषण-पर्वके लिये भाद्रपदका महीना ही क्यों नियत किया गया ? यह समय किसी ऐतिहासिक घटनाके स्मरणार्थ नहीं चुना गया है, अर्थात् न तो इन दिनोंमें पहले किसी महान् पुरुषका कोई कल्याणक हुआ है और न कोई विशेष स्मरणीय धार्मिक घटना हुई है। अतः मेरी समझमें तो इस चुनावका या पसन्दगीका कारण नैसर्गिक सौन्दर्य है। अर्थात् इस समय प्रकृतिके सारे पदार्थ आर्द्रता, नवीनता, सौन्दर्य और शक्ति प्राप्त करते हुए जान पड़ते हैं। सारा जगत् हँसता—खिलता—विकसता हुआ मालूम होता है। ये सब संयोग आत्मविकासके विचारोंके लिए बहुत ही अनुकूल हैं और इसलिए संभव है कि पर्युपासना, आत्मरमणता या दैवीजीवनका परिचय करानेके कार्यके लिए यह समय पसन्द किया गया हो। लोगोंको किस प्रकारके जीवनका अभ्यास डालनेके लिए पर्यूषणपर्वकी योजना की गई है। यदि हम कहें कि दैवीजीवनका तो प्रश्न होता है कि क्या दैवीजीवन मानवीय जीवनसे भिन्न है ? नहीं, जिस भांति एक मनुष्य रूपी जीवन होता है उसी तरह उसके मृत्युके बादकी

+ श्वेताम्बरोंमे पर्यूषणपर्व आठ दिनका होता है और दिगम्बरोंमें दश दिनका।

स्थितिमें भी जीवन होता है। यह बात दूसरी है कि दोनोंमें स्थूल शरीरके सद्भाव और अभावका भेद हो। जिस प्रकार मनुष्यकी इच्छायें, विचार, भावनायें, परिणाम आदि बातें मनुष्यजीवनमें होती हैं उसी तरह मृत्युके बादकी स्थितिमें भी रहती हैं। प्रकृति किसी आकस्मिक परिवर्त्तन सहन नहीं कर सकती है। जो मनुष्य मानवी जीवनमें संकीर्ण हृदय है, वह बदलकर दैवी जीवनमें विशाल हृदयका कैसा हो जायगा। इसी तरह जो मनुष्यकी अवस्थामें शोकातुर उदास और आनंदरहित है वह मृत्युके बाद एकाएक छलांग मारकर कैसे आनंदजनक स्थितिमें पहुंच जायगा। प्रकृतिके कार्योंमें एकाएक बड़ा भारी परिवर्त्तन होना संभव नहीं। इसलिए आनंदकी भावना भाओ, आनंदके अनुभव करनेका अभ्यास करो और संकटकी परस्थितियोंमें भी आनंदानुभव करना सीखो। ऐसा करनेसे तुम्हें टेव पड़ जायगी और यह टेव बड़ी बलवती होती जायगी और अन्तमें तुम अखंड आनंदरूपकी स्थितिमें पहुंच जाओगे। आत्मिक बलको बढ़ानेके ही आशयसे इस पर्वकी योजना की गई है। आकाशमें कोई ऐसा राजा नहीं बैठा है जो तुम्हारे स्तोत्रोंकी खुशामदोंसे स्वर्ग अथवा मोक्ष दे देता हो। तब जब कोई देनेवाला ही नहीं तब यही मानना युक्तियुक्त है कि जन्ममें जैसी इच्छायें, विचार और भावनायें होती हैं वैसा ही उन्हें नया स्वरूप प्राप्त होता है। देव स्थूल, (औदारिक) देहके बंधनसे रहित एक प्रकारके मनुष्य ही हैं। इसलिए दैवी जीवनके अर्थ उच्च मानव जीवन ही कहना चाहिए।

भगवान् महावीरके कथनानुसार उच्च मानव जीवनके यथा दान, शील, तप और भावना ये चार अंग हैं। उत्तम क्षमादि धर्म भी इनमें गर्भित हैं। इन चार अंगोंसे उच्च मानव जीवन प्राप्त होता है, इसलिए इन्हीं अंगोंकी कसरतके लिए पर्यूषणकी योजना की गई है।

भेदभाव कहाँ है ?

केवल कल्पनामें, नहीं कि श्वेतांबरों या दिगंबरोंके शास्त्रोंमें ।

(ले० 'प्रेम' संपादक, जैन संसार, बम्बई ।)

'दिगंवर' और 'श्वेतांवर' ये दोनों शब्द विशेषण हैं, और 'जैन' नामके ऊपर लगाये गये हैं । ये शब्द स्पष्टतया वता रहे हैं कि, एक समय ऐसा भी था जव सारे जैन एक रूप थे । उस समय भगवान महावीरके सव अनुयायियोंके लिये 'जैन' ऐसा एक शब्द ही काममें आता था; परन्तु प्रकृति, शक्ति, बुद्धि और आवश्यकता आदिकी भिन्नताने एकके अनेक रूप वना दिये ।

श्वेतांवर शब्दका अर्थ होता है सफ़ेद वस्त्र, अथवा सफ़ेद वस्त्रवाला; और दिगंवर शब्दका अर्थ है दिशाएँ ही है वस्त्र; जिसका अर्थ वस्त्र रहित–नग्न–मादरज़ाद ।

शास्त्रोंका मनन करनेसे मालूम होता है, कि जिस समय जैनियोंमें फ़िरक़ावंदी नहीं हुई थी उस समय भी कुछ साधु कमसे कम श्वेत वस्त्र धारण करते थे, और कई समर्थ–उच्चाधिकारी–साधु एक भी वस्त्र धारण किये विना अपना जीवन निर्वाह करते थे यानी 'नग्न' रहते थे । * ये भेद भिन्न भिन्न मान्यताओं–फिरक़ावंदियों–के कारणसे नहीं थे । इनका कारण **शक्तियोंकी विभिन्नता** था । अर्थात् **एक ही प्रकारकी मान्यता होनेपर भी अपनी अपनी सहनशक्तिके अनुसार हरेक उक्त मार्गोंका अवलंव करता था ।**

उस समय नग्न रहनेवाले मुनि वस्त्र धारि मुनियोंको कभी 'संशय मिथ्यात्वी' या 'वीतरागकी आज्ञाके विरुद्ध चलनेवाले कुसाधु नहीं समझते थे और न उनसे घृणा करते थे । विपरित इसके वे इन्हें उन्नतिक्रमके सोपान-पर चढ़नेवाले अपने छोटे भाई समझते थे । वस्त्रधारी मुनि नग्न रहनेवाले मुनियोंको भक्तिकी दृष्टिसे देखते थे; उनके प्रति पूज्यभाव रखते थे और उन्हें अपने वड़े भाई समझते थे ।

---

* शास्त्रकारोंने वस्त्र धारण करनेवालोंका नाम **स्थविरकल्पी** और नग्न रहनेवालोंका नाम **जिनकल्पी** वताया है (अनुवादक)

अभिप्राय यह हैं, कि मुक्ति प्राप्तिके साधन 'त्याग' की दो स्थितियाँ थीं। प्रथम कमसे कम वस्त्र—जो मूर्च्छा—इच्छा—वासनाएं-उत्पन्न न कर सके ऐसे—रखकर, अपने ध्येयकी प्राप्तिमें लगे रहनेवालोंकी और दूसरी वस्त्रोंकी भी परवाह न कर अपने ध्येयमें लगे रहनेवालोंकी। इन्हीं दो स्थितियोंसे 'श्वेतांवर जैन' और 'दिगंवर जैन' ऐसे दो नामोंका जन्म हुआ। उक्त कथनसे स्पष्ट-तया विदित हो जाता है, कि इन दोनोंमेंसे न कोई नया है और न कोई पुराना ही है; इसी तरह कोई झूठा भी नहीं है। दोनो अनादि हैं समका-लीन हैं और सत्य हैं।

उक्त कथनके प्रमाणमें अब हम दोनों आम्नायोंके प्रामाणिक शास्त्रोंके वाक्य यहां उद्धृत करेंगे।

श्वेतांबर जैन मानते हैं, कि भगवान महावीरके गणधर **श्रीसुधर्म** स्वामीने लोगोंके हितार्थ द्वादशांगी वाणीका कथन किया हैं। उसमेंसे प्रथमांगमें **आचारांग** सूत्र है। इसमें साधुओंको उपदेश देते हुए लिखा है:-

"जे भिक्खू तिवत्थेहिं, परिवुसिते पाय च उत्थेहिं तस्सणं णो एवं भवति, चउत्थं वत्थं जाइस्सामि से अहेसणिज्जाइं, वत्थाइं जाणज्जा अहा परिग्गहियाइं वत्थाइं धारेज्जा नो धोविज्जा नो रएज्जा नो धोत्तरत्ताइं वत्थाइं धारेज्जा अपलिउंचमाणे गामंतरेसु ओमचेलए। एयंखु वत्थ धारिस्स सामग्गियं ॥

भावार्थ—जिनेश्वर देवके पद—चिन्होंका अनुसरण कर मोक्ष पानेवाले भिक्षुओं (साधुओं)मेंसे जिनके पास पात्र (पातरा) और तीन वस्त्र हों, उन्हें चौथे वस्त्रकी इच्छा नहीं करना चाहिए। यदि तीन वस्त्र नहीं हों तो नियमानुसार यानी दोष रहित (सूझते) वस्त्र मांग लाना चाहिए। वस्त्र (चाहे हलके मिलें या बढ़िया) जैसे मिलें वैसे ही काममें लाना चाहिए। वस्त्रोंको न धोना चाहिए और न रँगना ही चाहिए। अर्थात् धुये हुए या रँगे हुए वस्त्र कभी धारण नहीं करना चाहिए। वस्त्र ऐसे साधारण (मामूली कीमतके) रखना चाहिए कि जिनकी होशियारी न रखनी पड़े। यानी उनको सम्हाल करनेहीमें अपना समय न गँवाना पड़े। **यह आचार वस्त्रधारी मुनियोंका है।**

इस पाठमें 'यह आचार वस्त्रधारी मुनियोंका है' ऐसा जो उल्लेख किया

गया है यह उल्लेख हमें स्पष्ट बता रहा है कि उस समयमें वस्त्ररहित–नग्न मुनि भी थे।

और भी लिखा है:—

"अदुवाएगसाडे अदुवा अचेले लाघवियं आगममाणे"

भावार्थ यह है कि जैसे जैसे वस्त्रधारी मुनियोंमें भी संकट सहन करनेकी शक्ति बढ़ती जाय वैसे वैसे उन्हें तीन वस्त्रोंमेंसे दोको छोड़ केवल एकसे ही काम चलाना चाहिए अथवा तीनोंका परित्याग कर देना चाहिए यानी सर्वथा **अचेल**–वस्त्ररहित–नग्न स्थितिमें रहना चाहिए।

यह पाठ-जोकि श्वेतांबरोंके माने हुए शास्त्रका है–हमें स्पष्ट बता रहा है, कि सर्वथा परिग्रह रहित–वस्त्रहीन—दिगम्बर–स्थिति ही सर्वोत्कृष्ट स्थिति है, और इस स्थितिको प्राप्त करनेकी प्रत्येक वस्त्रधारी (श्वेतांबर) को कोशिश करना चाहिए। वस्त्रधारी साधु भी पहिले इसे मानते थे।

फिर **"कडिबंधणं धारित्तए"** वाक्य बताता है, कि पहिले समयमें केवल कमरपर वस्त्र बांधनेवाले साधु भी थे। * अर्थात् लोकलज्जामात्रकी गरज रखकर कमरपर चोलपट्टा पहिन, विचरण करनेवाले साधु भी थे। अभिप्राय यह है कि जिस तरह बाह्य जगत और शीत, उष्णतादिकी कुछ भी परवाह न करनेवाले नग्न साधु पहिले थे; उसी तरह शीत उष्णतादिको सहजानेवाले; परन्तु लोक लज्जाके हेतु वस्त्र धारण करनेवाले कुछ उतरते दर्जेके केवल चोलपट्टा ही रखनेवाले साधु भी थे। इतना ही नहीं इससे उतरते दर्जेके जो शीतादि कुछ अंशोंतक ही जीत सकते थे–साधारण तीन कपड़े रखनेवाले–श्वेतांबर साधु भी थे।

सबसे उच्च दशा स्वयं श्वेतांबर शास्त्रोंने भी वस्त्ररहित नग्न-मुनिकी ही मानी है। **"अदुवा तत्थ परक्कमंतं भुज्जो अचेलं"** (इस तरह अर्थात् **"लज्जा परिसहे जियमाणे"** जो लज्जा परिसह जीत सकता है उसको '**अचेल**' यानी वस्त्र रहित-दिगंबर-रहना चाहिए।)

वर्तमानके श्वेतांबर जैन ऐसा भी मानते हैं कि स्वयं **श्रवण भगवन् महावीर** भी **दिगंबर** वस्त्र रहित विचरण करते थे। सूत्रकार कहते हैं कि:

---

* दिगंबर आम्नायवाले केवल कमरपर वस्त्र–यानी लंगोट ही बांधनेवालेको ग्यारहवीं प्रतिमाधारी ऐलक कहते हैं। (अनुवादक)

संवच्छरं साहियं मासं जं ण रिक्कासी वत्थगं भगवं। अचेलए ततो जाई तं वो सज्जावत्थमणगारे। भावार्थ--भगवान **महावीर**ने दीक्षा लेनेके बाद लगभग एक वर्ष और एक मास पर्यंत केवल एक देवदुष्य वस्त्र ही कंधेपर रक्खा और उसके बाद इसका भी परित्याग कर वे 'अणगार' हो गये थे।

शायद कोई कहेगा कि भगवानके समान उच्च पुरुषोंका उदाहरण लेना, अपने समान लोगोंके लिए उचित नहीं है। **आजकल नग्न रहना असंभव है** इस शंकाके समाधानमें बहुत कुछ कहा जा सकता है। प्रथम तो आचारांग सूत्रमें महावीर चरित्रके अन्तमें स्पष्ट लिखा है कि:—

"एस विंही अणुक्कंते माह णेण मतीमता। बहुसो अपडिन्नेणं भगवया एवं रियंति-त्तिबेमि॥ अर्थात्—इन सारी बातोंको भगवान महावीर अपने आचरणमें लाये हैं, इन्हींके अनुसार **अन्य मुनियोंको भी आचरण करना चाहिए।** इसमें भविष्यके जाननेवाले शास्त्रकारोंने दूसरे मुनिको भी भगवानका अनुकरण करनेकी आज्ञा दी है। इससे किसीको इन्कार नहीं होगा, कि इस कालके लोग पहिले कालके लोगोंसे बहुत निर्बल हैं; परन्तु सारे ही इतने निर्बल हो गये हैं कि कोई भी अब लोकलाज परिसहको नहीं जीत सकता हैं ऐसा कहने या माननेका हमको कोई हक नहीं है; क्योंकि आज भी 'जैन' और 'अजैन' दोनों तरहके नग्न साधु हमें दिखाई देते हैं। यह प्रत्यक्ष प्रमाण 'इस कालमें कोई नग्न नहीं रह सकता' इस शंकाका पूरा समाधान कर देता है। हाँ, जो अब तक इस उच्च वृत्तिके योग्य नहीं हुए हैं; जिनको यह स्थिति अनुकूल नहीं पड़ती है, वे भले खुशीके साथ **मानोपेत** वस्त्र धारण करें; परन्तु उनको भी यह बात तो हर समय ध्यानमें रखना चाहिए कि उन्हें शनैः २ अपनी आत्म-शक्तिका विकास कर अन्तको एक दिन उच्च नग्न और एकविहारीकी पदवीको प्राप्त करना है—जिनकल्पी बनना है। इसके विपरीत इस इष्ट स्थितिका—दिगंबर दशाका—जो तिरस्कार करते हैं; इस स्थितिको जैनधर्मके विरुद्ध पाखण्ड मत बताते हैं, वे तो विचारे केवल बाल जीव हैं; दयाजनक स्थितिमें पड़े हुए अज्ञान तुच्छात्मा हैं।

अमुक वस्तु दुष्कर है इसलिए उसको अधर्म ठहरानेकी कोशिश करना केवल अज्ञानीका काम है। श्वेतांबर शास्त्रकारोंने श्वेतांबरपनके नियम भी ऐसे

कठोर बनाये हैं, कि जो प्रबल आत्मार्थियोंके सिवा अन्य कभी नहीं पाल सकता है। (और यही कारण है, कि आज साधुओंकी संख्या कालका बहाना बनी स्वच्छतासे विचरण करती हुई नज़र आती है,) कठिनतर और कठिनतम नियम केवल कुछ अधिकार प्राप्त व्यक्तियोंके लिए ही निर्मित होते हैं और उनके निर्माणका हेतु, अधिकारी व्यक्तियोंको विशेष योग्य बनानेका-उन्हें शिक्षा देकर कठोर सहनशील बनानेका होता है। इस कथनके प्रमाणमें श्वेतांबर शास्त्रोंका यह आज्ञावाक्य बताया जा सकता है।

"जे णिग्गंथे तरुणे जुगवं बलवं अप्पायंके थिर संघयणे से एगं वत्थं धारेज्जा णो वितियं॥

अर्थात्-जो मुनि तरुण हो, जवान हो, नीरोगी हो, दृढ़ शरीरवाला हो उसको एक ही वस्त्र धारण करना चाहिए दूसरा नहीं।"

तीन वस्त्र रखनेवालों और एक वस्त्र रखनेवालों, दोनों प्रकारके साधुओंको वस्त्रोंके रंगनेकी तथा धोनेकी मनाई है। इसमें भी शास्त्रकारोंका उच्च आशय छिपा हुआ है। शास्त्रकारोंको रंगके साथ कोई द्वेष नहीं था; परन्तु उनका अभिप्राय था कि नीचे दर्जेके जीव-साधु-कहीं रंग, झगमगाहट, चित्रकला आदिके प्रभावमें पड़कर आत्मभावनाकी वृद्धिके प्रयत्नमें शिथिल न पड़जायँ। यानी साधुओंको बाह्य आकर्षणोंसे बचानेके लिए इस आज्ञाका निर्माण हुआ था; साधुवृत्तिवालेको वस्त्र मैला है या उजला इस बातकी चिन्ता-विचार नहीं हो यह सोचकर ही शास्त्रकारोंने ऐसी आज्ञा दी थी। प्राप्त वस्त्रको जान बूझकर मलिन कर लेना; जर्जरित करलेना और फिर उस वस्त्रको काममें लाना, ऐसा शास्त्रकारोंका आशय नहीं है। आजकल कई भोले लोग वास्तविक साधुत्वकी पहिचान मैलापन समझते हैं। परन्तु यह उनकी भूल है। गृहस्थावस्थामें जो मनुष्य रंगरेजका, आटादाल बेचनेका अथवा खेतीका रोजगार करता था, अथवा स्वच्छता—सम्पर्कसे दूर रहनेवाले समाजमें रहता था; और अब वह साधु बनकर विशेष मलिन रहता है तो उससे यह नहीं समझना चाहिए कि उसने विशेष इन्द्रिय-निग्रह कर लिया है, अपने मनको जीत लिया है। सुघड समाजमें रहा हुआ मनुष्य साधु बनकर जब मलिनता, दुर्गंध अथवा कुरूपकी भावना (Concepts) का उल्लंघन कर लापरवाह (Indifferent) और मस्त बन जाय तब समझना चाहिए कि उन्नति क्रममें वह आगे बढ़ा है। द्वादशांगीके-जिसमें कोई भी श्वेतांबर जैन शंका

नहीं कर सकता है–प्रथम श्रेणीके सूत्र आचारांगके कई उदाहरण-प्रमाण हम ऊपर दे चुके हैं। अब कुछ दूसरे सूत्रोंके भी प्रमाण देंगे जिनसे हमारे कथनकी विशेष पुष्टि होगी। श्री स्थानांग सूत्रमें लिखा है:—

पंच महव्वइए सपडिक्कमणे अचेल धम्मे पणंते

भावार्थ-साधुका पंच महाव्रत, प्रतिक्रमण और अचेलक वस्त्र रहित (और वस्त्र पहिनने हों उनके लिए जीर्ण प्रायः मानोपेत श्वेत वस्त्र सहित) धर्म कहा है।" इस सूत्रसे भी **अचेल** शब्दसे वस्त्र रहित नग्न रहना सिद्ध होता है।

श्री सूयगडांग–सूत्रकृतांग–सूत्रमें निर्देश किया गया है:—

"अप्पेगे वइ जुंजंति नागिणा पिडोल याहमा।
मुण्डा कंडू विणठंगा उज्झल्ला असमाहिता॥

भावार्थ--आत्मज्ञानी **वस्त्ररहित** तथा **स्नान रहित** मुनियोंको देखकर मूर्ख लोग कहते हैं "ये अटल, आत्म ध्यानी, नग्न, दिगंबर, परान्नकी आशा रखनेवाले, अधम, घृणाके पात्र........................ मल प्रस्वेद युक्त, सर्वकाल असमाधिमें रहनेवाले हैं। यानी देहकी परवाह न कर विचरण करनेवाले हैं।"

यह वचन साबित करता है, कि नग्न–दिगंबर वृत्तिधारी जो रूप रस और गंध आदिकी सीमाके वाहिर निकल गये हैं वे ही साधु हैं। शायद कोई शंका करेगा कि इस प्रकारके जीवन–व्यवहारसे तो कोई विशेष काल तक जीवित नहीं रह सकता है? इस शंकाका समाधान सूत्रकारोंने श्री सूयगडांग सूत्रमें इस तरह किया है–"**णो अभिकंखेज्ज जीविये**। अर्थात् मुनि अचेल परिसह, मेल परिसह, डंसमशक परिसह आदि परिसहोंको सहन करें पर जीवनकी आशा न रक्खें। जीनेकी आशाका परित्याग कर मृत्युकी परवाह न करनेवाले स्नानंदी साधु ही, सच्चे साधु कहलाते हैं।

श्री भगवतीजी सूत्रमें लिखा है:—

"नग्ग भावे जावत मट्ठे आरा हेत्ता जाव सव्वं दुक्खा पहीणे।

भावार्थ—नग्न भाव अर्थात् वस्त्र रहितपन–दिगंबरत्व–धारण करनेसे दुःख मात्र नष्ट हो जाते हैं। यानी दिगंबरत्वका अभ्यास करनेसे दुःख मात्रका असर मिट जाता है। (One is disciplined to the extent of being proof against good and bad emotions.)

श्वेतांबर शास्त्रानुसार साधुवृत्ति क्या चीज है ? इस आश्रमकी योजना क्यों की गई है ? और अधिकार भेदकी अपेक्षा अचेल और सचेल भेद कैसे हुए हैं इत्यादि बातोंका हमने विचार किया। अब हम दिगंबराचार्योंके रचित शास्त्रानुसार इस विषयका विचार करेंगे। दर्शन पाहुड सूत्रमें लिखा है:—

"एकं जिणस्सरूवं—वीयं उकिट्ठ सावयाणंतु।
अवरीट्टयाण तइयं चउथं पुणलिंग दंसणे णच्छ ॥

भावार्थ—जैन संप्रदायमें तीन तरहके वेश होते है। (१) दिगंबर जिन स्वरूप अथवा अचेल वेश, (२) उत्कृष्ट श्रावक वेश—ग्यारहवीं प्रतिमाधारी क्षुल्लक—(जिसे श्वेतांबर स्थविर कल्पि मुनि कहते हैं।) (३) आर्योंका वेश। इन तीनोंके सिवाय जैनधर्ममें और कोई चौथा मार्ग नहीं है।"

दूसरे शब्दोंमें कहें तो अधिकारके अनुसार तीन भेद श्वेतांबर और दिगंबर दोनों शास्त्रकारोंने बताये हैं; नाम मात्र दोनोंने अलग अलग रख दिये हैं। दिगंबर संप्रदायवाले 'मुनि' केवल उन्हीं व्यक्तियोंको कहते हैं जो सर्वोत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त कर लेते हैं। यानी जो सब तरहके कष्टोंका आनंदके साथ सहन कर नग्न-वस्त्र रहित-रह सकते है। श्वेतांबर सम्प्रदायवालोंने जिनका नाम जिनकल्पी साधु रक्खा है, और 'उत्कृष्ट श्रावक—क्षुल्लकके लिए श्वेतांबर संप्रदायमें 'स्थविर कल्पी साधु' रक्खा गया है। इस बातके प्रमाणमें दिगंबर आम्नायका निम्नलिखित श्लोक विचार करने योग्य है।

" दुहयं च वुत्त लिङ्गं उकिट्ठं अवर सावयाणं च।
भिक्खं भमेय पत्तो, संमिदि भासेण मोणेण ॥

भावार्थ—दूसरा उत्कृष्ट लिंग उन 'श्रावकों' गाँवमें रहने वाले श्रावकोंका है कि जो वस्तीमें फिर कर, पात्रमें, या हाथमें भोजन करते हैं, और भाषा समितिसे रहते हैं।"

दिगंबर आम्नायमें कई 'श्रावक' वस्त्र रखते हैं। ग्यारहवीं प्रतिमा-

नहीं कर सकता है–प्रथम श्रेणीके सूत्र आचारांगके कई उदाहरण-प्रमाण हम ऊपर दे चुके हैं। अब कुछ दूसरे सूत्रोंके भी प्रमाण देंगे जिनसे हमारे कथनकी विशेष पुष्टि होगी। श्री स्थानांग सूत्रमें लिखा है:—

पंच महव्वइए सपडिक्कमणे अचेल धम्मे पणंते

भावार्थ-साधुका पंच महाव्रत, प्रतिक्रमण और अचेलक वस्त्र रहित (और वस्त्र पहिनने हों उनके लिए जीर्ण प्राय: मानोपेत श्वेत वस्त्र सहित) धर्म कहा है।" इस सूत्रसे भी **अचेल** शब्दसे वस्त्र रहित नग्न रहना सिद्ध होता है।

श्री सूयगडांग-सूत्रकृतांग-सूत्रमें निर्देश किया गया है:—

" अप्पेगे वइ जुंजंति नगिणा पिंडोल याहमा ।
मुण्डा कंडू विणठंगा उज्झल्ला असमाहिता ॥

भावार्थ--आत्मज्ञानी **वस्त्ररहित** तथा **स्नान रहित** मुनियोंको देखकर मूर्ख लोग कहते हैं " ये अटल, आत्म ध्यानी, नग्न, दिगंबर, परान्नकी आशा रखनेवाले, अधम, घृणाके पात्र........................ मल प्रस्वेद युक्त, सर्वकाल असमाधिमें रहनेवाले हैं। यानी देहकी परवाह न कर विचरण करनेवाले हैं।"

यह वचन साबित करता है, कि नग्न–दिगंबर वृत्तिधारी जो रूप रस और गंध आदिकी सीमाके बाहिर निकल गये हैं वे ही साधु हैं। शायद कोई शंका करेगा कि इस प्रकारके जीवन–व्यवहारसे तो कोई विशेष काल तक जीवित नहीं रह सकता है? इस शंकाका समाधान सूत्रकारोंने श्री सूयगडांग सूत्रमें इस तरह किया है–"**णो अभिकंखेज्ज जीविये**। अर्थात् मुनि अचेल परिसह, मल परिसह, डंसमशक परिसह आदि परिसहोंको सहन करें पर जीवनकी आशा न रक्खें। जीनेकी आशाका परित्याग कर मृत्युकी परवाह न करनेवाले स्वानंदी साधु ही, सच्चे साधु कहलाते हैं।

श्री भगवतीजी सूत्रमें लिखा है:—

"नग्ग भावे जावत मट्टं आरा हेत्ता जाव सव्वं दुक्खा पहीणे।

भावार्थ—नग्न भाव अर्थात् वस्त्र रहितपन–दिगंबरत्व–धारण करनेसे दुःख मात्र नष्ट हो जाते हैं। यानी दिगंबरत्वका अभ्यास करनेसे दुःख मात्रका असर मिट जाता है। (One is disciplined to the extent of being proof against good and bad emotions.)

श्वेतांबर शास्त्रानुसार साधुवृत्ति क्या चीज है? इस आश्रमकी योजना क्यों की गई है? और अधिकार भेदकी अपेक्षा अचेल और सचेल भेद कैसे हुए हैं इत्यादि बातोंका हमने विचार किया। अब हम दिगंबराचार्योंके रचित शास्त्रानुसार इस विषयका विचार करेंगे। दर्शन पाहुड सूत्रमें लिखा है:–

"एक्कं जिणस्सरूवं–वीयं उकिट्ठ सावयाणंतु।
अवरीट्ठयाण तइयं चउथं पुणलिंग दंसणे णच्छ॥

भावार्थ–जैन संप्रदायमें तीन तरहके वेश होते है। (१) दिगंबर जिन स्वरूप अथवा अचेल वेश, (२) उत्कृष्ट श्रावक वेश–ग्यारहवीं प्रतिमाधारी क्षुल्लक–(जिसे श्वेतांबर **स्थविर कल्पि मुनि** कहते हैं।) (३) आर्योंका वेश। इन तीनोंके सिवाय जैनधर्ममें और कोई चौथा मार्ग नहीं है।"

दूसरे शब्दोंमें कहें तो अधिकारके अनुसार तीन भेद श्वेतांबर और दिगंबर दोनों शास्त्रकारोंने बताये हैं; नाम मात्र दोनोंने अलग अलग रख दिये हैं। दिगंबर संप्रदायवाले 'मुनि' केवल उन्हीं व्यक्तियोंको कहते हैं जो सर्वोत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त कर लेते हैं। यानी जो सब तरहके कष्टोंका आनंदके साथ सहन कर नग्न-वस्त्र रहित-रह सकते है। श्वेतांबर सम्प्रदायवालोंने जिनका नाम **जिनकल्पी साधु** रक्खा है, और 'उत्कृष्ट श्रावक–क्षुल्लकके लिए श्वेतांबर संप्रदायमें '**स्थविर कल्पी साधु**' रक्खा गया है। इस बातके प्रमाणमें दिगंबर आम्नायका निम्नलिखित श्लोक विचार करने योग्य है।

"दुइयं च वुत्त लिङ्गं उकिठं अवर सावयाणं च।
भिक्खं भमेय पत्तो, समिदि भासेण मोणेण॥

भावार्थ–दूसरा उत्कृष्ट लिंग उन 'श्रावकों' गाँवमें रहने वाले श्रावकोंका है कि जो वस्तीमें फिर कर पात्रमें, या हाथमें भोजन करते हैं, और भाषा समितिसे रहते हैं।"

दिगंबर आम्नायमें कई 'श्रावक' वस्त्र रखते हैं। ग्यारहवीं प्रतिमा-

धारी 'श्रावक' तो लगभग दिगंबर मुनियोंके समान ही होते हैं। जिनको हम श्वेतांबर स्थविरकल्पी मुनियोंकी कोटिके कह सकते हैं। जैसे श्वेताबरं आम्नायमें कहा गया है, कि **स्थविरकल्पी** हुए विना कोई **जिनकल्पी** नहीं बन सकती है। इसी तरह दिगंबर आम्नायमें ग्यारहवीं प्रतिमा धारी हुए विना कोई दिगंबर मुनि नहीं हो सकता है।

'लिंग' में मोह रखनेको दोनों मना करते हैं।"

आजकल प्रायः यह वायु चल रहा है कि श्वेतांबर लोग बताते हैं:—"श्वेतांबर लिंगवाले ही सच्चे जैनी और भगवानकी आज्ञाके पालक हो सकते हैं, दूसरे नहीं।" दिगंबर लोग कहते हैं:—"दिगंबर लिङ्गी ही सच्चे जैन और भगवानकी आज्ञाके पालक हो सकते हैं। दूसरे नहीं।" इस भूलभरी समझका समाधान करनेके लिए और हमारे कथनकी पुष्टिमें हम दोनों सम्प्रदायोंके मान्य ग्रन्थोंमेंसे यहाँ कुछ अवतरण देवेंगे। दिगंबर आम्नायके 'भाव पाहुड़' शास्त्रमें लिखा है—

"भाव रहिएणस उरिस अणाइकालं अणंत संसारे।
गहि उज्झयाओ बहुसो वाहिर णिग्गंथ रूवाई॥"

भावार्थ—हे पुरुष, अनादि अनंत संसार चक्रमें भावलिङ्ग रहित तू कईवार द्रव्यलिङ्गी—दिगंबर—मुनि बना; परन्तु उससे अवतक तुझे मोक्ष प्राप्त नहीं हुआ।" इस कथनसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि मुक्ति प्राप्त करनेके लिए—सिद्ध बननेके लिए—मुख्य **भावचारित्र**की आवश्यकता हैं। बाह्य लिंग अथवा वेश तो अधिकार सूचक चिन्ह मात्र है। यदि केवल नग्न रहनेसे मुक्ति प्राप्त हो जाती है तब तो, घोड़े, हाथी, बैल, कुत्ते आदिको सबसे पहिले मोक्ष मिलजाना चाहिए! और यदि सफेद कपड़े पहिननेहीसे मुक्ति मिल-जाती हो तो युरोपियन लेडियाँ ऊपरा ऊपरी सफेद ड्रेस डाटती हैं, उन्हें सबसे पहिले मोक्षका अधिकार मिलना चाहिए। इसीलिए श्वेतांबर शास्त्रका-रोंने कहा है, कि अनादि कालसे इतने ओघा और मुँहपत्ति रखते आये हैं कि यदि वे इकट्ठे किये जाय तो उनका मेरुके समान ढग लग जाय और दिगंबराचार्योंने भाव पाहुड़में साफ़ कहा है:—

"णग्गत्तणं अकज्जं भाव रहियं जिणेहि पण्णत्तं"

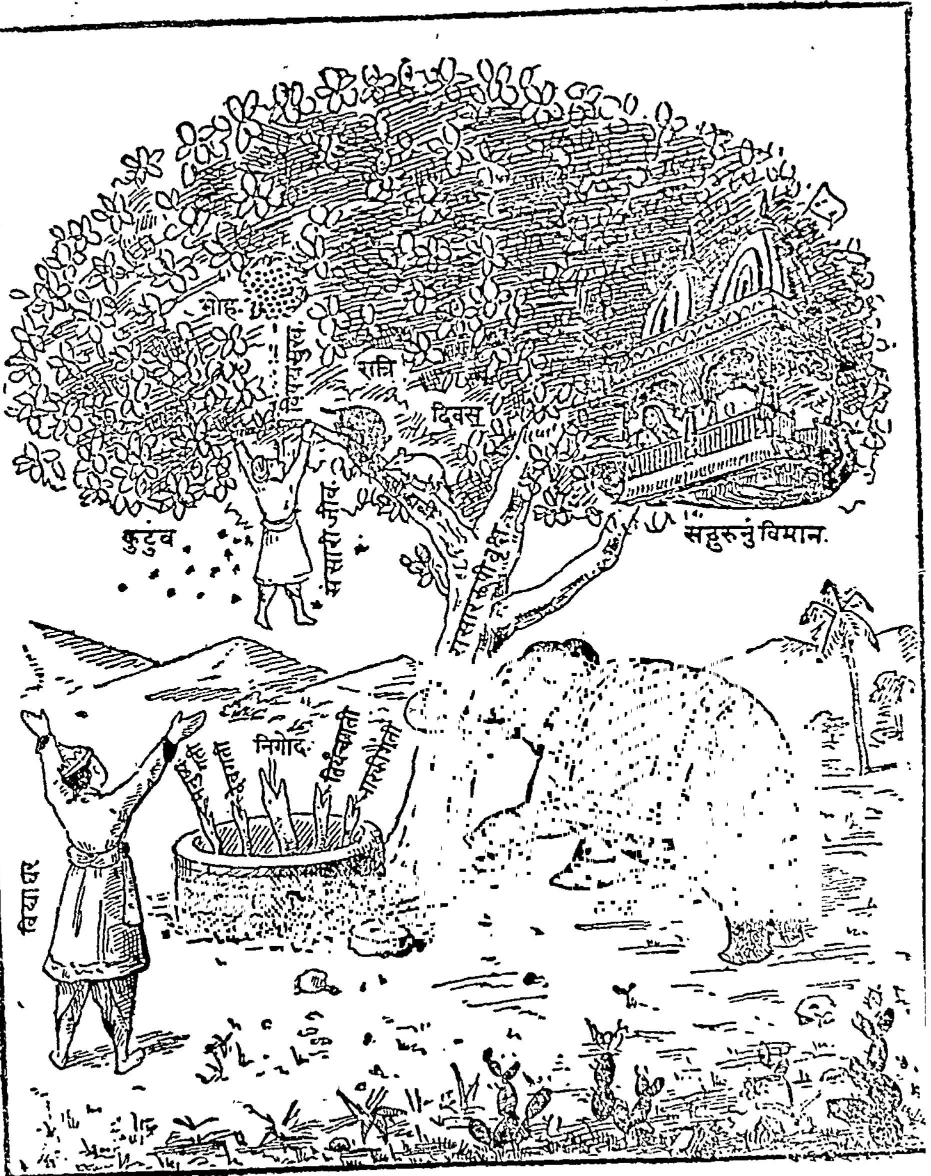
मुनि—



स्वर्गीय दानवीर जैनकुलभूषण

सेठ माणिकचन्द हीराचन्द जौहरी जे. पी. बम्बई।

जैनविजय' प्रेस–सूरत



संसार वृक्ष।

भावार्थ—भाव रहित नग्न रहना 'अकज्ज' यानी निकम्मा—व्यर्थ है—अर्थ साधक नहीं है। ऐसी श्री जिन भगवानकी आज्ञा है।

इस तरह दोनोंका **अभिप्राय** एक है; और दोनोंने **अधिकारके अनुसार** भेद किये हैं। हर एकको यह तो मानना ही पड़ेगा कि नाम केवल भिन्न भिन्न हैं, और शिक्षा (Discipline) के लिए क्रियाएँ भिन्न २ बताई हैं परन्तु इनसे यह साबित नहीं होता है कि धर्म भिन्न भिन्न हैं अथवा तत्त्वोंमें भेद हैं।

'अनुभव' में जहाँ एकता है वही **सच्ची एकता** है; वहां द्वंद्व भाव न कभी हो ही सकता है और न माना ही जा सकता है। जो द्वंद्व भाव बाहिरसे मालूम होता है वह कल्पित है अथवा ज्ञानकी न्यूनताके कारण दृष्टि-पथमें आनेवाली 'भ्रांति' है। दूसरे शब्दोंमें कहें तो द्वंद्व भाव दिखाना ही, यह साबित करता है, कि दृष्टा **बहिर्दृष्टि** मनुष्य है।

उदाहरणके लिए हम बाह्य दृष्टिमें आनेवाले कुछ भेदोंका वर्णन करेंगे।

(१) श्वेतांबर आम्नायके अन्तर्गत जितने भी फिरके हैं, वे सब यह मानते हैं, कि पुरुषके समान '**स्त्री**' को भी मोक्ष मिल सकता है। दूसरी तरफ दिगंबरोंमेंसे कई ऐसा ही मानते हैं और कई मानते हैं कि **स्त्रीको मोक्ष मिलना सर्वथा असंभव है।** स्त्रीत्व—स्त्रीपन—याने लज्जाका घर; निर्बलताकी प्रकृति, जज्बों–लागणियों–(Emotions) का निवास स्थान; जब तक ये स्थित हैं तब तक मुक्त दशा–निर्भीक दशाका प्राप्त होना सर्वथा असंभव है। इसमें किसीको कभी संदेह नहीं हो सकता है। चाहे स्त्री हो या पुरुष जबतक उक्त बातोंका हृदयमें निवास होता है तबतक वह कदापि मोक्षका अधिकारी नहीं होता। इस मूल वस्तुको समझनेवाले पुरुष तो दिगंबर अथवा श्वेतांबर दोनों फिरकोंकी मुक्ति विषयक मान्यतामें कभी भेद नहीं देखता; उसे तो दोनोंमें सदैव एकता ही दिखाई देती है। ऐसा होनेपर भी जो इस बातको नहीं समझ सकता हैं उसे हम कहेंगे कि भाई, स्त्रीको, मोक्ष प्राप्तिके लिए जितना भी उद्यम हो सकता है, करने दो। उसका उद्यम यदि योग्य हद तक पहुंच जायगा तो उसे मोक्ष मिल जायगा और यदि अधूरा रह जायगा तो मुक्तिके समीप तो वह अवश्य ही पहुंच जायगी। प्रयत्नसे उसे कभी हानि होनेवाली नहीं है। मुक्ति मिलनेकी इच्छासे यदि स्त्री उद्यम करती है तो क्या यह लाभदायक नहीं है? जितनी हद तक बहिर्वृत्ति, बाह्यदृष्टि, लागणी–जज्बा–(Emotion) के वशमें होकर उसका

आचरण करना छूटेगा (दूसरे शब्दोंमें कहें तो 'स्त्रीपन' छूटेगा) उतनी ही हद तक मुक्ति नज़दीक आती जायगी।

(२) दिगंबर मानते हैं कि केवली आहार (कवलाहार) नहीं करते, श्वेतांबर मानते हैं कि करते हैं।

इसका समाधान करना भी विलकुल सरल है। दोनों संप्रदायवाले यह तो मानते हैं कि **भावोंसे ही 'बंध' होता है और भावोंसे ही 'मुक्ति' होती है।** यदि इस बातको ध्यानमें रखकर विचार करेंगे तो, केवलियोंके विषयमें-जोकि सदा आत्मध्यानमें ही मग्न रहते हैं-यह प्रश्न करनेकी भी आवश्यक्ता नहीं पड़ेगी कि वे आहार करते हैं या नहीं? केवलियोंके भाव आहार करनेमें नहीं रहते हैं इसलिए वे आहार करते हों तो भी नहीं करते हैं। (કેવલીનો જમવામાં પરિણામ ન હોવાથી તેઓ જમતા હોય તોપણ જમતા નથી.)

(३) श्वेतांबर कहते हैं कि गृहस्थलिंगी भी मोक्ष जा सकते हैं। दिगंबर कहते हैं ऐसा नहीं हो सकता।

यह विरोध केवल दिखाऊ मात्र है। जबतक गृहस्थपन—ममत्वभाव—है यानी जबतक मनुष्यकी वाह्य दृष्टि रहती है तबतक उसे कभी मुक्ति नहीं मिलती है, और इस दृष्टिसे विचार करनेपर यह परिणाम निकलता हैं कि गृहस्थीको कभी मोक्ष नहीं मिलता हैं। जो मनुष्य नग्न रहकर अपने नग्नत्वका अभिमान नहीं करता हैं अथवा कुछ वस्त्र पहिनते हुए अथवा गृहस्थावस्थामें रहकर वहुमूल्य वस्त्र पहिनते हुए भी उनमें मुग्ध नहीं हो जाता उसे मुक्ति मिल जाती है। इस दृष्टिसे विचार करने पर यह परिणाम निकलता हैं, कि गृहस्थ भी मोक्षमें जा सकते हैं, यानी गृहस्थीके लींगमें रहते हुए भी मुक्ति प्राप्त की जा सकती है।

बस तीन दृष्टांत देकर ही हम संतोष करेंगे। इसी तरह सम्यग्दृष्टिसे विचार करेंगे तो जितने भी भेदभाव हैं, वे सब पानीके उस बुद्बुदेकी भांति दिखाई देंगे-जो एक क्षणमें उत्पन्न होता है और दूसरे क्षणमें नष्ट हो जाता है। वस्तुतः भेद नामकी कोई चीज़ नहीं है। दृष्टिके पथमें आनेवाली '**भ्रांति**' का ही नाम 'भेद' रक्खा गया है। दृष्टाके मस्तिष्कमें जो भ्रान्त रंग-विचार-होता हैं वही दूसरे पदार्थपर गिरकर वही हमें दोषित-भिन्न-दिखाता है।

मनुष्योंकी शक्तियोंके भेदसे उनकी आवश्यताओंमें भी भेद होते हैं। किसीके लिए सचेल-वस्त्रवाली-दशा अनुकूल और आवश्यकीय होती हैं और

किसीको नग्नावस्था-दिगम्बरावस्था ही अनुकुल पड़ती है। कोई अपनी प्रगति उन्नती किसी भावना (Concept) के मूर्तिमान स्वरूपकी सहायतासे ही कर सकता हैं, और कोई भावनाकी बाह्य मूर्तिके विना केवल सूक्ष्म भावना (Abstract Concept) के द्वारा ही अपने आपको उन्नत बना सकता है। मगर वास्तविक और गहन तत्वका विचार किया जाय तो मालूम होगा कि भावना (Concept) कोई अन्तिम सत्य Truth-in-itself नहीं है; यह तो आगे बढ़नेका एक साधन मात्र है।

श्वेतांबराम्नायके अन्तर्भूत जो फिरके हैं, उनमेंसे कई तो मुँहपत्ति बाँधने-हीमें, और कई नहीं बाँधने ही में मुक्तिका निवास समझते हैं। यह भी बाह्य दृष्टिका ही 'चिन्ह' है। दोनों पक्षोंके धर्मशास्त्र समान हैं। एक पक्षवाले जिस शास्त्रमेंसे मुँहपति बाँधनेके प्रमाण ढूँढ़नेका प्रयत्न करते हैं, उसी शास्त्रमेंसे दूसरे पक्षवाले मुँहपत्ति नहीं बाँधनेके प्रमाणोंका पता लगानेमें अपने समय और शक्तिका व्यय करते हैं। इस बातके लिखनेवालोंके पास दोनों पक्षोंकी दलीलें मौजूद हैं, और वे इन्साफ़-न्याय-करनेकी स्थितिमें भी हैं; परन्तु वास्तवमें तो इस विषयका न्याय करनेकी कोई ज़रूरत मालूम नहीं होती। कोई व्यक्ति यदि किसी चीजको उन्नति क्रमका सोपान बना सकता हो तो वह भले उस वस्तुका उपयोग करे। देखना केवल इतना ही चाहिए कि किसी पदार्थका उपयोग, कार्य सिद्धिके विचार विना ही केवल पक्षमोहके लिए तो नहीं किया जाता है; केवल उसके दास बनके तो उसे कार्यमें नहीं लाते हैं। मुँहपत्ति बाँधकर अथवा वे बाँधे-चाहे किसी तरहसे हो-मुँहपर लगाम रखनेकी-यत्नाचार रखनेकी-भाषा समिति पालन करनेकी-आवश्यकता है। यह जरूरत किसी तरहसे पूरी होनी चाहिए।

क्या श्वेतांबर और क्या दिगंबर सारे अपने आपको जैनी बताते हैं। सबके अधिष्ठाता देव वेके वे ही चौवीस तीर्थंकर हैं; नव तत्व, छः काय और कर्म विचार भी सबके समान हैं। सब यही कहते हैं कि **विधि-बाह्यचारित्रके वितंडावादसे कोई पार नहीं होगा। भवसागरसे पार होनेके लिए अन्तर्भावकी शुद्धि ही काम आयगी। वास्तविक जैनत्व राग और द्वेष दोनोंके जीतनेमें है। पक्ष मोहकी जालमें नहीं है।** इतना होनेपर भी-समस्त संसारके ऊपर समता भाव रखनेकी हिमायत करनेवाले जैन आपसमें ही-अपने भाइयोंसे ही-द्वेष, ईर्षा, निंद्य घृणा, असभ्यताका व्यवहार करते हैं यह कितनी अज्ञानता है?

इस अज्ञानताके लिए ही जैन समाजका ऐक्य बल फीका पड़ गया है। कई बातोंमें हमारा धर्मके स्थानमें अधर्म, देशद्रोह, समाजद्रोह और पतन हो गया है।

आत्महितेच्छुको तो सदा यह बात ध्यानमें रखनी चाहिए कि, राग और द्वेष, भाषा, वाद, लिङ्ग, शरीर और उपकरण ये सब तो बाह्य पदार्थ हैं और जड़ हैं। स्ववस्तु तो केवल चैतन्य धन आत्मा ही है। परवस्तुका केवल स्ववस्तुको प्राप्त करनेके लिए ही सदुपयोग करना चाहिए। जो परवस्तु स्ववस्तुकी प्राप्तिमें बाधक हो उसका त्याग करना परम अवश्यक है। जहाँ यह तत्व समझमें आजाता है वहाँ, टंटे फिसाद, गाली गलौंज अथवा निंद्य वितंडावाद कभी नहीं होते, और ऐसे पुरुष ही-जोकि उक्त तत्वको समझने और आचरण करनेवाले हैं- संसारका उद्धार दुनियांकी भलाई-कर सकते हैं।

दिगंबर विद्वान् श्रीमदकुंदकुंदाचार्य 'मोक्षपाहुड़' में कैसा सुंदर सत्य कहते हैं ?

जो सुत्तो ववहारे सो जोई जग्गह सकज्जम्मि।
जो जग्गदि ववहारे सो सुत्तो अप्पणे कज्जे ॥

भावार्थ-जो व्यक्ति व्यवहार कार्यमें (यानी धर्मके नाम राग, द्वेष ऊधम करनेमें) **सो रहा है** (ऐसा कोई काम नहीं करता है जिससे जगतके जीवोंको दुःख होता हैं; यानी परवस्तुमें अपने मनको नहीं लगाता हैं) वह अपने कार्यमें जागता है (अपनी स्ववस्तुके प्रयत्नमें लगा हुआ हैं; आनंदमें रहता है) और जो जगतके व्यवहारमें (जैसे भाषाके शास्त्रोंसे शस्त्र तैयार कर लड़ना, रागद्वेष करना, निंदा करना, ईर्ष्या करना, अप्रिय वचन बोलना इत्यादिमें) जागृत रहता है, वह स्वकार्यमें सोता हुआ हैं।" अभिप्राय यह है कि जो पर वस्तुमें मग्न रहता हैं वह कभी स्वात्मानंदकी प्राप्ति नहीं कर सकता।

कैसा आश्चर्य है कि वीतराग प्रभुकी जिस वाणीको सुननेके लिए सिंह, बकरी, मनुष्य आदि जीव वैर-विरोध भूलकर एक साथ बैठते थे और शान्तिका अनुभव करते थे; वही वीतराग वाणी आजकल टंटाका हथियार बनाई जाती है; और ऐसा करते हुए भी लोग अपने आपको वीतराग प्रभुकी सन्तान बताते हैं। नहीं नहीं वे अपने आपको ही केवल वीतरागके सच्चे पुत्र (The only heirs) होनेका दम भरते हैं।

विवेकी पुरुषोंको सदैव ध्यानमें रखना चाहिए कि सत्यका वास्त-

विक और अन्तिम निर्णय तो केवल **अतीन्द्रियज्ञान** ही कर सकता है दूसरे ज्ञान नहीं; और अतीन्द्रिय ज्ञान राग और द्वेषके अभावमें होता है। वैसे अतीन्द्रिय ज्ञानके धारी महात्माओंने जो बातें कही हैं उनमेंसे एक बातके अनेक अर्थ होते हैं। अर्थ करनेवाले मनुष्यकी जैसी योग्यता होती है वैसा ही वह अर्थ करता है (ज्यादा या कम अपूर्ण और ज्यादा या कम ही दूषित अर्थ करता है।) संपूर्ण और दोषरहित अर्थ तो **स्वानुभवी**—अतीन्द्रिय ज्ञानवाला मनुष्य ही कर सकता है। जो मनुष्य इस बातको समझ जाता है वह कभी दूसरोंके किये हुए अर्थ (Interpretetion) के लिए टंटे करनेको तैयार नहीं होता।

अतीन्द्रिय ज्ञानी जितना जानते हैं उतना सब वे भाषाके द्वारा कथन नहीं कर सकते और जितना वह कथन कर सकते हैं उसका अनंतवाँ भाग भी साधारण मनुष्य कठिनतासे समझ सकते हैं। इतना होनेपर भी आजकलके अज्ञानी बाल जीव भी—जिन्हें न पदार्थके मूल तत्वोंका ज्ञान है और जो न भाषाके नियमोंको ही पूरी तरहसे जानते हैं अतीन्द्रिय ज्ञानियोंके कथनका वास्तविक और सम्पूर्ण रहस्य समझनेका झूठा ढोंग दिखाते हैं। आह! कैसा हम्बग! कैसी प्रतारणा?—जहां मूर्ख लोग किसी बातको निर्णय करने बैठें वहाँ, कलह, द्वेष, निंदा आदिके सिवा क्या परिणाम निकल सकता है?

अफसोस इस बातका है, कि अमुक व्यक्तिके मनमें क्षुद्र मतभेद उत्पन्न हो जानेपर वह सैकड़ों बाल जीवोंको अपनी तरफ खींचकर एक नवीन फिरका खड़ा कर देता है और जैन शासनके टुकड़े२ कर देता है। श्वेतांबरोंमें मूर्तिपूजक और स्थानकवासी ऐसे दो फिरके हुए। इतना ही नहीं अन्तर्गत भी कई भेद प्रभेद हो गये। दिगंबरोंमें भी मूलसंघ, माथुरसंघ, गोप्यसंघ, काष्ठासंघ, तेरापंथी, गुमानपंथी, नंदीसंघ इत्यादि अनेक भेद हुए, और हरेक अपनी अपनी बातका पक्ष खींचने लगा। इससे जैन संघकी जड़ हिलगई और वह निर्बल बन गया। बुद्धिमान पुरुषोंको अब विचार कर चैतन्य होना चाहिये। मतभेदके प्रश्नोंको एक तरफ ताकमें रखकर एकतावाली बातोंका विचार करना चाहिए। समस्त जैन मात्रमें प्रेमभाव,

सहिष्णुता और बंधुत्व बढ़े इस बातका प्रयत्न करना चाहिए। मुट्ठीभर अवशेष **जैन जाति**को विशेष विस्तृत, विशेष बलवान, विशेष स्वस्थ, विशेष यशस्वी और विशेष ज्ञानी बनानेके लिए, क्या विद्वान क्या मूर्ख, क्या व्यापारी क्या सरकारी कर्मचारी, क्या साधु क्या साध्वी, और क्या श्रावक क्या श्राविका हरेकको तनदहीके साथ कोशिश करनी चाहिए। सदा ध्यानमें रखना चाहिए, कि **जहाँ एकता है वहीं संपूर्णता है और जहाँ संपूर्णता है वहीं सत्य है।**

पिता अपने लड़कोंको आपसमें कलह करते देखकर कभी प्रसन्न नहीं होता है। कलहमें दोष चाहे किसीका हो; परन्तु पिता तो कलहकी पहल करनेवाले पुत्रको, इसी तरह सहिष्णुता नहीं रखनेवाले पुत्रको—ऐसे दोनों लड़कोंका—कपूत ही कहेगा। इसी न्यायके अनुसार (व्यवहारसे) महावीर पिता अपने कलहकारी पुत्रोंको कहते हैं:—

" मेरा वास्तविक पुत्र वही है जो मेरे दूसरे पुत्रोंको केवल अपने बंधु ही नहीं समझता है बल्के उन्हें आत्मवत् समझता है; उनके अपराध हो जानेपर भी वह उन्हें उदार दिलके साथ चुपचाप क्षमा कर देता है। इतना ही नहीं बल्के अपनी शक्तिके अनुसार सेवाबुद्धिसे उनके स्वभावोंको सुधारनेकी भी कोशिश करता है। "

महावीर प्रभुके पुत्रो आओ; चिरकालसे बिछड़े हुए भाइयो! आओ। हम परस्पर मिल लें और इस मिलनमें सारे घृणाभावोंको पीस डालें। आओ अपने पिताके यशोगान एक साथ मिलकर गावें, और संयुक्त होकर इतनी उच्च ध्वनि करें कि जिससे इधर उधर फिरते हुए कलहके भूत भड़ककर भाग जावें। आओं हम परस्पर एक दूसरेके मित्र, शिक्षक, शुभेच्छु और रक्षक बननेकी कोशिश करें, जिससे हमें देखकर संसार कहने लगे कि **जैन बनना सचमुच ही उत्तम और इष्ट है।** (जैनहितेच्छुसे अनुवादित)

सूचना।

सं० १९७५ की परीक्षाओंके पाठ्य विषय तथा पाठ्य पुस्तकोंमें परिवर्तन हो गया है। नयी विवरण पत्रिका छप रही है। सं० १९७६ के परीक्षार्थियोंको चाहिये कि नयी विवरण पत्रिकाके अनुसार पाठ्यक्रम आरम्भ करें।

व्रजराज,

परीक्षा मन्त्री, हिन्दी साहित्य सम्मेलन।

जैन संसार सचित्र मासिक पत्र।

जैनसमाजमें आजतक एक भी ऐसा पत्र नहीं था जो मनोविनोदके साथ ऐसी ऐसी बातें बताता जिनसे लोगोंके हृदयोंमें खलबली पैदा हो जाती और वे एकदम अपनी बुराइयोंको निकालनेके लिए तत्पर हो जाते। दुनियांका काम न सिर्फ गंभीर विचारोंसे चलता है, न सिर्फ शृंगार रसकी बातोंसे चलता है, न सिर्फ आध्यात्मिक बातोंसे चलता है और न सिर्फ शारीरिक व व्यापारिक बातोंके करते रहनेसे ही चलता है, बल्के सबही की बराबर मात्राओंसे चलता है। '**जैनसंसार**' में ये सब बातें रहती हैं। **जैनसंसार**में रसीली कहानियाँ पढ़िए, चमकीले भड़कीले विनोदी चित्र देखिए, दिल्लगीके प्रहसन पढ़िए, और ऐतिहासिक बातें आदि पढ़कर शरीर, मन और आत्मासे वाक़फियत हासिल कीजिए। इसमें सामाजिक आलोचनाएँ इतनी मज़ेदार होती हैं कि उनको बार बार पढ़ते ही रहना अच्छा लगता है। किसी जाति या समाज विशेषका इसमें पक्ष नहीं होता, जैनसमाजके चारों फिरकोंके लिए यह पत्र समान उपयोगी है।

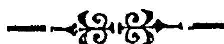
विशेष तारीफ करना व्यर्थ है। एकवार पढ़कर देखिए। आप कभी छोड़ना पसंद नहीं करेंगे। दूसरे वर्षका खास अंक निकलनेवाला है। संभवतः आसोजमें प्रसिद्ध हो जायगा। जिसमें लगभग दस पन्द्रह चित्र और उत्तमोत्तम लेख रहेंगे। बड़ा लगभग सवासौ पेजका होगा। जैन समाजके ही नहीं, बल्के हिन्दीके प्रसिद्ध२ लेखकोंके इसमें लेख, गल्पें, प्रहसन आदि रहेंगे। अंक ग्राहकोंकी संख्याके अनुसार ही छपवाये जायँगे। इसलिए शीघ्रता कीजिए और ग्राहक हो जाइए। अन्यथा पछताना पड़ेगा। वार्षिक मूल्य २≡) हैं। स्त्रियोंको १≡) में दिया जावेगा। खास अंकका मूल्य ।।।)—बारह आना होगा। एक उत्तम पुस्तक भी भेटमें मिलेगी। और जैनसंसारके ग्राहकोंको नीचे लिखों पुस्तकें भी आधे मूल्यमें मिल सकेंगी। जिनकी पूरी कीमत यह है। १—चम्पा मूल्य ।≡; २—दलजीतसिंह, ।।), ३—महेन्द्रकुमार, ।=), ४—राजपथका पथिक, ।),

पता—**मैनेजर जैनसंसार**, जुबिलीबाग, तारदेव—बम्बई।

निर्मोही गृहस्थका गौरव।

लेखक–श्रीयुत पं० गिरधर शर्मा।

मोह रहित जो गृहस्थ भी है,
मोक्षमार्गका गामी है।
हो अनगार न मोह तजा तो,
वह कुपंथका गामी है।
मुनि होकर भी मोह न छोड़ा,
ऐसे मुनिसे तो गिरधर।
निर्मोही हो गृहस्थ रहना,
है अच्छा, उत्तम बिहतर।



आवश्यकता।

(१)

है एक १३ वर्षकी खँडेलवाल जैन उच्चकुलकी कन्या, निरोग, गृहकार्य्यमें कुशल, लिखीपढ़ीके लिये ऐक वर की जो खँडेलवाल जाति का न हो, उम्र २० वर्षके लगभग, कालिजमें पढ़ता हो या रोजगार करता हो, धार्मिक विचार रखता हो, विवाह जैनपद्धतिके अनुसार होगा, कोई व्यर्थव्यय न किया जावेगा।

(२)

और एक अग्रवाल जैन उम्र ३० वर्ष हेडमास्टर १००) रु० मासिक वेतन पानेवालेके लिये एक कन्याकी जो अग्रवाल न हो जिसकी उम्र १४ आर २० के अन्दर हो, तन्दुरुस्त और गृहकार्य्यमें कुशल होना आवश्यक है।

विशेषके लिये पत्रव्यवहार निम्न पतेपर कीजिये।

मन्त्री, जैन भ्रातृसमाज,
चन्द्राश्रम–इटावह.

रत्नकरण्डके पदका हिन्दी पद्यानुवाद।

साक्रटीस और मृत्यु।

(लेखक—श्रीयुत पं० शिवनारायण द्विवेदी।)

" यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते
निघर्षणच्छेदनतापताडनैः ।
तथा चतुर्भिः पुरुषः परीक्ष्यते
श्रुतेन शीलेन कुलेन कर्मणा ॥ "

जैसे सोनेकी परीक्षा उसे कसौटीपर घिसकर, काटकर, आगमें तपाकर और हथौड़ीसे कूटकर की जाती है, वैसे ही पुरुषकी परीक्षा लोगोंकी सम्मति, आचरण, कुल और कर्मसे की जाती है। संसारमें ऐसे व्यक्ति बहुत कम होते हैं, जो मानवी जीवनके कठिन कर्त्तव्य मार्गके पथिक बनते हैं; और फिर ऐसे व्यक्तियोंकी तादाद तो बहुत ही कम होती है जो हजार दुखोंके दांत दिखानेपर भी तलवारकी धारके समान कठिन कर्त्तव्य मार्गको पार कर जाते हैं। वे ही व्यक्ति संसारमें महापुरुष और महात्मा पुरुषके नामसे पुकारे जाते हैं। वे ही असंख्य नक्षत्रोंके साथ शुक्रके समान चमकते हैं। संसारके हृदयोंपर उन्हींकी मूर्ति अनन्तकाल तक खुदी रहती है। अपनेको ज्यों का त्यों करके दिखा देनेवाले जो थोड़ेसे व्यक्ति इतिहासमें हैं, उनमें साक्रटीस (सुक़रात) का आसन सबसे ऊंचा है।

प्राणिमात्रको अपने जीवनसे अधिक और कुछ प्रिय नहीं है। हम यह बात कहा करते हैं कि सन्तानपर माताका प्रेम प्राणोंसे भी अधिक होता है, किन्तु वास्तविक स्थिति एक पौराणिक कथाके अनुसार है। एक बँदरिया एक खंदकमें गिर गई, उसके साथ उसका बच्चा भी था। जब उसमें पानी आने लगा तब अपने बच्चेको बचानेके लिए उसे सिर

पर बैठा लिया, जब पानी और ऊपर चढ़ने लगा तब उसने बच्चेको अपने दोनों हाथोंसे ऊँचा कर लिया, किन्तु जब पानी और ऊपर चढ़ने लगा और बँदरियाका दम घुटने लगा तब उसने बच्चेको अपने पैरोंके नीचे दबाकर खुद ऊंची हुई; किन्तु व्यर्थ, पानीके और चढ़नेपर दोनों मर गये। मृत्युके निकट मनुष्य प्राणीकी भी यही स्थिति है। "**अंगं गलितं पलितं मुण्डं, दशन विहीनं जातं तुण्डम्**" ऐसी दशा हो जाने पर भी जीवनकी आशा नहीं छूटती। प्यारेसे प्यारे धन या पुत्रकी ममता भी अपने प्राणोंसे अधिक नहीं होती। किन्तु मनुष्य ज्ञान और मानसिक दृढ़तासे तमाम कमज़ोरियोंको जीत लेता है—इन दोनों दृढ़ताओंसे वह अपना जीवन भी हँसते २ विसर्जन कर देता है। सच्ची साधुवृत्ति इसी विजयमें है। महात्मा साक्रटीस इसी उच्चकोटिकी विजयका विजेता था। इस पुण्यपुरुषकी सम्पूर्ण आयुकी साधना और प्रयास यदि तराजूके एक पलड़ेपर धरा जाय और आयुके अन्तिम दिनका धैर्य दूसरेपर रक्खा जाय तो मेरे अनुमानसे दोनों बराबर होंगे। साक्रटीस अपने समयके नवीन तत्वज्ञानका प्रवर्तक था। इसकी शिक्षा सर्वथा नवीन थी और अधिकांश उस समयकी प्रचलित राज्यपद्धतिके विरुद्ध थी। जब सर्वसाधारणपर साक्रटीसका प्रभाव बढ़ने लगा और इसके अनुयायियोंकी संख्या बहुत होगई, तब राज्यपक्षवालोंको अपने लिए इसकी शिक्षा भयानक मालूम होने लगी। बहुत कुछ सोच विचारके अनन्तर साक्रटीसपर यह दोष साबित किया गया कि वह नवयुवकोंको प्रचलित पद्धतिके विरुद्ध शिक्षा देता है और राज्यके मान्य देवताओंको नहीं मानता। इसी अपराधपर उसे मृत्युदण्डकी आज्ञा हुई।

उस समयके एथेन्सके नियमानुसार साक्रटीस कई दिन तक जेलमें रक्खा गया। नित्य इसके शिष्य जेलमें अपने गुरुके दर्शन करने जाते थे और उसके निर्भीक व्याख्यान सुनते थे। अन्तिम दिन जब इसके मित्र और शिष्य जेलमें एकत्र हुए तब उसकी बेड़ियाँ खोली गईं। सबसे

पहले स्त्रियाँ और बच्चे उससे मिले। साक्रटीसकी स्त्री रोने लगी। उसे आश्वासन देकर साक्रटीस अपने शिष्य मण्डलमें आकर बैठा। अपना पैर सहलाते हुए उसने कहा,—"मनुष्य जिसे सुख कहते हैं, वह कितना विचित्र पदार्थ है! सुखसे जो सर्वथा विरुद्ध दुख है, उसीके साथ सुखका कितना गहरा सम्बन्ध है। यह सच है कि एक समयमें मनुष्यको सुख और दुख प्राप्त नहीं होते, किन्तु सुखके भोगते२ दुख पहुंच ही जाता है। मानो सुख और दुख एक ही चक्रके भाग हैं। देखो अब तक मेरे पांवोंमें बेड़ियाँ थीं, इससे मुझे दुख था, अब उनके दूर होते ही सुख आगया।"

यह कह कर साक्रटीसने अपने चारों ओर देखा। वह साक्रटीसके प्राणदण्डका अन्तिम दिन था। उसके शिष्य और मित्र तो थे ही, किन्तु दूर २ शहरोंसे भी लोग उससे मिलने आये थे। एक दूरसे आये हुए सीब्स नामक सज्जनने सबसे पहले बात छेड़ी,—"साक्रटीस! तुमने कारागारमें रह कर अपोलो देवताकी पद्यात्मक प्रार्थना रची और ईसाबोकी कथाओंको कवितामें बनाई इसलिये दो दिन पहले प्रसिद्ध कवि ईव्हीनस मेरे पास आया था। कृपा करके इसका कारण बताओ।"

साक्रटीसने उत्तरमें कहा—"सीब्स, तुम उससे कहना कि मैंने सर्द्धाबुद्धिसे कविता नहीं बनाई, बल्कि कुछ पहले मुझे एक सपना हुआ था और उसमें मुझे कहा गया था कि-साक्रटीस, काव्यका अभ्यास करके कविता बना। इसका मतलब मैंने यह समझा कि देवता मुझे उत्तेजना देते हैं। क्योंकि मैंने अपना सम्पूर्ण जीवन आध्यात्म विद्याकी खोजमें बिताया है, और मेरी समझके अनुसार आध्यात्म विद्या ही सबसे उंची कविता है। किन्तु जब मैं जेलमें आगया तब मेरी बुद्धिने लौकिक विषयपर कविता रचनेकी मुझे आज्ञा न दी, किन्तु मृत्युसे पूर्व उस स्वप्नकी आज्ञाका पालन करना आवश्यक था। इसलिए मैंने देवताकी पद्यात्मक कथा रची और कल्पित कथा न आनेके कारण ईसाबोकी जो

कथाएँ मुझे याद थीं उन्हींको मैंने कवितामें लिखीं। बस मेरे कविता रचनेका यही कारण है। सीब्स, तुम ईव्हीनससे मेरा प्रणाम कहना और इसी सिद्धान्तपर चलनेकी प्रार्थना करना। क्योंकि एथेन्स निवासियोंकी इच्छाके अनुसार आज मैं प्रयाण कर जाऊंगा।"

यह बात सुनकर सीमियसने आश्चर्यसे कहा,—"साक्रटीस, ईव्हीनसको तुम्हारा यह कैसा विलक्षण उपदेश है! मैं उससे बहुत वार मिला हूं। मुझे उसके विषयमें जो कुछ ज्ञान है उससे कह सकता हूं कि ईव्हीनस तुम्हारे उपदेशके अनुसार न चलेगा।"

साक्रटीसने कहा—"क्या ईव्हीनस तत्वज्ञानी नहीं हैं?"

सीमियसने कहा—"मैं तो जानता हूं, वह है।"

साक्रटीस—"तो ईव्हीनस ज़रूर मरनेकी इच्छा करेगा, जो २ तत्वज्ञानके अभ्यासी होंगे वे सब ऐसी ही इच्छा करेंगे। हाँ, वे आत्महत्या कभी न करेंगे, क्योंकि ऐसा करना पाप है।"

यह कह कर साक्रटीसने अपना बांयां पांव खाटसे नीचे लटका दिया, और जब तक वह अपने मित्रों और शिष्योंसे बातें करता रहा तब तक ऐसे ही बैठा रहा।

फिर सीब्सने साक्रटीससे प्रश्न किया,—"साक्रटीस, आत्महत्या पाप है, पर तुम्हारे इन शब्दोंका अर्थ क्या है कि जो तत्वज्ञानके अभ्यासी होंगे वे सब ऐसी ही इच्छा करेंगे?"

उत्तरमें साक्रटीसने कहा—"तुमने फायलोलाससे इस विषयमें नहीं सुना?"

"सुना है, किन्तु विशद नहीं।"

"खैर, जो कुछ मैं जानता हूं वह समझाये देता हूं। जब मैं परलोकके प्रवासकी तैयारीमें बैठा हूं तब उस विषयमें बोलना असंगत नहीं। इस समयका और सूर्यास्तके समयका सद्व्यय इससे अधिक और हम क्या कर सकते है?"



"साक्रटीस, आत्महत्या पाप क्यों है ? मैंने फायलोलाससे थीब्स नगरमें यही बात सुनी है। औरोंके मुँहसे भी मैंने यही बात सुनी है, पर किसीके मुँहसे मैंने निश्चयात्मक बात नहीं सुनी।"

उत्तरमें साक्रटीसने कहा—"तुम धैर्य मत त्यागो, सम्भवतः कभी तुम निश्चयात्मकपर पहुंच जाओ। अन्य नियमोंका अपवाद हो सकता है, किन्तु इसका तो अपवाद है ही नहीं। तुम्हें इस बातका आश्चर्य होता होगा कि कभी २ कुछ खराब बातें भी कुछ मनुष्योंके लिए कल्याणकारिणी हो जाती हैं। किन्तु सब मरनेवालोंके लिए यह नियम समान रूपसे लागू नहीं है। जो मनुष्य मृत्युको सबसे भला उपहार समझता हो उसे भी अपने हाथसे मौत न बुलाकर दूसरोंके द्वारा उसके प्राप्त होनेकी आशामें रहना चाहिए।"

हँसते २ अपनी देहाती भाषामें सीब्सने कहा—" ठीक है।"

फिर साक्रटीसने कहा—" यह बात चाहे तुम्हें आश्चर्यकी मालूम होती हो पर सयुक्तिक है। मनुष्य प्राणी प्रत्येक समय कारागारमें है, और इससे छूटने या निकल भागनेका कोई उपाय नहीं हैं; यह बात बड़ी ही गहन है। फिर भी मुझे जान पड़ता है कि देव मनुष्यका पालनकर्ता हैं और मनुष्य उसकी सम्पत्तिके समान है। क्या तुम्हें ऐसा नहीं मालूम होता ?"

" हाँ, मुझे ऐसा ही जान पड़ता हैं।"

" फिर यदि कोई तुम्हारा मित्र आत्महत्या करे तो क्या तुम्हें उसकी मूर्खता पर पश्चात्ताप न होगा। और सम्भव होनेपर तुम उसे दंड न दोगे ?"

" अवश्य दूंगा।"

" इस विचारके अनुसार क्या इस निश्चयपर नहीं पहुँचते कि प्राणिमात्रको आत्महत्या करनेका अधिकार नहीं है। जब तक देवताकी

ओरसे मनुष्य आग्रह पूर्वक न बुलाया जाय तब तक उसे प्रतीक्षा करनी चाहिए । आत्महत्याकी आवश्यकता नहीं । ”

सीब्सने कहा—“ तुम्हारी बात स्वाभाविक मालूम होती है । पर अभी तुम कह चुके हो कि तत्वज्ञानी मरनेकी इच्छा करेगा । पर देव हमारा पालनकर्ता है और हम उसके सेवक हैं, यह बात यदि सत्य है तो इन दोनोंमें विरोध होता है । सब शासकोंमें श्रेष्ठ देव जब ज्ञानियोंके भी शासक हैं, तब यह युक्तिसंगत नहीं जान पड़ता कि ज्ञानी अपने आपको उस दैवी शासनसे स्वाधीन करनेकी इच्छा करेंगे । सम्भवतः मूर्ख मनुष्यको यह अच्छा भी मालूम होता हो कि अपने दयालु स्वामीके पाससे वह भाग जाय । किन्तु जो बुद्धिमान है वह अपने उस स्वामीका सामीप्य कभी त्याग करनेकी इच्छा भी न करेगा जो सर्वथा उसका कल्याण चाहनेवाला है । यदि यह तर्क सत्य है तो हम इसका अर्थ उल्टा ही करते हैं । बुद्धिमान् मनुष्योंको मृत्युसे भय होना चहिए और मूर्खोंको आनन्द । ”

सीब्सकी यह बात सुनकर साक्रटीसकी आत्मा पुलकित हो उठी । उसने कहा,—“सीब्स अपने प्रमाणोंकी गहरी जाँच करता है । इसका समाधान कोरे विचारोंसे नहीं हो सकता । ”

सीमियसने कहा—“हाँ, साक्रटीस सीब्सकी बातमें मुझे भी कुछ तथ्य जान पड़ता है । जो व्यक्ति सचमुच बुद्धिमान् है वह अपने भले और दयालु स्वामीको त्याग कर क्यों जाना चाहेगा ? मुझे मालूम होता है कि सीब्सके कहनेका रुख तुम्हारी ही ओर है । क्योंकि तुम कह चुके हो कि सबसे अच्छा स्वामी देव है फिर उसे छोड़ जानेमें तुम इतने उत्सुक क्यों हो । ”

साक्रटीसने कहा—“ तुम्हारा कहना युक्तिसंगत है । इससे तुम्हारा आशय यह है कि मैं इसका खण्डन उस ही प्रकार करूं जैसे न्यायाधीशके सम्मुख मैंने अपने विरुद्ध प्रमाणोंका खण्डन किया । ”

सीमियसने कहा—"हां, हमारा अभिप्राय यही है।"

उत्तरमें साक्रटीसने कहा—"सीब्स और सीमियस, यदि मेरी दृढ़ धारणा न होती कि मौतके बाद मुझे बहुत ही भले प्राणियोंका सहवास प्राप्त होगा तो अवश्य मौतका मुझे दुःख होता। इस लंबे भविष्यकी बातपर जितना विश्वास होना चाहिए उतना मेरा है। मृत्युके अनन्तर मुझे एक अत्युच्च जीवन प्राप्त होगा इसलिए ही मौतसे मुझे डर नहीं लगता। मेरी यह दृढ़ धारणा है कि इस जीवनके अनन्तर और भी जीवन है, और वह जीवन दुष्टोंकी अपेक्षा भलोंको विशेष सुखावह है।"

सीमियसने कहा—"पर इस अपनी धारणाका लाभ केवल तुम्हें ही होगा या हमें भी? जान पड़ता है कि इससे हमारा भी सम्बन्ध है। और विशेष कर हमारे उत्तरमें जब तुमने इसका समर्थन किया तब तो और भी अधिक दृढ़ है।"

साक्रटीस बोला—"मैं कोशिश करता हूं। पर क्रीटो कुछ कहनेके इरादेसे मेरी ओर देख रहा है, इसलिए पहले उसकी बात सुन लूं।"

क्रीटोने कहा—"साक्रटीस, मुझे केवल यही कहना है कि, जो आदमी ज़हर पिलाया करता है उसका कहना है कि तुम अधिक मत बोलो। क्योंकि बोलनेसे खूनमें गरमी आती है, और खूनकी गरमीसे ज़हरकी ताकृत कम असर करती है। जो लोग अपने खूनको अधिक तपा लेते हैं, उन्हें दो २ तीन २ वार ज़हर पिलानेकी आवश्यकता होती है।"

साक्रटीसने कहा—"उसे अपना काम करने दो। मुझे दो वार या आवश्यकता होने पर तीन वार ज़हर देनेकी तैयारी करने दो।"

क्रीटोने कहा—"मैंने पहले ही सोच रक्खा था कि तुम यही उत्तर दोगे। पर उस आदमीने मुझसे विशेष आग्रहके साथ यह बात कही थी।"

ओरसे मनुष्य आग्रह पूर्वक न बुलाया जाय तब तक उसे प्रतीक्षा करनी चाहिए। आत्महत्याकी आवश्यकता नहीं।"

सीब्सने कहा—"तुम्हारी बात स्वाभाविक मालूम होती है। पर अभी तुम कह चुके हो कि तत्वज्ञानी मरनेकी इच्छा करेगा। पर देव हमारा पालनकर्ता है और हम उसके सेवक हैं, यह बात यदि सत्य है तो इन दोनोंमें विरोध होता है। सब शासकोंमें श्रेष्ठ देव जब ज्ञानियोंके भी शासक हैं, तब यह युक्तिसंगत नहीं जान पड़ता कि ज्ञानी अपने आपको उस दैवी शासनसे स्वाधीन करनेकी इच्छा करेंगे। सम्भवतः मूर्ख मनुष्यको यह अच्छा भी मालूम होता हो कि अपने दयालु स्वामीके पाससे वह भाग जाय। किन्तु जो बुद्धिमान है वह अपने उस स्वामीका सामीप्य कभी त्याग करनेकी इच्छा भी न करेगा जो सर्वथा उसका कल्याण चाहनेवाला है। यदि यह तर्क सत्य है तो हम इसका अर्थ उल्टा ही करते हैं। बुद्धिमान् मनुष्योंको मृत्युसे भय होना चहिए और मूर्खोंको आनन्द।"

सीब्सकी यह बात सुनकर साक्रटीसकी आत्मा पुलकित हो उठी। उसने कहा,—"सीब्स अपने प्रमाणोंकी गहरी जाँच करता है। इसका समाधान कोरे विचारोंसे नहीं हो सकता।"

सीमियसने कहा—"हाँ, साक्रटीस सीब्सकी बातमें मुझे भी कुछ तथ्य जान पड़ता है। जो व्यक्ति सचमुच बुद्धिमान् है वह अपने भले और दयालु स्वामीको त्याग कर क्यों जाना चाहेगा? मुझे मालूम होता है कि सीब्सके कहनेका रुख तुम्हारी ही ओर है। क्योंकि तुम कह चुके हो कि सबसे अच्छा स्वामी देव है फिर उसे छोड़ जानेमें तुम इतने उत्सुक क्यों हो।"

साक्रटीसने कहा—"तुम्हारा कहना युक्तिसंगत है। इससे तुम्हारा आशय यह है कि मैं इसका खण्डन उस ही प्रकार करूं जैसे न्यायाधीशके सम्मुख मैंने अपने विरुद्ध प्रमाणोंका खण्डन किया।"

सीमियसने कहा—"हां, हमारा अभिप्राय यही है।"

उत्तरमें साक्रटीसने कहा—"सीव्स और सीमियस, यदि मेरी दृढ़ धारणा न होती कि मौतके बाद मुझे बहुत ही भले प्राणियोंका सहवास प्राप्त होगा तो अवश्य मौतका मुझे दुःख होता। इस लंबे भविष्यकी बातपर जितना विश्वास होना चाहिए उतना मेरा है। मृत्युके अनन्तर मुझे एक अत्युच्च जीवन प्राप्त होगा इसलिए ही मौतसे मुझे डर नहीं लगता। मेरी यह दृढ़ धारणा है कि इस जीवनके अनन्तर और भी जीवन है, और वह जीवन दुष्टोंकी अपेक्षा भलोंको विशेष सुखावह है।"

सीमियसने कहा—"पर इस अपनी धारणाका लाभ केवल तुम्हें ही होगा या हमें भी? जान पड़ता है कि इससे हमारा भी सम्बन्ध है। और विशेष कर हमारे उत्तरमें जब तुमने इसका समर्थन किया तब तो और भी अधिक दृढ़ है।"

साक्रटीस बोला—"मैं कोशिश करता हूं। पर क्रीटो कुछ कहनेके इरादेसे मेरी ओर देख रहा है, इसलिए पहले उसकी बात सुन लूं।"

क्रीटोने कहा—"साक्रटीस, मुझे केवल यही कहना है कि, जो आदमी ज़हर पिलाया करता है उसका कहना है कि तुम अधिक मत बोलो। क्योंकि बोलनेसे खूनमें गरमी आती है, और खूनकी गरमीसे ज़हरकी ताक़त कम असर करती है। जो लोग अपने खूनको अधिक तपा लेते हैं, उन्हें दो २ तीन २ वार ज़हर पिलानेकी आवश्यकता होती है।"

साक्रटीसने कहा—"उसे अपना काम करने दो। मुझे दो वार या आवश्यकता होनेपर तीन वार ज़हर देनेकी तैयारी करने दो।"

क्रीटोने कहा—"मैंने पहले ही सोच रक्खा था कि तुम यही उत्तर दोगे। पर उस आदमीने मुझसे विशेष आग्रहके साथ यह बात कही थी।"

साक्रटीसने कहा—"उसकी बातपर ध्यान देनेका कोई कारण नहीं है। हाँ, हमें अपने विषयमें आगे विवेचन करना चाहिए।"

यह कह कर साक्रटीसने सबसे पहले यह सिद्ध किया कि तत्वशास्त्र मृत्युकी ही मीमांसा है, इसके अनन्तर उसने आत्माके अमरत्वका विवेचन किया। सीब्स और सीमियसने अपने प्रयास भर इस विषयपर आक्षेप किये किन्तु साक्रटीसने उन सबका युक्तिपुरस्सर खण्डन किया और फिर सबल प्रमाणोंसे अपने मतकी सिद्धि की। साक्रटीसका लिखा कोई ग्रन्थ नहीं है किन्तु उस महात्माके विषयमें उसके शिष्य प्लेटो (अफ़लातूं)ने बहुत कुछ लिखा है। जबसे साक्रटीस कारागारमें रक्खा गया तबसे प्लेटो अधिक समय गुरुके सहवासमें ही बिताता था। साक्रटीसने अपने अन्तिम दिन अपने शिष्य और मित्रमंडलको आत्माके अमरत्वपर जो उपदेश दिया वह अतिशय गहन और तत्वज्ञानसे भरा है। प्लेटोने अपने संवाद (डायलाग)में सब विशद करके लिखा है। अन्तमें साक्रटीसने आत्माके पाप पुण्य और उसके शुभाशुभ फलपर कहा। सबके अन्तमें उसने कहा—"मैंने जो अतीन्द्रिय बात कही है, उसे वैसी की वैसी ही लोग मानें यह मेरा मतलब नहीं है। किन्तु जब यह सिद्ध होता है कि आत्मा अमर है तब उसके आगेकी स्थितियोंपर बिना विश्वास किये काम नहीं चल सकता। यदि मनुष्यने शरीर और विषय सुखकी रंचमात्र परवाह न करके विद्या और यथार्थ ज्ञान सम्पादन किया है तो मृत्यु उसके लिए एक अभूतपूर्व आनन्दके सिवाय और कुछ नहीं। मेरे शिष्यो और मित्रो! तुम भी अपने योग्य समयपर इस ही प्रकार तैयार रहना। इस समय दैवकी बुलाहट मेरे लिए आचुकी है, अब मुझे स्नान करके तैयार होना चाहिए। क्योंकि ज़हर पीनेसे पहले नहा लेनेसे फिर स्त्रियों और बच्चोंको स्नान करानेकी तक़लीफ़ न होगी।"

साक्रटीसके बोल चुकने पर क्रीटोने उत्तरमें कहा—" यह बात

मुनि



श्रीयुत वाडीलाल मोतीलाल शाह-बम्बई।

जैनविजय प्रेस-सूरत.

मुनि ——



पं० फतेहचंद कपुरचंद लालन-बम्बई।

जैनविजय प्रेस-सूरत.

ठीक है। पर अपने मित्रों, घरवालों या और किसीको कुछ कहलाना है क्या ? अन्तमें आपके लिये हम क्या करें ? "

साक्रटीसने कहा—"क्रीटो, मैंने आज तक तुम लोगोंको जो उपदेश दिया है, यदि तुम लोग उसीके अनुसार बोलोगे तो मैं सब भर पाऊंगा। तुम अपनी आत्माको उसके योग्य स्थानसे भ्रष्ट मत होने दो, बस यही मेरी और मेरे कुटुम्बियोंकी सेवाके समान होगा। तुमने इस विषयमें मुझे अब तक वचन नहीं दिया, पर खैर। यदि तुम अपनी बाकी जीवनी इस ही प्रकारके साँचेमें न ढाल सके तो आजके दिये हुए वचनोंसे भी क्या लाभ होगा ? "

क्रीटोने कहा—" हम आपके उपदेशके अनुसार ही बोलनेका आमरण प्रयत्न करेंगे। पर आपकी अन्त्येष्टि हम किस प्रकार करें ? "

साक्रटीस—"अपनी इच्छाके अनुसार। मुझे अपनेसे भिन्न मत होने दो, मुझे सदा पकड़े रहो। "

फिर साक्रटीसने हँसते हुए अपने मित्रोंकी ओर देखकर कहा,—"मेरे मित्रो ! मुझे मालूम होता है कि क्रीटोकी समझमें यह बात नहीं आई कि मैं तुम सबके बीचमें बैठकर बोलनेवाला और तर्कके सिद्धान्त निरूपण करनेवाला साक्रटीस हूं। शायद क्रीटो समझ रहा है कि अभी ज़हर पीनेके अनन्तर जो निर्जीव शरीर रह जायगा वही साक्रटीस है। मैंने अभी यह बात सिद्ध की है कि विष पीनेके बाद मैं इस लोकमें न रहूंगा, बल्कि इससे अच्छे लोकमें और भले मनुष्योंमें प्रयाण कर जाऊंगा पर मालूम होता है कि क्रीटोके मनपर इसका कुछ भी असर नहीं हुआ है। इसलिए मुकदमेके समय जैसे तुम लोगोंने मेरी ज़मानत दी थी वैसे ही अब एक विशेष जमानत दो। उस समय तुमने इस बातकी जमानत दी थी कि मैं भाग कर नहीं जाऊंगा, यहीं हाज़िर रहूंगा। किन्तु अब मैं इस शरीरसे नहीं बल्कि अन्य शरीरसे अक्षय जीवनमें रहूंगा। तुम्हारे ऐसा

करनेसे उसे मेरी मृत्युका दुःख कम प्रतीत होगा। तब यह ध्यान करना कि साक्रटीसको नहीं बल्कि साक्रटीसके शरीरको समाधि दे रहे हैं। प्यारे क्रीटो ! तुम यह सदा स्मरण रक्खो कि व्यर्थ शब्दोंका प्रयोग करना बड़ाभारी दोष है, इससे आत्मा भी दूषित होती है। इसलिए तुम प्रसन्न रहो, और यथार्थ अर्थवाले शब्दोंका प्रयोग करो। इस शरीरकी अन्त्येष्टि जैसे तुम्हारी इच्छा हो वैसे करना।

इतना कह कर साक्रटीस खड़ा हो गया और स्नान करनेके लिए दूसरी कोठरीमें गया। क्रीटो उसके साथ गया और बाकी सब वहीं बैठे रहे। सब साक्रटीसके विवेचन किये हुए तर्कपर बातें कर रहे थे। एक रोम२ कँपा देनेवाला मर्मभेदी दुख सबके हृदयोंको हिला देता था। सबको यह जान पड़ता था मानो आज एक अभूतपूर्व विपत्ति आ रही है। मानो आज तक सब अबोध बालक थे और अब मार्गदर्शक पिता स्वर्गारोहणको तैयार है।

इस अवसरपर साक्रटीसके घरकी स्त्रियाँ और तीन बच्चे उसके अन्तिम दर्शनोंको आये। स्नान करके साक्रटीस उनसे क्रीटोके सामने ही मिला और अपनी अन्तिम आज्ञा उसने उन्हें सुनाई। फिर वह अपने मित्रमंडलमें आया। इस समय सूर्य अस्त हो रहा था। स्नान करनेके बाद साक्रटीसने अधिक बातें नहीं कीं।

थोड़ी देरमें ज़हर पिलानेवाला सरकारी आदमी आया। उसने कहा—"साक्रटीस, मैं तुम्हें साधारण मनुष्य नहीं समझता; और इसलिये मुझे ज़रा भी विश्वास नहीं है कि ज़हर पिलाते हुए तुम मुझसे नाराज़ होगे। आज तक मैंने जिन२ को ज़हर पिलाया है उन सबने मुझे गालियाँ और श्राप दिये हैं। पर आज तक मैंने तुम्हारे समान शान्त, उदार और उत्कृष्ट मनुष्य नहीं देखा। मुझे विश्वास है कि आप मुझपर रुष्ट न होंगे। शायद आप जान ही गये होंगे कि इस समय मैं क्यों आया हूं।"

उस आदमीकी ओर देखकर साक्रटीसने कहा–"ठीक है। तुम जैसे कहो मैं करनेको तैयार हूं।"

फिर अपने मित्रों और शिष्योंकी ओर देखकर साक्रटीसने कहा–"यह मनुष्य कितना सभ्य है। मैं जबसे कारावासमें हूं तबसे प्रायः नित्य यह मेरे पास आता है और कभी२ बोलता भी है। इससे मालूम होता है कि यह मेरे लिए दुखी है। अच्छा अब क्रीटो चलो, उसके कहनेके अनुसार करें। जो ज़हर तैयार हो गया हो तो ले आओ और जो तैयार न किया हो तो झटपट तैयार करलो।

क्रीटोने कहा–" नहीं साक्रटीस, अभी सूर्य दीखता है। मुझे मालूम है कि ज़हर इस समयसे कुछ पीछे पिलाया जाता है।"

उत्तरमें साक्रटीसने कहा–" क्रीटो, मैं ऐसा नहीं करना चाहता, क्योंकि इससे मेरा क्या लाभ हो सकता है? मैं आयुका लोभ करके अपनी आत्माको क्षुद्र नहीं बनाना चाहता। इसलिए मेरी बातपर नाहीं मत करो।"

यह बात सुन कर क्रीटोने अपने गुलामको इशारा किया। वह बाहर गया और उस आदमीको ज़हरका प्याला लिये हुए अपने साथ ले आया।

उस आदमीको देख कर साक्रटीसने कहा–" विष पीनेके बाद मुझे क्या २ करना होगा?"

उस आदमीने उत्तरमें कहा–" तुम ज़हर पीकर जब तक पांव भारी न मालूम हों तब तक इधर उधर टहलो और बादमें सीधे लेट जाओ। ज़हर अपना असर आप ही करलेगा।"

यह कह कर उस आदमीने साक्रटीसके हाथमें ज़हरका कटोरा दिया। साक्रटीसने उसे ले लिया। उसके मुखका भाव ज़रा भी नहीं बदला और हाथमें ज़रा भी कँपकँपाहट नहीं देखी गई।

अपनी उसी शान्त और स्थिर दृष्टिसे देखते हुए साक्रटीसने उस आदमीसे पूछा—"इस कटोरेमेंसे कुछ देवताके नामपर मैं चढ़ा सकता हूं या नहीं ?"

उसने कहा—"मैंने एक आदमीके योग्य ही विष तैयार किया है।"

साक्रटीसने कहा—"ठीक है, मैं समझ गया। मुझे देवताकी प्रार्थना करनी ही चाहिए। मेरा यह प्रवास सुखका होगा।"

इतना कह कर साक्रटीसने कटोरा अपने ओठोंसे लगाया और उसी शान्ति तथा धैर्यके साथ विष पी गया। अबतक साक्रटीसके मित्रों और शिष्योंने अपने मर्मभेदी दुखको बड़ी कठिनाईसे रोका था, किन्तु उसे ज़हर पीता देखकर कोई२ धीरे २ और कोई२ पुकारकर रो उठे। वह मंडल साक्रटीसके लिए नहीं रोया था, बल्कि उनका सबसे उत्तम मित्र और आदर्श गुरु सदाके लिए प्रयाणपर उद्यत हो गया था। क्रीटोसे भी आंसू न रोके गये और वह बाहर निकल कर रोने लगा। उस दिन भर साक्रटीससे बातें करनेमें जो हँसते रहे थे उनसे भी आँसू न रोके गये। किन्तु साक्रटीसके मुखपर वही शान्ति और प्रसन्नता विराज रही थी। उसने सबसे कहा—" मेरे मित्रो और शिष्यो ! तुम यह क्या कर रहे हो ? मैंने इस ही लिए यहाँ स्त्रियोंको नहीं रहने दिया। मनुष्यको शान्तिसे मरना चाहिए, तुम सब शान्त हो।"

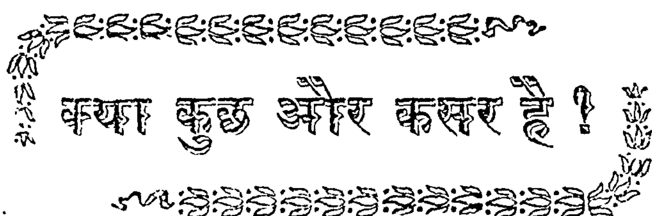
साक्रटीसके मुंहसे यह बात सुनकर सबको लज्जा आई, और अपनी मानसिक निर्बलता दबानेकी सबने चेष्टा की। दूसरी ओर साक्रटीस टहल रहा था। थोड़ी देरमें उसे उसके पांव झनझनाते मालूम होने लगे, पहलेकी सूचनाके अनुसार वह लेट गया। थोड़ी देर बाद ज़हर देनेवाला आदमी हरएक अंगको दाब २ कर पूछने लगा कि स्पर्श मालूम होता है क्या ? साक्रटीस कहता जाता था " नहीं होता।" थोड़ी देर बाद साक्रटीसने कहा—" जब यह हृदयपर पहुंचेगा तब मैं

जाऊंगा। " थोड़ी देर तक वह निस्तब्ध आँखे मूंदे रहा। फिर उसने अपने अन्तिम शब्द कहे–"क्रीटो, मैंने एक्लिपियस देवताकी एक भेट चढ़ानी सोची थी, उसे तू मत भूलना। "

क्रीटोने कहा–"मैं चढ़ा दूंगा। आपकी और कुछ इच्छा है ?

इसका उत्तर साक्रटीसने नहीं दिया। थोड़ी देरमें उसके मूँहपर पड़ा हुआ कपड़ा हटाया गया। उसकी दृष्टि स्थिर थी और मुखपर वैसी ही शान्ति विराज रही थी।

इस प्रकार उस अद्वितीय तत्वज्ञानी महात्मा, निस्पृही और आदर्श पुरुषकी मृत्यु हो गई। साक्रटीसकी मृत्यु ईसासे ३८८ वर्ष पूर्व हुई, किन्तु वह आज भी हृदय २ में जीवित है। यदि हो सका तो इस अद्वितीय तत्वज्ञानीकी जीवनी पाठकोंकी भेट करूंगा।



क्या कुछ और कसर है ?

लेखक:–श्रीयुत ब्र० भगवानदीनजी।

ऋषभ भगवान्‌को हुए यदि अर्बों वर्ष बीत गये, तो महावीरस्वामी तो कल हुए ! सुनते आते हैं कि यदि बनते२ हज़ार वर्ष लगते हैं, तो बिगड़ते२ भी कमसे कम उतने ही दिन लग जाते हैं। परन्तु हमारे विषयमें यह बात लागू नहीं होती ! इस लोकोक्तिसे भी हम अपरिचित नही हैं कि १२ वर्षमें घूरेके भी दिन फिरते हैं। पर हमारे लिए आज २४०० चौवीस सो वर्ष बाद भी यह कहावत काम नहीं दे रही ! न मालूम समयकी कसोटीपर अनेक वार कसे हुए सिद्धान्त भी आज हमारे लिए क्यों असत्य सिद्ध हो रहे हैं ? क्या हम कोई अलौकिक–पुरुष–समुदायसे सम्बन्ध रखते हैं ? सूरत–शक्ल, चाल-ढाल, बोली–बाणी,

गुणावगुणमें तो हम और मनुष्यों जैसे ही दीख पड़ते हैं। विद्वान बनने-के लिए हमारे पास साहित्य भी बहुतेरा है। इज्जत आबरूसे रहनेके लिए यदि हमारे पास बहुत धन नहीं तो हिन्दुस्तानमें रहनेके लिए कम भी नहीं है। हमारा रहन–सहन, रीति–रिवाज़ भी औरोंसे मिलते जुलते हैं। फिर और सब क्यों बढ़ते जारहे हैं और हम क्यों घटते जा रहे हैं? १० वर्ष बाद जब भी हमारी जांच हुई, तब कभी सेर भर कम और कभी २ सेर! दूसरोंमें कोई १० सेर बढ़ा और कोई ५ सेर! कहीं जिस समताकी तराजूसे तौल२ कर हम व्यापार कर रहे हैं वही हमारे रोगका कारण न हो? जैसे कोई बड़ा दूकानदार यदि एक आदमी इसीलिए नियत कर दे कि वह दिन भर केवल पुड़ियां ही पुड़ियां बांधा करे; और दूसरेको कह दे कि वह केवल हिसाब ही हिसाब रक्खा करे; और तीसरेको केवल इस बातपर ही नियत कर दे कि वह यह जांच रक्खे कि, कौनसी चीज़ आज कम हो गयी है और उसीको मंगा लिया करे। इस सुप्रबंध और कार्यविभागसे साल भरके अन्तमें उसको भारी लाभ होगा, परन्तु इसकी देखादेखी कोई छोटा पंसारी भी ऐसा ही प्रबंध कर डाले और सालके अन्तमें, जब भारी टोटेके कारण दिवाला निकलने लगे और लोगोंके पूछे जानेपर कहने लगे कि, मैंने तो अपने पड़ौसी दूकानदारके अनुसार ही प्रबंध किया है, फिर जब उसको लाभ रहा तो मुझको क्यों नहीं होना चाहिए, तो हम उसका उत्तर सुन कर, सिवा हंस देनेके और क्या कहेंगे? उसको नफ़ा जब ही रह सकता था, जब वह पुड़िया बाँधनेका काम, हिसाबका काम, और जांचका काम एक ही के सपुर्द करता, अर्थात् अपने पड़ोसीके सामने विषमताकी तराजूसे व्यापार करता। हम किन्हीं कामोंको दूसरोंके समान करनेसे लाभमें रह सकते हैं तो किन्हीं कामोंको बिलकुल दूसरोंके प्रतिकूल करनेमें ही लाभ उठा सकते हैं।

हिन्दुओंकी संख्या हिन्दुस्तानमें २७ करोड़ है, उनमें ४ वर्ण और अनेक जातियाँ हैं। एक २ जातिकी संख्या करोड़ २ पौन २ करोड़ है, अर्थात् कुल जैन संख्यासे भी कई गुना ज्यादा है। ऐसी अवस्थामें उनको हमारी अपेक्षा अलग २ रहनेमें ही लाभ है। परन्तु जब वे भी अपनी तुलना दूसरे धर्मवालों—इसाई—बौद्धोंके साथ करते हैं, तब यही कहते हैं कि सबको एक हो जाना चाहिए। वे कहते ही कहते नहीं परन्तु इस प्रकारकी अमली कार्यवाहियाँ भी उनमें ज़ोरशोरके साथ प्रारंभ हो चली हैं। जैसे बंगाली और कनौजी, पंजाबी और गुजराती सनाढ्य और गौड आपसमें रोटी बेटी व्यवहार एक करते जा रहे हैं। ऐसा करना ठीक ही है, क्योंकि असलमें वे कोई दो थोड़े ही हैं। किसी मतलबसे अलग २ हुए थे, अब वह मतलब निकल गया, अब फिर एक। तब हम, जिनकी संख्या किसी गिनतीमें नहीं, कहां रहे?

जैनोंकी संख्या हिंदुओंकी अपेक्षा बहुत कम है इसलिये इनको उनकी अपेक्षा एक होनेकी चिन्ता अधिक होनी चाहिए थी, परन्तु हो रहा है इसके प्रतिकूल। जैनोंके कानोंपर अभी जूं तक नहीं रेंगी। हां, इसमें संदेह नहीं कि पड़ौसके कारण व्यक्तिपर इसका ज़ोरका असर पड़ा है, परन्तु सामाजिक आन्दोलन विना, व्यक्ति बिचारा करे तो क्या करे। बात बिलकुल सच्ची होनेपर भी विना प्रसिद्धि पाये जनता द्वारा स्वीकार नहीं की जाती। प्रसिद्धिके लिए निरन्तर आन्दोलनकी आवश्यकता है। उस आन्दोलनका कोई चिन्ह अब तक जैनसमाजमें नहीं दीख पड़ा। इसलिये हमारा यह कहना, कि अभी कानोंपर जूं भी नहीं रेंगी, अत्युक्ति नहीं किन्तु वास्तविक है।

इस विषय पर विद्वानोंने साहित्यके द्वारको भी जोरके साथ तो क्या, धीरे २ भी नहीं खटखटाया, परन्तु साहित्य देव हमारी सहायता ही क्या कर सकते हैं? इतिहासके पन्ने चिल्ला २ कर बता रहे हैं कि

लाख मन साहित्य इतना काम नहीं करसकता जितना काम छटांकभर उदाहरणसे निकाला जासकता है। उदाहरणोंके उपस्थित करनेमें व्यक्ति जान बूझकर गड्ढामें गिरता ज़रूर है, परन्तु कब एक गेहूंके दानेके जमीनमें गिरकर नष्ट हुए बिना १०० दाने पैदा हुए ? सेंकडों रुपया इश्तिहारकी भट्टीमें झोंक देनेसे लाखों रुपयेका रसायन तैयार हो ही जाता है। अगली पंक्तिके सिपाहियोंके गोलीके स्वागत लिये छाती खोले बिना पिछली पंक्तिके सिपाहिओंको कब विजयके दर्शन हुए ? सफलताकी देवी कभी बिना भेंट प्रसन्न ही नहीं हुई। जब आम बोते हैं आम उगते हैं। बबूल बोनेपर कांटे नसीब होते हैं। साहित्य बोओगे साहित्य काटोगे; उदाहरण बोओगे उदाहरण काटोगे। इसलिए अब उदाहरण बोये जानेकी आवश्यकता है अर्थात् ऐसे मनुष्योंकी ज़रूरत है कि वे धड़ाधड़ जाति परिधिको तोड़कर धर्म परिधिमें जा मिलें, कमसे कम वर्ण परिधिमें आना तो अत्यावश्यक है। वैश्यवर्ण वैश्यवर्णमें तो रोटी--बेटी व्यवहार तुरन्त शुरू हो जाना चाहिए। सौभाग्यसे या दुर्भाग्यसे जैनोंका समुदाय वैश्यवर्णसे ही बना हुआ है इसलिए हमको बहुत शीघ्र यह कहनेका सौभाग्य प्राप्त हो सकेगा कि जैन २ सब एक। यह वाक्य कितना मीठा लगता है, न मालूम कार्य और उसका फल कितना रस पूर्ण होगा ? और क्यों न हो, ऐक्यका सत खींचकर ही धर्म तत्वकी प्राप्ति हुई है। ऐक्यता ही से आज उन्नति देशोंने उन्नति प्राप्त की है। जहाँ अनैक्यता है वहांकी दशा सुधारना कष्ट साध्य ही है।

ऐसा करनेके लिए हम तुमको उपदेश नहीं देते परन्तु शास्त्रोंकी आज्ञाको आप लोगोंको सुनाते हैं; इसलिए उपर कहे हुए वाक्योंका इसी प्रकार आदर करना चाहिए मानों तीर्थंकर भगवान् स्वयं आपकी दशापर दया खाकर पुकार२ कर कह रहे हों। "जातिभेदका जब हमारे ग्रंथोंमें कथन तक नहीं है तब तुमने यह नवीन रोग कहांसे मोल लिया? तुमने हमारी आज्ञा भंग करनेमें तनिक भी भय नहीं माना ? क्या तुमने

हमारा संसारमें अवतरण भेदभावके लिए समझ रक्खा है? क्या हम मनुष्य मनुष्यमें भेदभाव फैलानेके लिए पैदा हुए थे? क्या प्रेम और ऐक्यको नाश करना तुमने हमारे धर्मका अर्थ समझ रक्खा है? क्या तुमको ज़रा भी ख्याल नहीं रहा—शेर और बकरी, बिल्ली और चूहे जन्मके वैरी एक जगह बैठकर भोजन करते थे? क्या गायके बच्चेको सिंहनीका दुग्ध पीते तुमने नहीं देखा था? क्या बाज़ कबूतरोंके बच्चेको चुग़ा नहीं देते थे? क्या इन सब बातोंसे तुमने यही शिक्षा ग्रहण की कि मनुष्य-जातिमें भी भेदभाव कर डाला? धन्य है, तुम्हारा शास्त्रावलोकन और धन्य तुम्हारी समझ! प्रेमके प्रभावको ही तुम लोग नहीं समझ पाये? यह प्रेमका ही प्रभाव था जो गायके बच्चेको सिंहनीका दुग्ध हजम ही नहीं हुआ, किन्तु उसको पीकर वह पुष्ट भी हुआ। धर्म-प्रेम यदि संखियेको मिश्री और परम अपवित्रको पवित्र न बना सके तो धर्म—प्रेम ही क्या? तुम प्रेम करना सीखो और मनुष्य२ सब प्रकार मिलकर रहो। हमने शास्त्रोंमें वर्णभेदकी स्थापना की है सही जब हम गृहस्थ थे, परन्तु पारस्परिक रोटी-बेटी व्यवहारकी रोक—टोक कहीं नहीं की। ब्राह्मण तकको शूद्रकी कन्या लेनेका विधान उनमें मौजूद है। परन्तु शोक! महा शोक!! तुम आंखसे पट्टी बांधकर अकेले वैश्य वर्णमें ऐसा अन्याय कर रहे हो। अग्रवाल, खंडेलवाल, परवार, पल्लीवालमें भी आपसमें रोटी—बेटी व्यवहार नहीं। कहीं इस भेदभावका ठिकाना है? अपनी जातिमें विवाह करना तो मानों अपने गोत्रमें ही विवाह करना है, क्योंकि जातियोंकी जनसंख्या ही कितनी रह गयी है? तुमने बुद्धि और विचारको एकदम उठाकर रख दिया है। तुमको हमने सिखाया था एक होकर रहना, परन्तु आज तुम शब्द२ पर लड़ते और क्रिया२ पर झगड़ते हो। एक होकर बैठो और "अहिंसा परमो धर्मः"के परम पवित्र सिद्धान्तको ज्यादा कलंकित न करो।

यह तो रही तीर्थंकर भगवान्‌की बात, परन्तु हम यह कहते हैं कि

शास्त्रोंकी रचना केवल इसलिए की गयी है कि हम अपनी बुद्धिको, मूल सिद्धान्त समझकर, क्रियाओंके मैदानमें, स्वाधीन और स्वच्छंद छोड़ दें। अगर एक गुरु तौलनेके बांट बनाकर हमको गेहूं तौलकर दिखला देता है तो वह यह नहीं कहता कि वे बांट गेहूं तौलनेके लिए हैं, परन्तु उस प्रकारकी अनेक चीज़ोंको समयानुसार तौल सकनेका उपदेश देता है। तीर्थंकर भगवानकी वर्ण स्थापना हमको केवल यही शिक्षा देती है कि समयानुसार तुम मनुष्य जातिके विभाग भी कर सकते हो, वैसे मनुष्य-जाति सब हक ही है। रहना तो सबको सब प्रकार मिलकर ही चाहिए, परन्तु समय विशेषपर यह मूल नियम भी तोड़ा जासकता है। यदि वे ऐसा न कर जाते तो जातियाँ बनाकर, एक समय जब हमारी रक्षा हो सकी थी, कदापि न हो सकती। ज़रा तो सोचिये, ऋषभ भगवान्ने हमको हल बनाकर दिया और खेती करना सिखलाया तो क्या यह नहीं सिखलाया कि यदि तुमको नदीसे दूर निवासका अवसर आन पड़े तो तुम नहर भी निकाल लेना या मरु भूमिमे रहना पड़े तो तालाब भी बना लेना? उन्होंने हिंसक पशुओंसे बचनेके लिए अगर तलवार बनाना सिखलाया तो क्या यह नहीं सिखाया कि यदि जर्मनी जैसी वन्य मनुष्य जातिसे पाला पड़ जाय तो तोप और पनडुब्बी भी बना डालना? फिर न मालूम जैन जनता आज क्यों बात२ पर जान दे रही है?

समाजकी उन्नतिके रंगमें रंगे, समाजोन्नतिकी भंगमें मस्त, धर्म-मर्मके नशेमें चूर भव्य जीवों! तुम इस तत्वको भली भांति समझो और एकताका झंडा अपने हाथमें लेकर जाति भेदके रणस्थलमें एकदम कूद पड़ो, कुरीतियोंका सर धड़से अलग कर दो! जाति भेदका गला दबोच दो! अनैक्यको देश निकालकी सज़ा दो! और अधर्मकी मुश्कें बांधकर जेल खानेमें पटको और आपसकी बुराई रूपी उसके बाल खींच २ कर पूंछो-

"क्या कुछ और कसर है?"

"क्या कुछ और कसर है?"

हमारी प्रथायें।

(लेखक-गौरीशंकर द्विवेदी.)

छंद.

१

गाय बैलोंकी तरह निज पुत्रियोंको बेंचते,
हा शोक है! हा शोक है!! श्री राम राम! हरे हरे!!
छै सालकी कन्या अगर है मर्द है उनतीसका,
व्याह क्या-अंधेर है, बाज़ार है ये फीसका।

२

कन्या विचारी होत है, यौवन अवस्थामें जभी,
पालकी मृतकी सजाकर, स्वर्ग जाते मर्दजी;
फिर भी कहौ व्यभिचार तुममें क्यों न होवें विप्रवर,
निज हस्तसे ही मारते, कुठार निज ही पैर पर।

३

पुत्र जन्मेकी खुशी होती है, सबको अधिकतर,
होवैं बधाई रात दिन, रुपया उड़ावैं खूबतर;
जन्म यदि कन्याका हो, क्यों शोक है होता कहो!
मेरी समझमें सिवा इसके और नहिं कोई अहो!

४

की, सौ या दो सौका उसे, दायज अकेला चाहिए,
व्याहके कारण उन्हें, बहु कर्ज़ लेना चाहिए;
व्याह आदिकमें सदा, ये ही समझते धर्म्म हैं,
जैसे बनै तैसे बनै, पर खर्च करना कर्म्म है।

५

सब घर भी यदि दे दो उन्हें, नहिं पेट उनका कहुँ भरै,
बाप लड़कीका बिचारा, हाथ जोड़ैं नित फिरै;
होके विदा जाती है ज्यों, कन्या बिचारी सासरे,
किलकिल सदा वे ही करैं, जाती है जिनके आसरे।

६

पति भी उसे कहता है नित, "मैं चाहता तुव मोंचना"
सास ननदी रात दिन, देती हैं उसको टोंचना—
—'कि तुम्हारे बापने, मालाने कुछ है नहिं दिया'
किस पर है री! तूँ ऐंठती, ये ब्याह हम व्यर्था किया।

७

कहुँ कहुँ तो यहँ तक होत है, पूँछे न कोई बात भी,
गाय बैलोंकी तरह, होती है तिनकी घात भी;
केवल, इसी दुखसे कोइ, करतीं पतिव्रत भंग हैं,
ईसाई मुसल्मां के याँ, जावैं रहैं जहँ रंग में।

८

ये ही नहीं—कोई करैं, निज आत्माका घात भी,
तो भी नहीं आती दया, सुनियो ज़रा मम भ्रातजी;
सहतीं विचारीं ओरसे, कन्या हैं नित ये ही विथा,
माता पिता होते दुखी, सुन सुनके बस, ये ही कथा।

९

बस इसी दुखके लिये, पड़ती है उनपर गाजसी,
गाल सा इकदम दवा, लेती हैं आंधी लाजकी;
पड़ता है सारा पाप ये, जो ले गये हैं ब्याह कर,
केवल उन्हीं पर ही नहीं, उस ज्ञातिके ही पंचपर।

१०

सुनियो! सकल प्रिय पंचगण, तेहि ते भनै 'शङ्कर' सदा,
कर कर सभा निज ग्राममें, अजहूँ तजो इन एकदा;
सास अरु ननदी जभी, निज धर्म्मको जानें यहाँ,
बहूको बेटेसे बढ़कर, प्रेमसे मानें यहां ।

११

अबला बहू निज कर्म्मको, जिसके कि 'मुंह' होता नहीं,
जाने सदा निज कर्म्मको, अरु धर्म्मको खोवै नहीं;
खानेसे मतलब है नहीं, 'मुँहसे' सुनो ! यहँपर अहो,
पर बोलने अरु चालनेसे, अर्थ याँ पर तुम गहो ।

१२

सासकी सेवा करैं, पुस्तक सुनावैं नेम सों,
अर्थ तिसका सर्वदा, उनको जतावैं नेम सों;
रामायण आदिक ग्रंथ वे, हर दम समझलैं आप ही,
नित सत्य कहँ 'शङ्कर दुबे' उन्नतिकी आशा है तभी।

१३

पहिले पहिल सन्तानका, गुरु कौन है ? हमसे कहो !
बस, छोड़के माताको, इस जगमें नहीं कोई अहो !
गीली मिट्टीकी तरह, सन्तानको जानो सदा,
कुम्हार जैसी चाहता, वैसी बनाता है तदा ।

१४

पर पकके ज्यों ही हो गई, तैयार वो मिट्टी अगर,
शक्ती नहीं कुम्हारकी, मच्छीको कर देवे मगर;
सोई दशा सन्तानकी, हरदम है होती मित्रवर,
छुटपनसें जैसी चाहते, वैसी बनालो मोड़कर।

१५

गादर अवस्था हो गई, ज्यों ही सुनो! मेरे द्विजो,
होंगी नहीं वे ठीक, चाहे, लाख तुम क्यों ना करो;
　　माताको तिससे सर्वदा, शिक्षित ही होना चाहिये,
　　तिससे हमेशा पुत्रियोंको, नित पढ़ाना चाहिये।

१६

हुलसी सरीसी मात याँ, होनें लगैं यदि जगतमें,
एक दो नहिं, सैकड़ों, तुलसी कवी हौं भगतमें;
　　देश अरु निज ज्ञातिका, उपकार जो कुछ चाहते,
　　बन हार इकदम जुट पड़ो, 'शङ्कर' यही समझावते।

१७

री लेखनी! विश्रामकर, अब मत बखाने निज विथा,
गाती यदी तू जायगी, बढ़ जायगी यह बहु कथा;
　　'शङ्कर' भनै प्रिय लेखनी, अवसर मिले फिर गाइये,
　　सज्जनोंको अवशि नित, मनकी दशा दर्शाइये।

१८

श्रवण कर जिसको करै, शिक्षा उसीका नाम है,
नहिं लेख, लेखक, लिख्यका, लिखना सदा निष्काम है;
　　पाठको! विनयी, विनय, करता दिवस अरु रैन है,
　　राधारमण! पूरण करो, मम कामना सुख दैन है।



समाज-सेवा।

(लेखक-श्रीयुत पं० रामेश्वरप्रसाद शर्म्मा)

वह देखो, देश भरमें जिसका प्रभाव छाया हुआ है, जिसके डरसे लोग थर थर काँप रहे हैं, जिसके इशारे भरसे ही देशमें हलचल मच जाती है, जो आनन्द और आमोद-प्रमोदसे इन्द्र हो रहा है उसका अंतिम समय आ गया है। देश भर में लोग ऊपरसे तो नहीं, किंतु मन ही मन उसके शीघ्र ही समाप्त हो जानेकी ईश्वरसे प्रार्थना कर रहे हैं। केवल उसके समीपी संबंधियों और उससे उपकार पाये हुए कुछ इने-गिने व्यक्तियोंके सिवा उसकी इस दशाको जानकर किसीको भी शोक या कष्ट नहीं।

अंतमें कुछ ही समय बाद वह व्यक्ति चल बसा। लोग उसके लिये कुछ थोड़ासा ऊपरी दुःख दिखलाकर उससे मानों हमेशाके लिये संबंध तोड़ बैठे। कोई अब उसका नाम स्वप्नमें भी नहीं लेना चाहता। जब कभी लोगोंमें परस्पर कुछ बातें हो उठती हैं तो सिवा उसकी निन्दा और बुराईके उसके संबंधमें कोई और कुछ बातें नहीं करता।

पर इधर देखो, देश भरमें जिसकी बातोंको विना किसी प्रकारका प्रभाव या भयके ही लोग ईश्वरका आदेश मानते हैं, जिसके होंठ हिलानेसे ही देश भरमें लोग प्राणों तकको विसर्जन कर देनेमें उद्यत हो जाते हैं, जिसके निष्छल और दया पूर्ण कार्योंका स्मरण कर लोग मन ही मन आनन्दके समुद्रमें गोते लगाने लगते हैं, आज उसीका अन्तिम समय आगया है। देश भरमें हाहाकार मच गया है। लोगोंके हृदय अश्रु परिपूर्ण हो गये हैं। जिधर देखो उधर ही स्थान स्थानपर लोग उसकी मङ्गल-कामना करते हुए ईश्वरसे उसके चिरजीव होनेकी प्रार्थना कर

रहे हैं । कहना न होगा, इस व्यक्तिके दुःखको लोग अपने कुटुम्ब अथवा अपने शरीरका दुःख मानते हैं ।

हाय ! थोड़े ही समय बाद वह भी चल बसा ! लोगोंके हृदय विदीर्ण हो गये । देश भर में शोकका अँधकार छा गया । जिधर देखो, उधर ही उसकी गाथा गा गाकर लोग अनेक प्रकारसे वियोगका शोक प्रकाशित कर रहे हैं । लोगोंके हृदयोंमें उसके उठ जानेसे वज्रका सा आघात पहुँचा है ।

समय व्यतीत होने लगा । पर उसकी गाथा दिन दूनी बढ़ने लगी। लोगोंके हृदयोंमें रह रहकर उसका नाम कसक मार जाता है, लोगोंमें जहां कहीं उसके सम्बन्धकी बातें हो उठती हैं, उसकी प्रशंसा सुन पड़ती है । ज्यों ज्यों समय व्यतीत होता जायगा त्यों त्यों उसका नाम और भी प्रकाशमान होकर संसारमें प्रकट होता जायगा । वास्तवमें मरने पर भी यह व्यक्ति अब तक जीवित है और भविष्यत्‌में भी दीर्घ काल तकके लिये जीवित बना रहेगा । सच है—" कीर्तिर्यस्य स जीवति" जिसकी कीर्ति है वह जीवित है ।

पाठकोंने इन दोनों मनुष्योंका उदाहरण देखा । उनकी समझमें आगया होगा कि इन दोनोंमें इतना अन्तर क्यों हुआ । वास्तवमें बात यह है कि प्रथम व्यक्तिने मनुष्य-समाजकी सेवा करना अपना कर्तव्य नहीं समझा था और इसी कारण वह आजन्म इस कार्यसे मुख मोड़ रहा था । पर दूसरेने मनुष्य समाजकी सेवाके लिये ही अपना जीवन अर्पण कर रक्खा था उसको उसने अपना परम कर्तव्य और सच्चा व्रत माना था ।

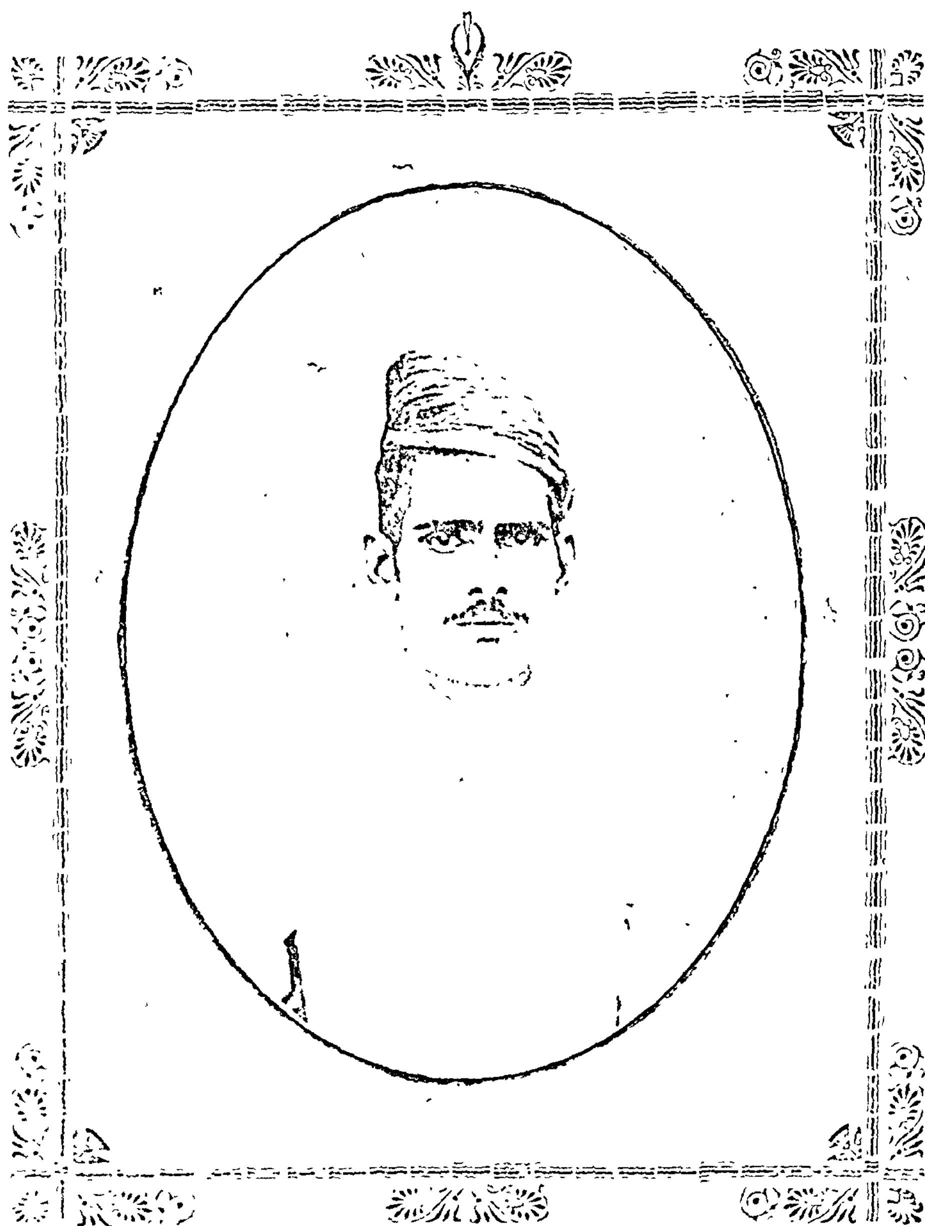
पहला व्यक्ति अनेक प्रकारका प्रभुत्त्व रखनेपर भी अनेक प्रकारके भय और प्रभावसे लोगोंके हृदयोंपर शासन जमाने पर भी संसारमें अमर न बन सका । पर दूसरा एक दीन-हीन होने और किसी प्रकारका प्रभाव अथवा भय न डालनेपर भी अमर बन गया, यह केवल समाजकी सेवाका ही फल था ।

मुनि



कर्मवीर महात्मा मोहनचंद कर्मचंद गांधी।

'जैनविजय' प्रेस-सूरत



समाजके लिये जीवन अर्पण करनेवाले महात्मा

पं० अर्जुनलालजी सेठी बी. ए.

संसारमें पैदा होना और मरना मनुष्य मात्रके लिये एक ध्रुव सिद्धान्त है। पर जिन लोगोंने संसारमें आकर संसारके हितके लिये-समाजके हितके लिये कुछ न किया उनका पैदा होना और मरना एक सा रहा। हाँ जिन लोगोंने उसका कुछ उपकार किया, जिन लोगोंने उसके हितमें अपना जीवन लगाया उन्हींका पैदा होना और मरना सफल हुआ। वे ही लोग महात्मा माने जाकर मर जानेपर संसारमें जीवित हैं। लोग आदरके साथ उन्हींके नामोंका बार बार स्मरण करके अपनेको धन्य मानते हैं।

पाठक, अब स्वयं निश्चय कर लें कि उनका कर्तव्य क्या है। अब समाजकी सेवामें हर प्रकारसे लवलीन होकर क्यों न वे अपने जीवनको सफल करें ?

हमारी वर्तमान स्थिति और उसके सुधारके उपाय।

(लेखक–श्रीयुत पं॰ रामेश्वरप्रसाद शर्मा।)

जब हम नजर उठाकर अपने देशकी ओर निहारते हैं तब हमें बड़ा ही दुःख होता है। हमारा हृदय देशकी दुर्दशाको देखकर विचलित हो जाता है। हम सोचने लगते हैं कि भगवान्, हमें मनुष्य जन्म मिलकर हमारी ऐसी दुर्दशा क्यों हो रही है! देशमें अनेक प्रकारकी बीमारियों-का बढ़ना, असमयमें ही हमारे हज़ारों नव युवकोंका कालके गालमें जाना, दरिद्रताका ज़ोर–शोरसे बढ़ना, विधवाओंकी संख्यामें उन्नतिका होना आदि२ सब हमारे ही दुष्कर्मोंके–हमारी ही अज्ञानताके फल हैं। हम

इस बातको जानते हुए भी कि हमारा देश अविद्याके घोर अन्धकारमें फँसा हुआ है, विद्यादानके लिये कभी तैयार नहीं होते और न कभी हम विद्याके प्रचारके बढ़नेके लिये अपने धनका कोई हिस्सा लगाते। देशमें कुरीतियोंकी घनघोर घटा छाई हुई है तो भी हमारी आंखें उसकी ओर नहीं जातीं। हमारा समाज अन्ध विश्वासी, अन्ध दानी और कर्तव्य-कर्मोंसे विमुख हो रहा है। उसमें ज्ञान नहीं कि वह भली–बुरी बातोंको पहचान सके।

हम लोग व्यर्थ ही अपने अमूल्य पैसेको, अपने श्रमको, अपनी योग्यताको, अपने बलको नष्ट कर देते हैं; देशके हित अथवा समाजके हितमें हम कभी कोई ध्यान नहीं देते। हमारी दशा इस समय ठीक वैसी हो रही है जैसा कि एक ऐसे मनुष्यकी होती है जो अपने पेटकी ज्वालाको शान्त करनेके लिए कानोंके द्वारा अन्न पेटमें पहुँचाना चाहता हो। वास्तवमें जो कार्य देशके लिए लाभजनक हैं, जिनसे देश और समाजका कुछ भला हो सकता है, हमारी दृष्टिमें उनका कुछ भी मूल्य नहीं। जो काम पाखंडसे भरे हुए हैं, जिनसे समाज और देशकी हानिके सिवा लाभ कुछ नहीं, हमारी सारी शक्तियाँ उन्हींमें व्यय होती हैं। ऐसा होनेसे हमारे दुःखोंमें कमी होनेके बजाय बढ़ती ही होती जाती है।

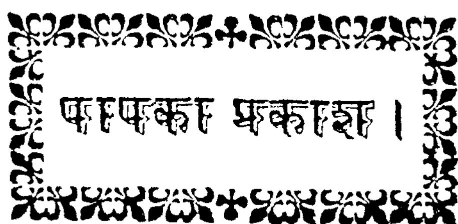
आप सोच सकते हैं कि जिन कार्योंको आप उत्तम और लाभजनक समझ रहे हैं, उनसे देश या समाजका वास्तवमें कुछ भी हित नहीं हो रहा है। देश और समाजके हितके लिए जो काम आवश्यक हैं, वे वास्तवमें आपके उन उत्तम कार्योंसे विभिन्न हैं। देशका हित तभी हो सकता है जब देशमें विद्याका अन्धकार दूर हो, लोगोंमें तन्दुरस्ती बढ़े, देशसे दरिद्रता और कुरीतियोंका नाम मिटे।

पर आपके मन्त्रों, जादुओं और मुक्ति पानेके तरीकोंके सामने कहिए, इन कार्योंका मूल्य क्या है? आप क्या समझते हैं कि किसी

विद्यालयको दान देना सच्चे देशोपकारका कर्म है? आपकी बुद्धिमें क्या कभी यह बात आसकती है कि जनताके स्वाथ्य बढ़ानेके लिये, देशसे दरिद्रताको दूर करनेके लिए आपका धन उपकारी हो सकता है?

आप क्या कभी अपनी वर्तमान दीन-हीन स्थितिको देखकर दुःखी होते हैं? आप क्या अपने स्वार्थको किसी अंशमें तिलाञ्जलि देनेको तैयार हैं? क्या आप जानते हैं कि आपका देश, आपका समाज, आपकी जाति, आपके मुहँकी ओर टकटकी लगाये देख रही है? क्या आप उसका कुछ हित करनेके लिए तैयार हो सकते हैं? क्या आपका हृदय अपनी दुरवस्थाको देखकर कुछ भी विचलित होता है? यदि होता है तो आप कटिबद्ध हो जायँ और अपने और अपने भाइयोंके दुःख दूर करनेका प्रयत्न करने लगें।

मित्रो, आप सब समाजके एक एक अङ्ग हैं। समाजका हित और देशका हित एक ही बात है। आप यदि अपने कर्तव्यका उचित रूपसे पालन नहीं करते तो मानों आप समाजके एक अङ्गके बेकाम होनेका कलङ्क अपने सिर लेते हैं। क्या आप इस कलङ्कको दूर करनेके लिये तत्पर न होंगे?



पापका प्रकाश।

(लेखक—श्रीयुत् महात्मा केशवचन्द्र सेन।)

मेरे हृदयमें निरन्तर यही गूँजा करता हूँ कि मैं पापी हूँ, मैं पापी हूँ। दो पहरको, सुबहको, शामको, हर समय जब तक मैं जागता रहता हूँ तब तक मैं इस पापके भानको अपने हृदयसे हटा नहीं सकता। संसारमें चोरी, लूटमार आदि पाप कहे जाते हैं, पर मेरे यहाँ

अर्थ और ही है। हृदयका काँटा, मनकी पीड़ित दशा और दुर्बलता, यही मेरे यहाँ पापका अर्थ है। मेरा मन पापी होनेकी कल्पनाको भी पाप ही मानता है। पापयुक्तको ही पाप मानकर मैं संतुष्ट नहीं हुआ, बल्कि पापी बननेकी योग्यताका होना, पापका पात्र होना यह भी मेरे मनको व्यथित करता है। अन्तरात्माका प्रकाश जब पहली ही वार मेरे हृदयपर पड़ा तब प्रमाद, जड़ता अनेक प्रकारकी विषयाभिलाषायें आदि छोटे-बड़े पापोंको भी मैंने देखा। ये सब वहाँ गुप्त रूपसे छुप रहे थे। यदि अन्तरात्माका प्रकाश उनपर पहले ही से पड़ा होता तो वे वहाँ आज दिखलाई भी नहीं पड़ते। काम क्रोधादिके कारण भी तब तक ही हैं जब तक यह स्थूल शरीर है। मेरे कहनेका यह अभिप्राय नहीं है कि मनुष्य पापमें ही पैदा हुआ है; पर जब मनुष्यकी प्रवृत्ति वासनाओंकी ओर झुकती है तब वह प्रवृत्ति पापसे पैदा होती है। जब किसीकी धन-सम्पत्ति देखकर क्षणभरके लिए भी मेरे मनमें यह विचार पैदा होता है कि यदि इसकी धन-सम्पत्ति मुझे मिल जाय तो कैसा अच्छा हो, तो उस समय मैं अपनेको सचमुच चोर समझता हूं। जब जीवन संकटमें आ पड़ता है और मनमें निर्बलता आजाती है तब झूँठ बोलनेमें आ जाता है, चाहे यह झूँठ प्रत्यक्षमें असत्य मालूम न हो पर तौ भी अपने सामनेवालोंके मनके ऊपर बुरा असर उत्पन्न करनेवाला हो जाता है। यह पाप है। इसी प्रकार वास्तवमें मैं जो कुछ हूँ उससे तनिक भी यदि अपनेको उच्च समझूँ, उसका नाम अभिमान है। दूसरोंके बजाय मैं हृदयमें अपने आपको अधिक पसंद करूँ और दूसरोंके सुखकी अपेक्षा अपने सुखके लिए अधिक प्रयत्न करूँ, यह स्वार्थपना है। यह भी बड़ा पाप है। इस भांति मैं नित-प्रति अपने हृदयमें ऐसे छोटे-मोटे पापोंको विष्टाके कीड़ोंके भांति घूमते देखता रहता हूँ। मैंने अपने अंतिम चवालीस वर्षोंमें ऐसे कितने ही पाप किये हैं कि यदि मैं उनकी गिनती करने बैठूँ तो संख्या करोड़ोंपर जा पहुँचेगी। मेरे हृदयमें अन्तरात्माका

बलवान प्रकाश इतनी अधिकतासे व्याप्त हो रहा है कि मुझे उसमें सूक्ष्मसे सूक्ष्म पाप भी दिखलाई पड़ जाते हैं। यह पापका प्रकाश मुझे असह्य दुःख पहुँचाया करता है। मैं अपने मनकी स्थितिका इतना बलवान साक्षी हूँ मानों मेरा जन्म पाप गिननेको ही हुआ हो। सुबहसे लेकर शाम तक मैं इन्हीं पापोंको गिना करता हूँ। ये पाप क्षणमें स्वार्थके रूपमें, क्षणमें अभिमानके रूपमें, क्षणमें लालसाओंके रूपमें, क्षणमें धन-दौलतके गुमानके रूपमें और क्षणभरमें किसी और दूसरे ही रूपमें मुझे दर्शन दिया करते हैं। इसकी गिनती मेरी बुद्धि नहीं पर हृदय करता है। मेरा हृदय सदा प्रज्वलित रहता है। उसे क्षण भरके लिए भी अवकाश नहीं। जैसे मकड़ीके जालेमें ज्यों ही कोई मक्खी आकर फँसी और मकड़ीने उसे पकड़ा, ठीक इसी तरह ज्यों ही मेरे आध्यात्मिक शरीरमें पाप रूपी मक्खी फँसी त्योंही मेरा हृदय उसे पकड़ लेता है।

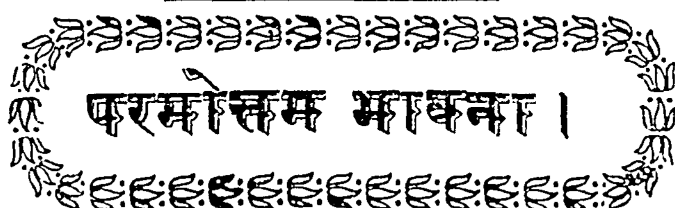
जीवनके जिस किसी भागमें कोई बुरा विचार पैदा होकर कर्तव्यका पूर्णतया पालन न हो, कोई करने योग्य श्रेष्ठ कार्य न किया जासके, किसी पवित्र गुणकी बुराई अथवा निन्दा हो जाय या अपनी कोई निर्बलता न सुधारी जासके तो मेरा सदैव जागते रहनेवाला हृदय तुरन्त ही इन सब बातोंको जान जाता है। मेरा हृदय अत्यंत सूक्ष्मसे सूक्ष्म कृत्यको भी देखनेवाला है और बड़ेसे बड़े मर्मको जाननेवाला है। मुझे दुखी बनानेकी उसमें बड़ी प्रचण्ड शक्ति है। मैं साधारणतयः भी यदि कुछ पाप कर लेता हूं तो मुझे दिन रात चिन्ताके मारे चैन भी नहीं पड़ता। यदि मैं अपने नौकरकी तनखाह किसी मासमें देरसे देता हूं तो मेरा अन्तरात्मा पुकारने लगता है "अरे! पापी, तू बड़ा अन्याय करता है!" कदाचित् यदि मेरे मनमें यह विचार पैदा हो जाय कि तनखाह आज न देकर कल दूं तो मेरी आत्मा पुकारने लगती है, "अरे! पापी, क्या तू आज न खाकर कल खा लेगा? तू पैसेवाला है इसलिए तुझसे खाता-

पीता है अतएव तू यह नहीं समझता कि तेरा नौकर गरीब है उसे बिना पैसेके अनेक कष्टोंका सामना करना पड़ेगा; शोक! ऐसी अवस्थामें तू उसकी तनख्वाह कल देनेको कहता है!" अधिक न कहकर यही कहता हूं कि संसारमें ऐसा एक भी पाप नहीं है जिसे मैं न कर सकूं। अपनी ऐसी दशा देखकर मेरी उन लोगोंपर भी श्रद्धा नहीं होती जिनको अपने पवित्रत्वका अभिमान है। मुझे पापी कहे जानेमें जरा भी शर्म मालूम नहीं होती। सच भी है, क्योंकि जो मनुष्य हृदयमें रहनेवाले लाखों पापोंको हमेशा गिना करता उसे यदि कोई एक--दो बार पापी कहकर पुकारे तो उसको क्यों बुरा लगना चाहिए? अरे लोगो! जरा तो सोचो और आंखें खोलकर देखो कि वह जिसे तुम मान देते हो कैसा पापी है। तुम उस पापीको पापरूपमें देख तक नहीं सकते, विचार तक नहीं सकते इससे मेरा पश्चाताप, मेरा कष्ट बहुत ही उग्र रूप धारण कर उठता है।

किन्तु परमात्मा मेरे ऊपर कृपालु है। इसीलिए जब मैं अपने आपको दूसरी दृष्टिसे देखता हूँ तब जान पड़ता है कि मेरे सदृश्य सुखी भी कोई नहीं है, यदि हैं भी तो थोड़ेसे मनुष्य। ये पापरूपी नरकके कीड़े--जो आंख, कान, जिह्वा द्वारा उभराते रहते हैं और बाहर आते रहते हैं--मेरा हित करते हैं। एक ओर जैसे मैं नरक जैसा अनुभव करता हूँ दूसरी ओर स्वर्ग जैसा अनुभव भी करता हूँ। जो शरीर बहुत समयसे रोगग्रसित हो रहा है और अनेक भांतिकी व्याधियोंसे घिर गया है, उसमें रोगके स्थानका निर्णय करना सहज नहीं, परंतु निरोगी शरीरमें व्याधिका चिह्न बहुत ही शीघ्र प्रगट हो जाता है, यही कारण है कि अन्तरात्मा द्वारा प्रकाशित हृदयमें पाप रूपी रोगका मुझे झटसे भान हो जाता है। अतएव मैं तुरंत ही उसका उपचार करने लग जाता हूं। तब मैं ईश्वराराधन और योगसाधनामें तल्लीन हो जाता हूं। जो मैं दश-पांच पापोंको अपने द्वारा होनेकी कल्पना कर बैठूं अथवा मुझे दश--बीस पापोंका ही भान होता रहे और उनके दूर होने पर मैं अपनी आत्माको

पवित्र मान लूं तो यह मेरी भूल है। मेरी अन्तरात्मा तो मुझमें असंख्य पापोंका भान कराया करती है। एकके पीछे एकको, इसी प्रकार सब पापोंको करने और और पापोंकी उन्नति करनेके लिए प्रेरणा किया करती है। कभी कभी नास्तिक दशामें मैं ऐसा बोल उठता हूँ "क्या ईश्वर है? खीष्ट और चैतन्यादिके प्रकाशमय मुख क्या अब तक मौजूद हैं?" उस शंकाके समय मुझे कितना कष्ट होता है उसे मैं क्या कहूं? तब "अरे पापी! अब भी तू शंका करता है?" इस प्रकार दौड़--धूप करके मैं शांति-सागरके आनंदाश्रममें प्रवेशमें करता हूं। मनुष्य एक बार जब तक रोगी न हो तबतक वह यह नहीं जान सकता कि तन्दुरस्तीका क्या मूल्य है? मैंने जिस प्रकार संतापका अनुभव किया है उसी प्रकार उससे छुटकारा पानेके लिए आनंदका भी अनुभव किया है। जिस प्रकार घड़ीका कांटा निरन्तर "टक--टक" किया करता है उसी प्रकार मेरे हृदयका स्वर भी उठता रहता है कि "अभी तुझे बहुत कुछ प्राप्त करना है, अभी तू कुछ भी नहीं है; तेरी प्रगति अभी प्राथमिक स्थितिकी है।" घोड़ेपर जिस प्रकार चाबुककी मार पड़ती रहती है उसी प्रकार मेरे ऊपर भी इस अन्तरस्वररूपी चाबुककी मार पड़ती रहती है। यदि इन सबमें कोई नयापन देखता हूं तो यह कि जब रोता हूं तब मैं हँसता भी हूं! ज्यों ज्यों मेरा रोना बढ़ता जाता है त्यों त्यों हँसना भी बढ़ता जाता है। जो औषधि मनुष्यको आरोग्य बना सकती है उसे ऐसा अभागी कौन होगा जो न पिये। मेरी तो यही इच्छा है कि मेरे पापोंका भान बढ़ता रहे। पापोंके भान द्वारा उत्पन्न होनेवाले पश्चाताप और कष्ट मैं सदा चाहता रहता हूं। परमात्माकी सत्ता ऐसी प्रेममय है कि वह कष्टोंमें भी आनंद प्रदान करती है। पापका जो भान कष्ट पहुँचाता है वह आनंद भी देता है। पापोंका पश्चाताप आत्माको परमात्माके साथ मिलाता है। परमात्माकी सत्ताको समझनेके बाद और उस सत्ताके साथ सम्मुखता-का अनुभव किये बाद प्रायः कष्ट और संताप कुछ गिनतीमें नहीं रहते। जिसने उस सत्ताको सर्वस्व अर्पण कर दिया उसे फिर किस बातकी चिन्ता? इस सत्ताके सामने बेचारे पापोंकी सत्ता किस खेतकी मूली

मित्रो, मैंने तुम्हें जीवनकी अंधेरी और उजेली दोनों दिशाओंका ज्ञान कराया है। जो तुमने कोई पाप यदि किया हो तो अपनी आत्माको कष्ट होने दो। शांति स्वरूप परमात्मा तुम्हारेमें प्रवेश करके तुम्हारे हृदयको अपनी स्वरूपभूत शान्तिसे खूब भर देगा। इसलिए पापोंके भान द्वारा उत्पन्न हुए कष्टोंसे हमको कभी भी नहीं डरना चाहिए।



परमोत्तम भावना।

(लेखक—राय कोड़ीमल मालू)

[लावनी—चाल--तुम सुनो दीनके नाथ विनय यह मेरी]

कब देखें हम निज जाति विविध गुणयुक्ता !
कब परण मरणके व्यर्थ खर्चसे मुक्ता ! (टेक)
कब होय जातिमें विद्यामंदिर जारी,
कब बनें हमारे बंधु उच्च अधिकारी।
कब करें धनीजन काम जाति उपयुक्ता ॥१॥कब०
कब होय जातिमें दीनजनोंकी रक्षा,
कब उठे जातिसे दुःखी जनोंकी कक्षा।
कब खुदगरज़ीसे होवें लोग विमुक्ता ॥२॥कब०
कब औषधखाने खुलें जातिके धनसे,
कब दीन जनोंकी धनी खबर लें मनसे।
कब हो ... धन ... त्र दानसंयुक्ता ॥३॥कब०
कब ह ... ति भा(इ)योंके,
कब बं ... ति जायोंके।
... विलुप्ता ॥४॥कब०

... ॥कब०

हमारे समाजकी उन्नति कैसे हो ?

(लेखक—श्रीयुत पं० पारसनाथ त्रिपाठी ।)

यहाँ पर हम समाजकी वर्तमान दशाका वर्णन कर पाठकोंका समय व्यर्थमें लेना अनुचित समझ, अपने प्रश्न ही पर विचार करेंगे। हिन्दू समाजकी जो दशा है, उसे कहनेकी आवश्यकता नहीं। रात दिन आप अपनी चारोंओर ऐसे हृदय विदारक दृश्य, मर्मन्तुद घटनाएँ देखते सुनते हैं, जिससे आपके हृदयका घाव अबतक ताजा बना है। अतः फिर उसे यहाँ लिख, जलेपर नमक छिड़कना उचित नहीं।

हमारे यहाँ जबतक हमारे भू-सुर अपने षट्-कर्मोंमें लिन हो, निःस्वार्थभावसे, विश्व-प्राण हो, देशके हित-चिन्तनमें लगे थे, तबतक हमारे राजपूत अपना कर्तव्य पालन करते थे-देश हितकर कार्योंमें लगे ब्राह्मणोंके अभावको दूर करते रहे, देशके व्यापार--वाणिज्यकी उन्नतिके लिये प्रजाओंको प्रोत्साहित करते रहे, देशके दुश्मनोंको अपने दारुण दर्पसे दबा दूर करते रहे, जब तक वैश्य व्यापार-वाणिज्यमें लगे रहते थे, रात दिन उसीकी उन्नतिकी चिन्तामें सोते-जागते थे, देशको लक्ष्मीका लीला-स्थल बनानेके लिये शिर-एड़ीके पसीना एक किये रहते थे; जबतक हमारे शूद्र हमारी सेवामें सने ही रहनेसे सन्तुष्ट रहते थे; तब तक हमारे पास दुःख फटकने भी नहीं पाता था। संसारमें हमारी तूती बोलती थी। परन्तु अब अपने २ कर्तव्योंके छोड़ देनेसे हमारे यहाँ बड़ी गड़बड़ी मच गयी है। जिस प्रकार शिरका काम पांव करने

लगें अर्थात् पाँवसे हम चलने लगें, नाकसे खाने लगें, मुँहसे सूंघने लगे, तो हमारा शरीर किसी कामका नहीं रहेगा, उसी प्रकार हमारे चारों वर्णोंके अपना २ काम छोड़ देनेसे हमारे समाजकी दुर्दशा हो रही है। नियमके साथ काम बाँटकर करना उचित है। यदि हमारे चारों वर्ण भी अपना २ काम बाँट लें, तो आज फिर हम ज्योंके त्यों हो जांय।

हमारे समाजकी दुर्दशाका जो दूसरा कारण—और प्रधान कारण है, वह हमारे यहाँ—

एकता—

का अभाव है। इस समय बहुतोंने देखा होगा, कि एक आदमी आया; और दश आदमियोंको गाली देकर या उन्हें मारकर मज़ेमें चला गया; उससे चीं चापड़ करनेकी किसीकी हिम्मत नहीं हुई। ऐसी अवस्थामें समझ रखना चाहिए कि इन दश आदमियोंमें एकता नहीं है, एक दूसरेके प्रति वे आपसमें सहानुभूति नहीं रखते। सहानुभूतिका फल है एकता, एकताका फल है साहस यों गिनानेके लिए बहुत आदमियोंके रहनेसे तो कोई लाभ नहीं; कम होनेपर भी यदि एकता हो तो हम बहुत कुछ कर सकते हैं—हममें साहसका सञ्चार हो सकता है। एकता बुद्धिको परिमार्जित करती है, उपाय सोचनेमें सहायता करती है। यही कारण है, कि दश आदमियोंके सलाहसे काम करनेपर काममें भलीभांति सफलता मिलनेकी आशा रहती है। एकतासे आत्मत्याग और संयम उत्पन्न होता है। जहाँ भिन्न २ प्रकृतिके व्यक्ति हों, वहाँ संयत नहीं करनेसे और जब तक अपने छोटे २ स्वार्थोंका त्याग नहीं किया जा सकता, तब तक कभी दश आदमी मिलकर कोई कार्य नहीं कर सकते। "अपनी अपनी खंजड़ी, अपना अपना राग" के अनुसार चलनेसे कदापि एकता नहीं हो सकती। इसलिए देखनेमें आता है कि एकतासे साहस, आत्मत्याग, और संयमकी उत्पत्ति होती है, एकतासे बुद्धि परिमार्जित होकर सोचनेकी शक्ति बढ़ती है। समाजको धन, वंश, चरित्र और

विक्रममें उन्नत करनेके लिए इससे अधिक अन्न और क्या चाहिए ? जिस समाजमें उक्त वस्तुओंका अभाव नहीं वह समाज कभी पतितावस्थामें रह ही नहीं सकता।

जीवन-संग्राममें विजय पानेके लिए प्रधान मन्त्री है 'एकता', अपने समाजमें परस्पर सहानुभूतिका ही नाम एकता है। उदाहरणके लिए चींटी और हंसको लीजिए। चींटीके पास आत्मरक्षाकी कोई सामग्री नहीं है। वह संसारके प्रायः सभी प्राणियोंसे क्षुद्र और दुर्बल है। एक छोटासा बच्चा भी उसे बड़ी असानीसे मार सकता है। किन्तु केवल एकताके बलसे, जिस पेड़पर चींटियां अधिक रहती हैं, उस पेड़पर महा भयङ्कर सर्प भी चढ़नेकी हिम्मत नहीं कर सकता है। चढ़नेकी हिम्मत करने पर भी उन छोटी २ चींटियोंके काटनेसे उसे अपनी जान लेकर पेड़पर चढ़नेकी इच्छाको दूर ही करना पड़ता है। निरस्त्र हंस-श्रेणीपर बाज भी हमला नहीं कर सकता। हमला करनेपर उन्हें पूरी शिक्षा मिल जाती है। इनमें परस्पर सहानुभूति और कर्म-विभाग भलीभांति देखा जाता है।

फलतः कर्मविभाग और एकता सामाजिक उन्नतिके लिए अत्यंत आवश्यक पदार्थ हैं।

सामाजिक उन्नतिके लिए एक दो आदमियोंके इकट्ठा होनेसे शीघ्र कोई लाभ नहीं होता। कर्म-वीर बहुसंख्यक लोगोंका इकट्ठा होना आवश्यक है। इसलिए—

संख्या—

और योग्यताकी भी सामाजिक उन्नतिके लिए आवश्यकता है। संख्या बढ़ानेके लिए या अन्यान्य मानसिक उन्नति करनेके लिए समाजके प्रत्येक स्त्री-पुरुषका, विशेषतः स्त्रीका विवाह होना अत्यावश्यक है। जिस समाजमें जन-संख्या कम है, उस समाजमें इस बातको भूल जानेसे कदापि काम नहीं चल सकता। जिस समाजमें प्रति वर्ष बारह लाख

आदमी एक रोग केवल मलेरियासे ही मरते हैं, उस समाजमें भी इस बातको स्मरण रखना चाहिये। किन्तु हम संख्या और योग्यता दोनों चाहते हैं। प्रत्येक व्यक्तिके विवाह करनेपर समाजमें योग्यताका ह्रास होगा, अतः अयोग्य व्यक्तिका विवाह होना उचित नहीं। अयोग्य व्यक्ति तन मन और धनसे समाजके कठिन २ कार्य्योंके करनेके उपयुक्त नहीं होते। जिन शारीरिक और मानसिक शक्तियोंके रहनेसे मनुष्य कार्य सिद्ध करनेका अधिकारी होता है, उन सब शक्तियों और गुणोंसे युक्त मनुष्योंका समाजमें अधिक परिमाणसे रहना आवश्यक है। ऐसेही योग्य स्त्री-पुरुषोंका विवाह समाजके लिए कल्याणकर होता है। अयोग्य स्त्री-पुरुषोंके विवाहसे अयोग्य व्यक्तियोंकी अधिकता, समाजमें होती जाती है। इससे सिवा हानिके लाभ कुछ भी नहीं है। माता पिताकी योग्यता-अयोग्यतापर ही सन्तानकी भी योग्यता--अयोग्यता निर्भर रहती है। इसलिए विवाहके समय शारीरिक और मानसिक योग्यता देखकर विवाह करना जितना आवश्यक है, अयोग्यता देखकर विवाह न होने देना भी उतना ही आवश्यक है। विना इस बातपर ध्यान दिये सामाजिक उन्नतिका होना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है।

विवाहके विषयमें एक बातपर और ध्यान रखना चाहिए। वह यह कि, विवाहका प्रसार छोटी सीमाके भीतर रखनेसे समाजमें दुर्बल मनुष्योंका आविर्भाव होता है। यहाँ दुर्बलका अर्थ शरीर और मनसे अयोग्य समझना चाहिए। मतलब यह कि जिन सब गुणोंके रहनेसे मनुष्य सामाजिक कार्य्योंको सुसम्पन्न करते हैं, दुर्बल उन गुणोंसे रहित होते हैं। एक रक्त और एक मांसको वार वार वंशानुक्रमसे मिश्रित होने देना उचित नहीं। इसी तरह अपने समाजके बाहर विवाह करना भी उचित नहीं। जिस प्रकार एक ही रक्तका वार वार मिश्रित होना अनुचित है, उसी प्रकार सम्पूर्ण विभिन्न अथवा विरुद्ध भावके रक्त--मांसका

मिश्रित होना भी अधःपतनका भारी कारण है। इस देशके ईसाई इसके उदाहरण स्वरूप हैं। विवाह क्षेत्रका विस्तृत होना उचित है, किन्तु नितान्त भिन्न समाजके साथ विवाह सम्बन्ध स्थापित करना उचित नहीं।

पाठक! इतनेसे समझ गये होंगे कि संख्या, योग्यता, कर्म-विभाग और एकताकी समाजकी स्थिति उन्नतिके लिए बड़ी आवश्यक्ता है।

इनके अतिरिक्त—

स्वास्थ्य—

के बिगड़ जानेसे मुर्देके समान पड़े पड़े हम किसी सामाजिक कठिन कार्य्यको नहीं कर सकते। स्वास्थ्य ही में उपयुक्त भोजनका संग्रह भी समझना चाहिए, क्योंकि उपयुक्त भोजनके बिना स्वास्थ्य ठीक नहीं रह सकता।

स्वास्थ्यसे अपने गृह और ग्रामके स्वास्थ्यको तो समझना ही चाहिए साथ ही पार्श्ववती ग्रामोंके स्वास्थ्यको भी समझना चाहिए। इसका कारण यह है, कि आसपासके गावोंका स्वास्थ्य खराब रहनेसे अपने गांवका भी स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। दिहातोंके स्वास्थ्यकी ओर भी हमें विशेष ध्यान देना चाहिए। दिहातोंका स्वास्थ्य सुधारनेमें धनका खर्च अधिक नहीं है; वहां केवल एकताकी आवश्यकता है। प्रत्येक व्यक्ति यदि अपना गृह और उसके आस-पासकी भूमिको स्वच्छ रक्खे तो देहातोंसे आज गन्दगी दूर हो जाय। पीनेके जलकी स्वच्छतापर भी सबको ध्यान रखना चाहिए। सड़ी-गली चीज़ोंको खाना उचित नहीं। भरसक मशहरीके भीतर सोना चाहिए। इसी प्रकारकी छोटी मोटी दो तीन बातोंपर ध्यान देने ही से काम चल जायगा। यहाँ विस्तार भयसे हम उसका विशेष वर्णन नहीं करते।

खानेकी चीज़ोंका इकट्ठा करना ही कठिन है। उसके लिए द्रव्यकी आवश्यकता होती है। भारतके लाखों व्यक्ति प्रतिदिन आधे पेट खाली या भूखे अपना दिन काटते हैं, भला इससे कैसे नहीं उनका स्वास्थ्य

बिगड़ेगा ? हमारे यहाँके कृषकोंकी दशा संतोषजनक नहीं है। देहातमें ऐसे आपको कितने ही कृषक मिलेंगे, जिन्होंने मूल धनके अभावसे खेती करना छोड़ दिया है। कृषकोंमें ऐसा विरला ही कोई मिलेगा, जो ऋण ग्रस्त न हो। हमारे कृषकोंके इस ऋणभारको दूर करनेके लिए सरकारी Co-operative credit societyकी स्थापना हुई है। इसको देहातमें 'बैंक' कहते हैं। इन बैंकोंसे हम अपने देशमें कुछ भी लाभ नहीं देखते। हमारे यहाँ ज़मींदारीमें जो प्रजाऐं रहती हैं उनकी अवस्था देखकर हम यह लिख रहे हैं। कृषि और वाणिज्यसे कमसे कम इतना लाभ होना चाहिए, जितनेसे घर—गृहस्थीके काम मजेमें चल जायँ, अधिक लाभकी इच्छा उचित नहीं। किन्तु उतने लाभके लिए भी इस समय एकता और शिक्षाकी बड़ी आवश्यकता है। वैज्ञानिक प्रणालीसे कृषि करके अनेक देशवाले खूब हाथ गरम कर रहे हैं; किन्तु हमारे तो पेटके भी लाले पड़ते हैं। हमारे यहाँके कृषक काला अक्षर भैंस बराबर जाननेपर भी बुद्धिमान होते हैं; उन्हें कोई बात समझानेसे वे बड़ी आसानीसे समझ लेते हैं। किन्तु राजा, महाराजा और बड़े२ ज़मींदार एक 'पार्टी' देनेमें जो उत्साह दिखाते हैं, विलास और उत्सवमें लाखों रुपये पानीकी तरह बहाते हैं, इधर उन्हें ध्यान देनेका समय ही नहीं रहता ! ! यदि एकता, उत्साह और शिक्षा हो, तो अर्थ--हीन व्यक्ति भी इन कामोंको कर सकते हैं !

किन्तु यह प्रश्न विचारणीय है, कि किस प्रकारकी शिक्षाके द्वारा इन सब बातोंमें लाभ हो सकता है। कालिदास, भवभूति, सेक्सपियर मिल्टन माईकेल, हेमचन्द्र, बङ्किम, रवीन्द्र, प्रभृतिकी पुस्तकोंके पढ़नेसे इस विषयमें हमारा कुछ भी उपकार नहीं हो सकता। इस शिक्षामें वर्णमालाकी सहायताकी ही आवश्यकता है, सो भी नहीं। इसके लिए केवल चरित्र—बलकी आवश्यकता है। एकता, उद्यम, चेष्टा—यही चरित्रबल है स्कूल या कालेजोंमें ये बहुतायतसे पाये जाते हैं, इसका कोई

प्रमाण हमें नहीं मिला। हमसे यदि यह कोई कहे, तो हम तो उसपर विश्वास ही नहीं कर सकते। चाहे जो हो धन कमानेका यत्न करना आवश्यक है; किन्तु यह काम सहज नहीं है। व्यय कम करनेसे आहार और स्वास्थ्य अच्छा रह सकता है। किन्तु बुरे आदर्शके सामने कितने आदमी इस बातपर ध्यान देते हैं ? अनेक तरहके व्यर्थ खर्चसे धनी दरिद्र दोनों अपना २ सत्यानाश कर रहे हैं। राजा महाराजाओंमें अधिकांश ऋण ग्रस्त हैं; जो साधारण श्रेणीके थे, वे इस समय दरिद्र हो गये हैं, वे चार दानेके लिए तरसते फिरते हैं। कृषकोंमें ऐसे एक ही दो होंगे, जो ऋणग्रस्त न हों; यद्यपि इनने गत ५०—६० वर्षके भीतर पाट आलू, कोबी प्रभृतिकी नयी खेती करनेमें किसी तरहकी ढीला--सीली नहीं की है तथापि उनकी दशा बड़ी शोचनीय है। इस लिए दैनिक खान-पान सोने बैठनेमें सबको मितव्ययी होना आवश्यक है; और पूजा, पर्व्व, विवाह, उपनयन इत्यादि धार्मिक और सामाजिक विषयोंमें बिना किफायतसारीसे चले काम नहीं चलता दीखता। अन्यथा अभाव, निरानन्द, अस्वास्थ्य, और अन्तमें अकाल मृत्यु, इस देशको सदा अन्धकार ही में रक्खेगी।

यहाँ 'निरानन्द' शब्दपर कुछ विशेष रूपसे विचार करना चाहिए। हमने लड़कपनमें सभ्य, असभ्य, सब श्रेणीके लोगोंको बड़े आनन्दके साथ दिन काटते देखा है। बालक रात-दिन इधर-उधरके दौड़-धूपमें मग्न रहते थे, पेड़पर चढ़ते थे, तैरते थे, आंख मिचौनी, चालो, प्रभृति खेलोंमें व्यस्त रहते थे, चरवाहे--परती ज़मीनमें पशुओंको चराते हुए आनन्द संगीतसे संसारको आनन्दित करते थे, युवक अर्थोपार्जन करते थे; किन्तु सरकारी नौकरी प्रायः कोई नहीं करता था; प्रौढ़ वयस्क व्यक्ति किसी पेड़की छायामें बैठकर इधर उधरकी बातें करते, कविता चर्चामें मस्त रहते थे; वृद्ध रामायण महाभारत पढ़ते सुनते, ताश, पाशा प्रभृति खेलते और हँसीके फव्वारे छोड़ा करते थे। ये सब काम अच्छे हों या

बुरे;* पर इससे स्पष्ट मालूम होता है, कि उस समय देशमें पवित्र प्रमोदका प्रवाह प्रबल वेगसे प्रवाहित होता था। इस समय गांवोंमें जाकर हम क्या देखते हैं? बालक भी मुहर्रमी सूरत बनाये बैठे हैं। बड़े आदमियोंके पांच वर्षके लड़के या तो वर्ण—परिचय, या फर्स्टबुक लेकर ध्यानमें मग्न हैं। युवक और प्रौढ़ दिन रात शिर—पांवका पसीना एक कर रहे हैं; परन्तु तथापि उदर दरीकी चिन्तासे छुटकारा नहीं पाते। वृद्ध बैठे २ खाटीकी पाटी तोड़ रहे हैं, या मक्खी मारते हैं। कहीं आनन्दका नाम नहीं। इतनेपर भी गांवोंमें ऐसी ज़मीन नहीं, जहाँपर हम स्वच्छन्दतासे दौड़—धूप कर सकते हैं। दूध, घृतके अभावसे बालक, वृद्ध, युवा सभी बलदाँयक खाद्यसे वञ्चित हो रहे हैं। रोग, शोक, और मोह दिन २ बढ़ते जाते हैं। अभावका प्रभाव नहीं। फिर आनन्द हो तो कैसे? अब इस देशमें आनन्द नहीं!

यह तो एक ओरकी बात हुई। दूसरी ओर हम क्या देखते हैं, कि निर्दोष आमोद-प्रमोदके स्थानमें दुःख दारिद्र्यकी ताड़नासे थोड़ी देरके लिए सब भूलकर कृत्रिम आनन्दकी सृष्टि करनेके लिए सुरा--सेवन किया जाता है। इस सुरा—सेवनसे जिस प्रकार मनुष्यत्व त्यागकर पशुत्व प्राप्त होता है, उसी प्रकार अपने दुःखमय जीवनको हम और भी दुःखमय बनाते जाते हैं। हा! मनुष्य पैसेके लिए विष बेंचकर प्रतिदिन नर-हत्या कर रहा है!!! इसका कोई प्रतिकार नहीं। बल्कि उत्साहित करनेके लिए क्षमताशाली कितने ही मनुष्य उद्यत रहते हैं!! डाक्टर सेलीवीने अपने विख्यात ग्रन्थ (Parenthood and Race culture Chp. XIII. Racial Poison Alcohol) के त्रयोदश अध्यायमें जितने प्रमाण दिखलाये हैं, उनसे स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि सुराके समान संसारमें सत्यानाशी सामग्री

* निर्दोष आमोदको कोई बुरा नहीं कह सकता।

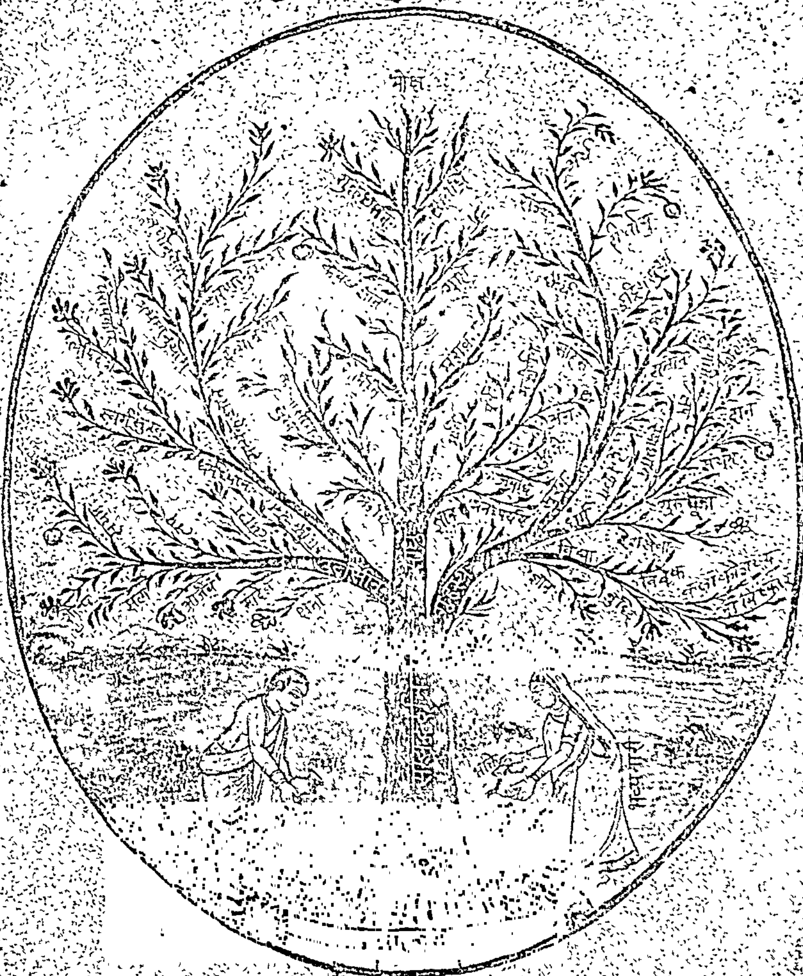
मुनि



अरनक श्रावक और मिथ्यात्वी देव।

जैनविजय प्रेस-सूरत.

मुनि



जैनविजय प्रेस–सूरत.

और कोई नहीं है। आपने इसका नाम Racial Poison (घोर विष) रक्खा है। व्यक्ति और समाजका इससे बढ़कर सत्यानाश करनेवाला दूसरा कोई पदार्थ नहीं है। इसका कुफल वंशानुक्रमसे संक्रामित होता है। इसके विषयमें अधिक कहना व्यर्थ है। देखनेमें आता है, कि निर्दोष आनन्दका वह साम्राज्य अब नहीं रहा; उसीके स्थानमें सर्वनाशकारी सदोष आमोद आकर उपस्थित हो गया है। इसका फल क्या होगा ? इसका फल पहलेसे दुगुना अपकार है। इसका परिणाम जातीयताका ध्वंस है। निरानन्दका फल, महात्मा अरविनके अमर ग्रन्थ (Descent of man Pt. I Chp. VII P. 285-6.) मनुष्योत्पत्ति भाग १ अध्याय ८ पृष्ठ २८५-६ में विस्तृत भावसे वर्णित है। वैन डिमेन्स लैंड देशके रहनेवालोंकी मृत्युसंख्या क्रमशः बढ़ रही थी, जन्मसंख्या क्रमशः ह्रास हो रही थी। इसका कारण निर्देश करते समय मि० डेविसने जो कहा था, उसको डारविनने पूर्णरूपसे समर्थन किया है। वह यह है, कि "The births have been few and the deaths numerous. This may have been in a great meaeure owing to their change of living and food, but more so to their banishment from the main land of Van Damien's Land and consequent depression of spirits.

निरानन्द ही का दूसरा नाम Depression of spirits है। इससे जातीय ध्वंस होता है। आनन्दसे रहित होकर कोई जीव नहीं बच सकता। श्रुति कहता है कि वृक्षलतादि भी आनन्द ही से जीते हैं। "स एष (वृक्ष)........मोदमानस्तिष्ठति।"* मालूम होता है कि जीव विज्ञान वृक्ष लतादिके आनन्दकी बातको अब अधिक दिन तक अस्वीकार नहीं करेगा। चाहे जो हो, निर्दोष आनन्दका अभाव हम लोगोंको एक ओर जिस प्रकार पतनकी ओर लिए जारहा है, उसी प्रकार सदोष विलासिता भी उस नाशकी गतिको ओर बढ़ा रही है।

इसलिए दोनों ओरसे सामाजिक अवनति हमें दबावमें डालकर हमारा अस्तित्व मिटानेपर तुली हुई है।

हमने जो ऊपर इतना लिखा है उसका सारांश यह है, कि निम्नोक्त बातोंपर ध्यान देने ही से हमारे समाजकी उन्नति हो सकती है:—

१—कर्मविभाग।

२—एकता।

३—अधिक धनका लोभ और विलासका त्याग।

४—विवाह-क्षेत्रकी विस्तृति।

५—कृषि और वाणिज्यकी उन्नतिका साधन।

आहारका सद्भाव, शारीरिक और मानसिक सबलता, स्वास्थ्य और शिक्षाकी अनुकूलता।

६—आनन्द-सामाजिक उत्सव, पर्वादिके उपलक्षमें और अन्य समय भी निर्दोष आनन्दका उपभोग। यहाँ आनन्द शब्दसे निर्दोष आमोद-प्रमोद समझना चाहिए।

ऊपर जिन छः बातोंपर ध्यान देनेके लिए कहा गया है, वे सुलभ नहीं हैं। समाजका प्रत्येक मनुष्य यदि इसपर विचार करे, कि मेरी ही उदासीनतासे समाजका नाश हो रहा है, तो समाजका बहुत कुछ लाभ हो सकता है, नहीं तो समाजकी रक्षा नहीं। समाजके रक्षाकी चेष्टा, समाजकी उन्नति करनेके लिए यथासाध्य परिश्रम स्वीकारना, सबका प्रधान धर्म है। इस प्रधान धर्मसे पतित होने पर समाजकी रक्षाका कोई उपाय नहीं है, उन्नतिकी आशा तो पागलपनसे खाली नहीं है। अब समय नहीं है, इसका ख्याल सबको रखना चाहिए।

नोट—कई राजे-महाराजे कृषिके उन्नतिके लिये बहुत कुछ कर रहे हैं।

(संपादक।)

---

*छान्दोग्य ७—११—१.

साधु और मुनियोंका महत्व।

प्राचीन इतिहासके दृष्टोंपर जब दृष्टि डालते हैं तब हमारे शोककी मात्रा बढ़ जाती है। प्राचीन समयमें हम कैसे थे? हमारा संसारमें कैसा आदर था? हमारा देश कैसी सुखी दशाको प्राप्त था? जहाँ देखते थे वहीं आनंदकी बधाइयां बजती थीं। रोग, शोक और दुःखका तो नाम भी ढूंढ़ न मिलता था। हा! वही देश आज इस अवनत दशाको प्राप्त हो रहा है! वही देश जहाँ पर नवीन नवीन शोधें, नई नई बातें दिन–रात पैदा होती रहती थीं, आज आग जलाने तककी दियासिलाईके लिए दूसरोंके मोहताज है। अपने शरीर तकको ढाँपनेके लिए दूसरोंका मुहँ ताकते हैं। वर्तमानकी यह शोचनीय दशाका चित्र और प्राचीन उन्नत दशाका पट हमारी आँखोंके सामने आता है तब उसकी तुलना करनेसे कैसा कष्ट पहुँचता है, उसका अनुभव उसीको हो सकता है जिसने इतिहासका मनन किया है और उसने हृदयको जाँच पाया हो। हमारे इस भीषण ह्रासका क्या कारण है? वही देश, वे ही निवासी और वे ही साधन प्रायः वर्तमान समयमें होते हुए भी हम उन्नति करनेमें असमर्थ हैं। इसका कारण क्या है उसको ढूढ़नेके लिए हमें इतिहासका ही अध्ययन करना पड़ेगा।

जिस समय महात्मा बुद्धने दयाका धर्मोपदेश दिया था, उस समय देशमें खून–खराबीका कैसा ज़ोर था। लाखों प्राणी धर्मके बहाने बलिदान कर दिये जाते थे। उन निरपराध पशुओंकी पुकार सुननेके लिए देशके नामी से नामी विद्वान् और पंडित असमर्थ थे। उसीका खंडन महात्मा बुद्धने जिन युक्तियोंसे किया कि आधेसे अधिक देश उनके पक्षमें

हो गया। यही है मुनि जीवनका महत्व। यदि महात्मा बुद्ध राजा बनकर उस हिंसाको रोकनेका यत्न करते तो क्या संभव था कि वह रुक जाती। यह साधु जीवनका ही महत्व था कि उनके शत्रु भी मित्र हो गये। जो कार्य बड़ेसे बड़े पंडित भी नहीं कर सकते वही मुनि लोग आसानीसे कर सकते हैं। पर इसके लिए आवश्यकता है आत्मिक बलकी। यदि महात्मा बुद्ध गृहस्थोंकी परवा करते अथवा उनके डरसे ग्रामोफोनकी चूड़ीकी भांति उनके कहे अनुसार ही राग अलापने लगते तो यह कब संभव था कि महात्मा बुद्धको उस कार्यमें सफलता मिलती और आधेसे अधिक ज्ञात संसार उनके सिद्धांतोंका उपासक बन जाता। महात्माजीको अकेले ही उस बड़े दलसे मुकाबला करना पड़ा था जो गृहस्थोंके इशारों साधुओं पर नाचनेवाला था, उनमें आत्मिक बल था, मुनि शक्ति थी, परोपकारकी इच्छा थी, प्राणी मात्रके कल्याणका ध्यान था, धर्मकी सत्ता थी और पवित्र सत्यके उपदेशका उद्देश्य था। इसी कारण वे अकेले इस बड़े दलसे विजय पा गये और संसारमें अपना नाम अमर कर गये। आज सारा संसार उन्हें पूज्यकी दृष्टिसे देखता है और उनके अटल सिद्धान्तोंको मानता है। यही मुनि जीवनका महत्व है, उसके विपरीत उन लाखों साधुओंको जिन्होंने गृहस्थोंके भयसे सत्यके पथको छोड़ दिया था, जो कायरतासे उनके इशारोंपर नाचा था, आज कोई भी नाम नहीं लेता। वे ही गृहस्थ जिनकी रुचिके माफिक वे साधु चलते थे—उनके झंडेसे निकल गये और खुशामदी तथा छद्मवेषी समझ कर मुँह मोड़ गये और सत्य वीर महात्मा बुद्धके उपासक बन गये। धन्य है इस महत्वशाली जीवनको!

इसी प्रकार भगवान् महावीरको आज समस्त संसार ईश्वरकी दृष्टिसे देखता है। वे वैज्ञानिक यूरोपियन जो और गुरुओंके सिद्धांतोंको झूठा मानते हैं, भगवान् महावीरके सिद्धान्तोंको आदर और गौरवकी दृष्टिसे देखते हैं! महावीरके उपासकोंपर बड़ी कठिनाइयां पड़ी और लोगोंने उनके

सिद्धांतोंको बहुत तोड़-फोड़ना चाहा, पर सत्य धर्मोपदेष्टा भगवान् वीरके सिद्धान्तोंका नाश न हुआ। आज भी उन्हें लाखों मनुष्य मान रहे हैं। भगवान् महावीरके सिद्धान्तोंपर कितने ही बुरे आक्रमण हुए पर तो भी उनका अस्तित्व मिटा नहीं; पर ढोंगी, कायर और इशारोंपर नाचने-वाले साधुओंका कहीं भी नाम नहीं। हा! मुनिबलमें बड़ी शक्ति होती है! लोगोंको मुनियोंकी यही शक्ति अपनी ओर खींच लेती है। मुनि शक्ति संसारमें जो कार्य कर सकती है और करा सकती है वह किसी दूसरेकी सामर्थ्य नहीं कि कर सके। अभी हाल ही की बात है कि मुनि दयानंद स्वामीके उपासक कितने बन गये। दयानंद स्वामीने मुनिबलसे ही कितनी सफलता पाई। आज उन्ही दयानंदके नामपर हजारों आर्यसमाजी पसीना बहानेको तैयार हैं। दयानंद स्वामीकी मुनि शक्ति ही ने यह कार्य किया है। इसी प्रकारके सैकड़ों दृष्टांत इतिहासमें पाये जाते हैं जिनसे पता लगता है कि देशकी जब कभी भी उन्नति हुई है तब सच्चे साधुओं द्वारा और अवनती कायर साधुओं द्वारा। इसीलिए देशोत्थानके लिए आवश्यकता है कर्मवीर सत्य साधु और मुनियोंकी। इसीका ह्रास या यों कहिए अभाव-देशको खटक रहा है।

साधुओंके पास यथेष्ट समय रहता है और वे घरकी चिन्तासे भी रहित होते हैं, उनका ध्येय परोपकार तथा आत्मकल्याणके सिवा और नहीं होता, उनके हृदय परोपकार, दया, सत्य और सहानुभूतिसे भरे रहते हैं और गृहस्थीकी कोई झंझट न होनेके कारण वे किसी सोच विचारमें भी नहीं रहते। वे इस समयमें जो चाहे सो करा सकते हैं। साधु और मुनियोंके हाथमें धार्मिक सत्ता होती है। वे उस सत्ता द्वारा काला-पीला सब कुछ कर सकते हैं। पर सच्चे मुनियोंको अपने सत्य कार्यको न भूल जाना चाहिए। हिन्दी भाषा-भाषी कौन होगा जो रामायणसे परिचित न हो। इस ग्रंथका भारतमें खूब आदर है। प्रति वर्ष कई हजारोंकी संख्यामें यह रूप लेकर छपती है और बिकती है। इस

हो गया। यही है मुनि जीवनका महत्व। यदि महात्मा बुद्ध राजा बनकर उस हिंसाको रोकनेका यत्न करते तो क्या संभव था कि वह रुक जाती। यह साधु जीवनका ही महत्व था कि उनके शत्रु भी मित्र हो गये। जो कार्य बड़ेसे बड़े पंडित भी नहीं कर सकते वही मुनि लोग आसानीसे कर सकते हैं। पर इसके लिए आवश्यकता है आत्मिक बलकी। यदि महात्मा बुद्ध गृहस्थोंकी परवा करते अथवा उनके डरसे ग्रामोफोनकी चूड़ीकी भांति उनके कहे अनुसार ही राग अलापने लगते तो यह कब संभव था कि महात्मा बुद्धको उस कार्यमें सफ़लता मिलती और आधेसे अधिक ज्ञात संसार उनके सिद्धांतोंका उपासक बन जाता। महात्माजीको अकेले ही उस बड़े दलसे मुकाबला करना पड़ा था जो गृहस्थोंके इशारों साधुओं पर नाचनेवाला था, उनमें आत्मिक बल था, मुनि शक्ति थी, परोपकारकी इच्छा थी, प्राणी मात्रके कल्याणका ध्यान था, धर्मकी सत्ता थी और पवित्र सत्यके उपदेशका उद्देश्य था। इसी कारण वे अकेले इस बड़े दलसे विजय पा गये और संसारमें अपना नाम अमर कर गये। आज सारा संसार उन्हें पूज्यकी दृष्टिसे देखता है और उनके अटल सिद्धान्तोंको मानता है। यही मुनि जीवनका महत्व है, उसके विपरीत उन लाखों साधुओंको जिन्होंने गृहस्थोंके भयसे सत्यके पथको छोड़ दिया था, जो कायरतासे उनके इशारोंपर नाचा था, आज कोई भी नाम नहीं लेता। वे ही गृहस्थ जिनकी रुचिके माफिक वे साधु चलते थे—उनके झंडेसे निकल गये और खुशामदी तथा छद्मवेषी समझ कर मुँह मोड़ गये और सत्य वीर महात्मा बुद्धके उपासक बन गये। धन्य है इस महत्वशाली जीवनको!

इसी प्रकार भगवान् महावीरको आज समस्त संसार ईश्वरकी दृष्टिसे देखता है। वे वैज्ञानिक यूरोपियन जो और गुरुओंके सिद्धांतोंको झूठा मानते हैं, भगवान् महावीरके सिद्धान्तोंको आदर और गौरवकी दृष्टिसे देखते हैं! महावीरके उपासकोंपर बड़ी कठिनाइयाँ पड़ी और लोगोंने उनके

सिद्धांतोंको बहुत तोड़-फोड़ना चाहा, पर सत्य धर्मोपदेष्टा भगवान् वीरके सिद्धान्तोंका नाश न हुआ। आज भी उन्हें लाखों मनुष्य मान रहे हैं। भगवान् महावीरके सिद्धान्तोंपर कितने ही बुरे आक्रमण हुए पर तो भी उनका अस्तित्व मिटा नहीं; पर ढोंगी, कायर और इशारोंपर नाचने-वाले साधुओंका कहीं भी नाम नहीं। हा! मुनित्वमें बड़ी शक्ति होती है! लोगोंको मुनियोंकी यही शक्ति अपनी ओर खींच लेती है। मुनि शक्ति संसारमें जो कार्य कर सकती है और करा सकती है वह किसी दूसरेकी सामर्थ्य नहीं कि कर सके। अभी हाल ही की बात है कि मुनि दयानंद स्वामीके उपासक कितने बन गये। दयानंद स्वामीने मुनित्वसे ही कितनी सफलता पाई। आज उन्हीं दयानंदके नामपर हजारों आर्यसमाजी पसीना बहानेको तैयार हैं। दयानंद स्वामीकी मुनि शक्ति ही ने यह कार्य किया है। इसी प्रकारके सैकड़ों दृष्टांत इतिहासमें पाये जाते हैं जिनसे पता लगता है कि देशकी जब कभी भी उन्नति हुई है तब सच्चे साधुओं द्वारा और अवनती कायर साधुओं द्वारा। इसीलिए देशोत्थानके लिए आवश्यकता है कर्मवीर सत्य साधु और मुनियोंकी। इसीका ह्रास या यों कहिए अभाव—देशको खटक रहा है।

साधुओंके पास यथेष्ट समय रहता है और वे घरकी चिन्तासे भी रहित होते हैं, उनका ध्येय परोपकार तथा आत्मकल्याणके सिवा और नहीं होता, उनके हृदय परोपकार, दया, सत्य और सहानुभूतिसे भरे रहते हैं और गृहस्थीकी कोई झंझट न होनेके कारण वे किसी सोच विचारमें भी नहीं रहते। वे इस समयमें जो चाहे सो करा सकते हैं। साधु और मुनियोंके हाथमें धार्मिक सत्ता होती है। वे उस सत्ता द्वारा काला-पीला सब कुछ कर सकते हैं। पर सच्चे मुनियोंको अपने सत्य बलको न भूल जाना चाहिए। हिन्दी भाषा-भाषी कौन होगा जो रामायणसे परिचित न हो। इस ग्रंथका भारतमें खूब आदर है। प्रति वर्ष कई हजारोंकी संख्यामें कई रूप लेकर छपती है और बिकती है। हम

ऐसे कई बुकसेलरोंको जानते हैं जो एक रामायणके ही बदौलत रोटियाँ खा रहे हैं। रामायण ग्रंथका ऐसा क्यों आदर हुआ? और कोई ग्रंथ इस प्रकार क्यों प्रसिद्ध नहीं है? इसका एक मात्र कारण यही है कि वह साधु जीवनमें रहनेवाले गोस्वामी तुलसीदासकी रचना है। उन्होंने अपने साधुता, सत्यता और सरलताके उद्गार निकाले हैं इसी कारण वह ग्रन्थ ऐसा महान ग्रन्थ बन गया। सत्य और धर्मका उपदेश देशकालकी स्थितिके अनुसार दिया है; यही एक साधु कविकी खूबी है। यही साधु जीवनका महत्व है। आज इसी कारण रामायण हिन्दी व्रजभाषा कविताका सर्वोतकृष्ट काव्य माना जाता है। इसी प्रकार हमारे यहां तत्वार्थसूत्र और भक्तामर नामक छोटे काव्योंका आदर है। इन दो ग्रंथोंमें सत्य धर्मका देशकालानुसार कैसा सरल और ललित उपदेश दिया गया है। आज दिन ये काव्य इसी कारण सर्वत्र प्रचलित हो रहे हैं। क्योंकि उनके लेखक साधु मुनि थे और उनमें साधु-मुनि सत्ता थी। वे आज कल जैसे साधु नहीं थे।

साधु और मुनि किस गुणके कारण ऐसे महत्वको प्राप्त करते हैं? इस कारण कि उनमें 'क्षमता' है। किसीने भी किसी मुनिको किसीको दुःख पहुँचाते, गाली देते, पत्थर मारते, नहीं देखा होगा। यही क्यों, हमारे प्राचीन ग्रंथोंमें यहाँ तक प्रमाण मिलते हैं कि मुनियोंके ऊपर चीटियोंका जमघट हो जाता था, सर्प आदि दुष्ट जंतु शरीरसे लिपट जाते थे; किन्तु मुनि लोग उन्हें अलग नहीं करते थे, बल्कि स्वतंत्रता पूर्वक फिरने देते थे। अपने शरीरको गला देते थे पर इन जंतुओंको शरीरसे हटाना तो दूर, और भी किसी प्रकारका छोटा-मोटा कष्ट न होने देते थे। हिन्दू पुराणोंमें भी वर्णन है कि मुनियोंको क्रोध आता तो बस उनका सारा तप नष्ट हो जाया करता था, इसलिए वे कभी क्रोधित नहीं होते थे। देखिए, मुनियोंकी क्षमताका इससे अधिक उदाहरण और क्या हो सकता है? फिर यदि संसार इन मुनियोंको पूज्य

दृष्टिसे क्यों न देखें और क्यों न उनसे प्रेम करें? क्या इस क्षमताकी अवहेलना की जाय? इसी क्षमताके बलसे वे संसारमें नाम भी कमा सकते थे। इस क्षमतायुक्त साधु और मुनि जीवनका संसारमें महत्व है।

यहाँपर एक बड़े मजेका दृष्टांत दिया जाता है जिससे साधुओंकी क्षमताका पता लगता है। एक नगरमें एक बड़ाभारी धनी रहता था। वह किसीसे नमस्कार तक न लेता था। उसी नगरमें एक साधुका आगमन हुआ। वे उसके द्वारके सामने होकर निकले और उससे 'नमस्कार' कहा। उसने निगाह तक भी न उठाई। साधु दूसरे दिन फिर आये और 'नमस्कार' कहा, फिर भी उसने न देखा। साधु तीसरे दिन आये और फिर 'नमस्कार' कहा, फिर भी वह न बोला। साधु इसी प्रकार उसके पास पन्द्रह दिवस तक गये और 'नमस्कार' की। अंतमें साधुकी क्षमताका प्रभाव उसपर पड़ा और सोचने लगा कि यह क्या मामला है कि प्रति दिन यह साधु मुझसे 'नमस्कार' कर जाता है। उसके हृदयमें कौतूहल पैदा हुआ और अंतमें सोलहवें दिन उसने साधुकी ओर देखा और मुस्कराया। सत्रहवें दिन उसने भी 'न....म' कहा। फिर अठारहवें दिन उसने 'नमस्कार' भी कहा। उसके हृदयमें कौतूहल बढ़ता ही गया और अंतमें बीसवें दिन साधुसे खुले दिलसे बातें करने लगा। यही साधुक्षमता है कि मानीसे मानीके हृदयको भी मोम कर दिया। यदि और कोई साधारण मनुष्य होता तो यह कहकर रह जाता कि जब वह हमसे नहीं बोलता तब हमें उससे बोलनेकी जरूरत? इसी क्षमताके कारण साधुओंका महत्व है।

स्वामी रामतीर्थ और विवेकानंदके ही कारण भारतवासियोंकी सर्वोच्च अध्यात्मिक शक्तिका विदेशियोंको परिचय हुआ—विदेशियोंको भारतका गौरव मालूम हुआ। भारत भी विदेशियोंसे हर बातमें अधिक ज्ञान रखता है यह भी यूरोपवासियोंको इन साधुओं द्वारा ज्ञात हुआ। आज सवा लाखकी 'नावल प्राईज़' प्राप्त रविन्द्रनाथ टागोरके व्याख्या-

नोंमें इतनी भीड़ नहीं—इतनी श्रेणियों नहीं—जितनी स्वामी रामतीर्थके व्याख्यानोंमें होती थीं। रवीन्द्र बाबूकी विद्वता और योग्यताकी विदेशी प्रशंसा जरूर करते हैं पर स्वामी रामतीर्थकी भांति पूजा दृष्टिसे नहीं देखते और न वैसी सनसनी तथा जोश ही विदेशवासियोंमें पाया जाता है। साधुके महत्वका यह कैसा ताजा और कैसा अच्छा प्रमाण है ?

अब क्या कोई साधुओंके महत्वको माननेमें आना—कानी कर सकता है। फिर आज इतने साधुओंके होते भी साधु महत्वको कोई नहीं जानता, न साधुओं द्वारा कुछ हो ही रहा है। नामके लिए तो ५७ लाख साधु हैं, पर हैं कैसे ? ढोंगी और पेट पालनेवाले। इसी कारण आज साधु वेषपर कलंक लगाया जा रहा है और साधु बनना एक घृणित कार्य समझा जा रहा है। इसलिए वर्तमान साधु—मुनियो, आप अब देशकी बागडोर हाथमें लें और अपने प्राचीन गौरवको फिर प्रकाशित कर दें। साधुओंका जो ऊंचा आसन है और जो महत्व है उसे आप अपने हाथसे न जाने दें, बल्कि प्राचीन समयकी भाँति ही उसे स्थित रक्खें। देशमें उपदेशोंसे कर्मवीर पैदा करें। अपने शरीरको गला कर देश-हितचिन्तनामें लगें। स्थान स्थान शालायें खुलवाईए जिससे आपका देश शिक्षित बने। स्थान स्थानपर कारखाने खुलवाईए जिससे देशकी दरिद्रता मिटे। उपदेशोंसे और अपने अनुकरणसे देशकी आत्माओंको आलसी और कायरसे कर्मवीर और बली बनाईए। देशवासियोंको उनके कर्तव्यका ज्ञान कराईए। फिर आजकलके इतिहासमें आपका नाम प्राचीन साधुओंकी तरह अंकित हो जायगा। अन्यथा इतिहासमें आपके अकर्तव्यपने और आलसीपनेका वर्णन रहेगा जिससे साधुओंको फिर कोई भी आदरकी दृष्टिसे नहीं देखेगा ! साधुओ, उठो और देशोत्थानमें सहायता पहुँचाओ !

आपदाओंका स्वागत।

[लेखकः-किरन बिहारीलाल।]

मेरी प्यारी विपदाओ।
स्वागत है, आओ, आओ॥

(१)

दुख-भट्टीमें मुझे तपाना; सब प्रकारसे मुझे सताना।
मत दया हृदयमें लाना; पाहन-सम कठोर हो जाना॥
दृढ़ धर्ममें मुझे बनाओ।
स्वागत है, आओ, आओ॥

(२)

तुम सबकी हित-कारी हो; इसलिए मुझे प्यारी हो।
तुम जिसके पास पधारी हो; वह बना धीरधारी हो॥
देश-सेवामें मुझे लगाओ।
स्वागत है, आओ, आओ॥

(३)

दुःख-कसौटीपर तुम कसना; अरु मत तुम कभी झिझकना।
सद्ज्ञानका पाठ पढ़ाना; अरु कुपंथसे मुझे बचाना॥
मेरा हौसला बढ़ाओ।
स्वागत है, आओ, आओ॥

(४)

सद्पथसे नहीं हटूँगा; "हा हन्त!" न कभी कहूँगा।
आगे ही मैं नित्य बढ़ूँगा; पीछे इक पग न हटूँगा॥
उद्योगी मुझे बनाओ।
स्वागत है, आओ, आओ॥

कन्या व्यवसाय।

भारत जहाँ अन्य व्यापारों और व्यवसायोंमें अवनति कर रहा है वहाँ वह एक व्यापारमें बड़ी उन्नति कर रहा है। इस बढ़े हुए व्यापारका नाम है 'कन्याक्रय'! यह व्यापार भारतमें किस जोर शोरसे फैल रहा है उसका वर्णन करनेमें हमारी लेखनी असमर्थ है!

बड़ी बड़ी दुकानोंके मालिक, बड़े बड़े नामी सेठ इस व्यापार द्वारा वारे-न्यारे कर रहे हैं। अहिंसा धर्मकी ढींग मारनेवाले, बीसों हरे शाकादि छोड़नेवाले, दया धर्मकी दुहाई खेंचनेवाले बड़े बड़े धर्मात्मा सज्जन इस व्यापारको करते नहीं शरमाते हैं! वार्षिक कई करोड़ रुपयों तक यह व्यापार हो जाता है। खेद है अभी तक किसीने इसकी वार्षिक रिपोर्ट नहीं बनाई, नहीं तो पता लगता कि अन्य व्यापारोंसे यह व्यापार कितने अधिक रुपयोंका होता है और इसकी उत्तरोत्तर कैसी वृद्धि हो रही है।

सुधार सुधारकी रागनी अलापनेवाले, समाजको और जातिको तैरानेका ठेका लेनेवाले सरपंच भी इस व्यापारको बुरा नहीं समझते! बड़े बड़े धनाढ्य समाजके नेता बने हुए समाजोन्नतिका मार्ग दिखाते है पर शोक! वे भी इस व्यापारके प्रभावसे अलग नहीं है। बड़े बड़े अमीर मूछों पर ताव देनेवाले भी और कुछ नहीं तो ब्याज पर इस व्यापारका रुपया रख लेते हैं। बड़े नामी सेठ भी इस व्यापारका बैंकिंग कार्य करते नहीं हिचकते। कई नामी सज्जन समाजके नेताका मुडासा बांधे हुए इस कार्यमें और कुछ नहीं तो तीन चार दिन भर-पेट लड्डू ही उड़ा आते है। धिक्कार! ऐसे नेताओं पर! ऐसे सेठों पर!

पुराने समयके इतिहाससे पता लगता है कि पहले दास व्यवसाय होता था। लाखों रुपये दास-दासियाँ बेंचकर पैदा किये जाते थे। इसके

व्यापारी काफिला बांध बांधकर इस व्यवसायको करते थे। इसके अत्याचारसे संसारमें बड़ा भारी कोलाहल मचा था। जिसमें यूरोप देशमें यह ऐसी ही बढ़ती पर था जैसे हमारे देशमें आज कन्याविक्रयका बाजार बढ़ती पर है।

ज्यों ही सभ्यता और मनुष्यत्वका विकाश इनमें हुआ त्योंही वे स्वतंत्रताके मूलको समझने लगे और इस व्यापारका घोर विरोध करने लगे। अंतमें इस घृणित व्यापारकी इतिश्री हो गई और राज्यसे ऐसा कानून बन गया कि जो इस व्यवसायको करेगा, करानेमें सहायता पहुँचावेगा या ऐसे व्यवसायियोंसे संबंध रक्खेगा वह कठोर दंड पावेगा। आज दिन भी इस कानूनकी पाबन्दी है। पर इन कन्या बेचनेवालोंके लिए वह कानून भी कुछ कामका नहीं।

उसी जातिके पंच और नेता इसको जानते हुए भी बड़े मजेसे न्यौतेमें सम्मिलित होते हैं। ये ही क्यों विना किसी आनाकानीके घंटो मंदिरजीमें शास्त्र बांचनेवाले, सैकड़ों ही शाकादिके त्यागी, सैकड़ों बड़े बड़े व्रत करने वाले, सैकड़ों दयाधर्मके प्रचारक इन लड्डूओं पर कौवे और बाजकी भाँति टूटते हैं। क्या यही धर्मकी उपासना है? बड़े बड़े सेठ और नेता इस भयसे कि हमारा कौन मान करेगा इनसे कुछ भी नहीं कहते अगर कहें तो फिर ऐसे मूर्ख सेठोंका कौन मान करें?

जो एक चीटीं पर पैर पड़ जाते ही 'हाय हाय' की झड़ी बांध देते हैं वे ही अकलके दुश्मन अंधे बनकर इस कन्याके ऊपर ऐसा अत्याचार होते देख चूँ तक नहीं करते। जो घंटो शास्त्र स्वाध्यायमें बिता देते हैं और दूसरोंको अन्य नाना प्रकारके उपदेश देते हैं वे भी कन्याकी गर्दन इस प्रकार कटते देख चुप्पी मार जाते हैं। समाज और जातिके भ्राताओं! क्या यही तुम्हारा कर्तव्य है। क्या इन कर्तव्योंसे आप फिर मनुष्य योनि प्राप्त कर सकेंगे?

लाखों रुपयोंका दान दीजिए, सैंकडों अनाथालय, धर्मशालायें और मन्दिर बनवाइए, उपवास करके खूब शरीरको सुखाइए, शाकादि आदि बाहरी खूब आडम्बर दिखाइए पर इनसे क्या आपने सुख पालिया! क्या इससे आप दूसरे सभ्य समाजोंके पास बैठ गये? जबतक इन कन्या-योंकी हत्या न रोकी जायगी तबतक मित्रो, आपके दानपर धिक्कार!

तीन तीन हजारको एक एक आंख बिके और तुम्हारे कान पर जूँ तक न रेंगे। धिक्कार इस जीवन पर! वृद्धोंके साथ निर्बोध बालिकायें मोल लेकर ब्याह दी जाय और तुम उसे आँखोंसे देखते रहो। क्या यह तुम्हारे लिए लज्जाकी बात नहीं है? हाय! क्या यही शास्त्रोंकी आज्ञा है? क्या यही अहिंसा और 'दया'की व्याख्या है।

जहाँ एक मनुष्यको बेच देना घोर पाप माना जाता है वहाँ निरा-

पराधनिएँ अबोध बालकाएँ छोटी ही अवस्थामें थोडी जैसा मूल्य लेकर बेच दी जायँ ? क्या इससे समाज अपनी उन्नतिकी आशा रखता है ? समाजकी इस प्रथापर, जातिके पंचोंपर और नेताओंपर एक बार नहीं, सौ बार नहीं, हजार बार नहीं, बल्कि करोड़वार धिक्कार !

यदि समाजको उन्नति अवस्थामें देखना चाहते हों, यदि संसारमें अपना मान चाहते हो, यदि सभ्य कहलाना चाहते हो, यदि भारतवासी होनेका दावा रखते हो, यदि दया और अहिंसा धर्मके उपासक जाहिर करना चाहते हो तो जोर शोरके **आन्दोलनद्वारा** इस प्रथाका नाश कीजिये।

रद्दी पदार्थोंका उपयोग।

(लेखक—श्रीयुत विज्ञान विनोदीजी)।

साधारणतः सभी कोई जानते हैं कि संसारमें जितने पदार्थ हैं। वे सब उपयोगी हैं, चाहे कोई उनका उपयोग जाने अथवा नहीं। संसारमें विज्ञानने अद्भुत कार्य बताये हैं और मनुष्यकी विलक्षण शक्ति द्वारा नित्य नूतन कार्य बतलाता जा रहा है।

संसारमें प्रत्येक पदार्थको उपयोगी बनानेके लिए किन किन साधनोंका प्रयोग किया जाता है, तथा गत पचास वर्षोंमें विज्ञान द्वारा कैसे २ आश्चर्यजनक काम हुए हैं, उनके अनेक उदाहरण अपने पाठकोंको बतलाना ही इस लेखका उद्देश्य है।

टिनके टूटे फूटे टुकड़े व कतरन जिन्हें साधारण गृहस्थ केवल फेंक देने योग्य समझ फेंक देता है, आज उन्हीं फेंक देनेवाले पदार्थोंसे नाना प्रकारके सुन्दर बटन, बहु मूल्य खिलौने आदि वस्तुएँ बनाई जाती हैं।

फूटी हुई कांचकी बोतलों, शीशियों और चुड़ियोंके टुकडोंका चूरा करके इसमें विशेष प्रकारकी मिट्टी और रेती मिलाकर उससे राज-

कीय प्रासादोंमें लगाये जाने योग्य सुन्दर रंगविरंगे पत्थर तय्यार किये जाते हैं।

फटे पुराने जूतों और रबड़के टुकड़ोंसे भी भांति भांतिके लाभकारी पदार्थ बनाये जाते हैं। यहां भारतवर्षमें हम देखते हैं कि जिस कागजका एक बार प्रयोग कर लिया जाता है, उसका बहुत थोड़ा भाग यहांके कारखानोंमें पहुंच पाता है। कुछ बाजारोंमें पुड़िया बांधने व डलिया बनानेके काममें आता है। शेष इधर उधर घरों, गलियों और बाज़ारोंमें योंही पड़ा रहकर कूडा बढ़ाया करता है। इसी प्रकार पुराने फटे चीथड़ोंको भी निकम्मी सी वस्तु समझकर घरोंमें डाल रखते हैं और व्यर्थका कचरा बढ़ाते हैं। परंतु इन्ही रद्दी कागजों व चीथड़ोंसे मंहगे दामो विकनेवाले; बढ़ीया चिठ्ठी लिखनेके कागज़ तथा लिफाफे तक बनाये जाते हैं और यहांतक कि इससे वह कागज तैयार होता है जिसपर प्रति वर्ष करोड़ों रुपयेके नोट बनाये जाते हैं।

हमारे यहां सुगंधित तैल व इत्र प्रायः फूलोंसे ही तैयार किये जाते हैं; परंतु विलायतसे आनेवाली चित्ताकर्षक शीशियें मिट्टीके तैलसे बनाये हुए द्रव्यसे ही भरी होती हैं। जर्मनी तरह तरहके मनोहर रंग, (Coal Tar) डंबर जैसे धिनौने पदार्थसे तय्यार करके लाखों नहीं करोड़ों रुपये प्रति वर्ष कमाता है। लकड़ीका बुरादा जो कि यहां केवल जलाने तथा बर्फ लपेटनेके ही काम आता है, उसीमें (Oxide of Magnasia) औक्साइड आव मैगनेशिया मिलाकर हलके व मजबूत कबेलू बनाये जाते हैं। इसी पदार्थसे अल्कोहल (Alcohal) शराब तथा अन्य वस्तुएँ भी बनती हैं। अमेरिकाके न्यूयार्क नगरमें केवल लकड़ीके बुरादेका ही सौदा करनेवाले व्यौपारियोंकी संख्या ५०० से कम नहीं हैं। ये प्रति वर्ष अस्सी लाख रुपयेका बुरादा बेचते हैं।

भारतमें आगरेके बड़े बड़े कसाईखानोंमें रुधिरको सुखा लेते हैं। इस सुखे हुए रुधिरसे भी अच्छी पूंजी हाथ लगती है। इसे मौरिश-

सवाले अपने यहां ले जाकर गन्नेकी खेतीमें बरतते हैं। इसी प्रकार अन्य देशोंके चतुर लोग हड्डियोंको एकत्रित करके और उनका चूरा करके, उसका बढ़िया खाद बनाते हैं। यहां तक कि मल, मूत्र जैसे गंदे पदार्थ खेतीके लिये अच्छा खाद बनानेके काम आते हैं। इसी कारण म्यूनीसीपैलेटियां मल मूत्रको नगरोंके बाहर गढ़ोंमें गड़वाती हैं और प्रति वर्ष इन गढ़ोंसे सहस्रोंकी आय होती है।

जिस प्रकार हम आजकल अपने कपड़े, रंगों व रसायनोंके कारखानोंके फ़ाजुल बचे हुए द्रव्योंको निरुपयोगी समझते हैं, उसी भांति कुछ समय पहले इंग्लेंडवाले भी समझते थे। वे उसे नदियोंमें बह जाने दिया करते थे।

इससे एक छोटी नदी मेडलाकमें, जो मेन्चेस्टर नगरमें होकर बहती थी, अच्छा दृश्य दिखलाई दिया करता था। कुछ दूरी तक उसके पानीकी तिनरंगी लहरें होती थीं—एक ओर साबुनके कारखानेके बचे हुए द्रव्यसे उसमें चमकदार पीलापन होता था। बीचके भागमें रंगोंके कारखानेसे आनेवाला द्रव्य उसे गुलाबी कर देता था, दूसरी ओर हैनोवर मिलोंके कन्डेंसरोंके कारण वह काला होता था।

विज्ञानने ऐसी घटनायें एक भूतकालकी कथा मात्र बना दी हैं। आधुनिक ढंगपर चलनेवाले अनेक ऐसे कारखाने हैं, जो अपनी चार दिवारीसे बाहर इस बातका पता भी नहीं लगने देते कि अन्दर उनके क्या कार्यवाही हो रही है?

एक वस्तु, तय्यार हो जानेपर जो मसाला शेष रहजाता है उसका भी वहीं उपयोग करलिया जाता है। प्रयोगशालामें उसका विश्लेपण* (Analysis) करके यह मालूम कर लिया जाता है, कि इसमें कौन २ से पदार्थ किस २ परिमाणमें बचे हुए हैं, और उनसे कौनसी काममें

---

* चीजोंके प्रथक करनेकी क्रिया।

आनेवाली वस्तु तैयार हो सकती है ? इस क्रमसे एक कारखाना कई वस्तुओंको तैयार करनेवाला बन जाता हैं। उसके कार्योंका क्षेत्र बड़ी आसानीसे बढ़ जाता है। क्योंकि सब अधिक सुभीते व बचतसे हो जाते हैं, जिसके कारण उन्हें खूब आमदनी होती है।

हमारे देश बान्धव भी अब वैज्ञानिक शिक्षाका स्वागत करने लगे हैं। इन्हें उचित है कि अपनी बुद्धि द्वारा यहांके आजकल फ़जूल व्यर्थ समझे जानेवाले पदार्थोंका यथाशक्य अधिकतम उपयोग करें, जिससे प्रकृतिकी बहुत ही कम वस्तुएँ रद्दीकी गणनामें आ सकें; साथ ही जिससे देशको भी अतुल आर्थिक लाभ हो।

अकबर बादशाहका खज़ाना।

(लेखक—श्रीयुत मुंशी देवीप्रसादजी मुन्सिफ।)

अकबरबादशाहने जब आगरेका किला बनाना शुरु किया था तो उसकी लागतके लिए एक जरीब जमीनपर तीन सेर नाजकी लाग रैयतपर लगा कर उसकी उधाई करनेको न्यारे ही तहसीलदार भेज दिये थे। इस आमदनीसे तीन करोड़ रूपयेकी लागतमें, यह किला पांच वर्ष तक बराबर काम जारी रहनेपर तैयार हुआ था। मुल्लां अब्दुल कादिर" बदाउनीने अपनी तवारीखमें लिखा है, "इसमें इतना रूपया तो लगा पर यह दुनिया भरके सोने चांदी और जवाहरातके लिए एक मजबूत भंडार बनगया, सो यह बात ठीक ही थी। क्योंकि इस किलेके खजानेसे इतना बहुत द्रव्य खर्च होता रहा है कि जिसकी संख्या देखकर आदमीकी अकल हैरान हो जाती है और कहती है कि अकबरने कितना असंख्य द्रव्य खजानेमें जोड़ा था, जिसका पीढियों तक पार नहीं आया। जाहांगीर जैसे विलासी बादशाहने अपने भोग विलासमें खूब ही धन उडाया। शाहनांह जैसे आडंबर प्रिय सम्राटने

मुनि —



श्रीयुत बाबू विश्वंभरदास गार्गीय–झांसी ।

जैनविजय प्रेस–सूरत.

आनेवाली वस्तु तैयार हो सकती है ? इस क्रमसे एक कारखाना कई वस्तुओंको तैयार करनेवाला बन जाता हैं। उसके कार्योंका क्षेत्र बड़ी आसानीसे बढ़ जाता है। क्योंकि सब अधिक सुभीते व बचतसे हो जाते हैं, जिसके कारण उन्हें खूब आमदनी होती है।

हमारे देश बान्धव भी अब वैज्ञानिक शिक्षाका स्वागत करने लगे हैं। इन्हें उचित है कि अपनी बुद्धि द्वारा यहांके आजकल फ़ज़ूल व्यर्थ समझे जानेवाले पदार्थोंका यथाशक्य अधिकतम उपयोग करें, जिससे प्रकृतिकी बहुत ही कम वस्तुएँ रद्दीकी गणनामें आ सकें; साथ ही जिससे देशको भी अतुल आर्थिक लाभ हो।

अकबर बादशाहका खज़ाना।

(लेखक—श्रीयुत मुंशी देवीप्रसादजी मुन्सिफ।)

अकबरबादशाहने जब आगरेका किला बनाना शुरु किया था तो उसकी लागतके लिए एक जरीब जमीनपर तीन सेर नाजकी लाग रैयतपर लगा कर उसकी उघाई करनेको न्यारे ही तहसीलदार भेज दिये थे। इस आमदनीसे तीन करोड़ रूपयेकी लागतमें, यह किला पांच वर्ष तक बराबर काम जारी रहनेपर तैयार हुआ था। मुल्लां अब्दुल कादिर" बदाउनीने अपनी तवारीखमें लिखा है, "इसमें इतना रूपया तो लगा पर यह दुनिया भरके सोने चांदी और जवाहरातके लिए एक मजबूत भंडार बनगया, सो यह बात ठीक ही थी। क्योंकि इस किलेके खजानेसे इतना बहुत द्रव्य खर्च होता रहा है कि जिसकी संख्या देखकर आदमीकी अकल हैरान हो जाती है और कहती है कि अकबरने कितना असंख्य द्रव्य खजानेमें जोड़ा था, जिसका पीढियों तक पार नहीं आया। जाहांगीर जैसे विलासी बादशाहने अपने भोग विलासमें खूब ही धन उडाया। शाहजांह जैसे आडंबर प्रिय सम्राटने

मुनि



श्रीयुत बाबू विश्वंभरदास गार्गीय–झांसी।

जैनविजय प्रेस–सूरत.





(एक आठ वर्षीय बालिकाके साथ बुड्ढेकी भाँवर फिर रही है ।)

कन्याका बाप—वाह, कुछ भी हो, हमारे तो हजारों रुपयेकी थैली आ गई । एक और होजाय तो वस, मैं भी सेठ करोड़ीमल हो जाऊं । यारो ! यदि लखपति बनना चाहते हो तो मेरा अनुकरण करो !

तख्त ताऊस और ताजमहल जैसे बढ़िया कामोंमें इसी खजानेका रुपया और रत्न लगाया था। आलमगीर औरंगजेब भी दक्षिणकी बेफायदा लड़ाईयोंमें वहींसे सोना चांदी मंगा २ कर मिट्टीमें मिलाता रहा । शाह आलम, बहादुरशाह जब अपने भाई कामबख्शसे लड़नेके लिए दक्षिणमें गये तो उस समय अकाल दुर्भिक्ष था और मरी पड़ रही थी । बुरहानपुरमें बहुतरे आदमी मरीसे मरगये । एक कूच तीन कोसका होताथा वहां तक एक बीमारके लिए ८) रुपया किराया हम्मालोंका होता था । हर मंजिलमें कई २ हजार कबरें खुदी हुई तैयार रहती थीं । ज्योंही बादशाही सवारी पैशाखानेमें दाखिल होतीथी त्योंही मुर्दे उन कबरोंमें गाड़े जातेथे। लशकरमें दवाईयोंका इतना काल था कि एक तोला कासनी एक रुपयामें आतीथी । माजून और शरबत वगैराका तो कहना ही क्या था । नाज भी एक रुपयाका ३—४ सेरसे अधिक नहीं मिलता था । इस पर भी लशकर अकबरी मोहरोंसे मालामाल था । वे आगरेके खजानेसे खर्चके वास्ते खिची चली आतीथीं और ८) के भावसे बिकती थी उन्हींका मोल शाहजाहांके समयमें १४) था । जब जहांगीरशाहपर उसका भतीजा फर्रुखसियर पटनेसे चढ़कर आया तो जहांदारशाहने खजाना खोलकर सोना चांदी अमीरों और सिपाहियोंको दे दिया इसपर भी जो कमी हुई तो दौलतखानेकी छतका सोना चांदी उतारा और जवाहारातखानेके जवहरात निकाले । तवारीख मोहम्मदशाहीके लेखक मुन्शी खुशालीरामके बाप मुन्शी जीवनरामने जवाहरखानेके सियाहेमें लिखा देखाथा कि एक सप्ताहमें साढ़े तीन करोड़ रुपयोंका जवाहरात खर्च हुआ फिर मोहम्मदशाह रंगीलेकी रंगरलियों में भी रहासहा खजाना खूब उड़ा । यही क्यों इसके बाद नादिरशाह भी बहुत कुछ लाद ले गया । मोहम्मदशाहके राज्यमें पठानों और मरहठोंने भी खूब लूटा । कुछ खुरचन रही

(१) हिसाब.





(एक आठ वर्षीय बालिकाके साथ बुढ्ढेकी भाँवर फिर रही है।)

कन्याका बाप—वाह, कुछ भी हो, हमारे तो हजारों रुपयेकी थैली आ गई। एक और होजाय तो बस, मैं भी सेठ करोड़ीमल हो जाऊं। यारो! यदि लखपति बनना चाहते हो तो मेरा अनुकरण करो!



दोनों ओरके काम करनेवाले जातीय मुखिया ही है । अस्तु किसी प्रकारका आपसमें झगड़ा नहीं हुआ और आनंद ब्याह कार्य समाप्त हो गया ।

(२)

सेठ रामकिशोर धनी-मानी मनुष्य हैं। आप ठेकेदारी करते हैं। आपको सब भांतिका सुख है; परंतु एक बड़ा भारी दुःख इस बातका है कि आपको लोगोंने जाति च्युत कर रक्खा है उसका मुख्य कारण यह है कि आपको सेठ रामलालजीने अपनी करी हुई स्त्रीके लिए आपको उसी जातिका ढूंढ़कर गोद ले दिया था ।

जब तक सेठ रामलालजी जीवित रहे तबतक रामकिशोरकी ओर किसीने आंख उठाकर नहीं देखा वरन् उसका ब्याह उसकी जातिमें ही हुआ और उसकी जातिवाले जो अब उससे घृणा करते हैं और बार २ उसकी विनती करनेपर भी क्षमा नहीं देते वे सब सम्मलित हुए थे, जो कहनेको पंच और सर पंच कहाते हैं; परंतु उनके कार्य महा नीचोंकेसे होते हैं।

जातिमें आजकल दलालोंकी कमी नहीं है । जातिमें द्वेष फैलाना दो और चार दल करना, छोटे २ कामों तकमें अपनी दलाली सीधी करना उनका मुख्य काम है ।

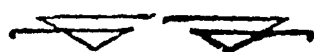
इसके सिवा किसी विधवाको धमकी देकर १०), ५) रुपया झटक लेना भी उनका पेशा है । किसी बूढ़ेके साथ किसी बालिकाके जीवनकी बागडोर थमाकर दो चारसौसे जेब गरम करते वे नहीं शरमाते हैं ।

धन्य है वीर दलालो ! तुम्हारे कर्तव्योंको। क्या तुम्हें संसार नहीं तो भी नर्क तनिकका भी डर नहीं। भारतको रसातल भेज ही दिया, अब शेष क्या है जिसके लिए चून बांधके पीछे पड़े हो ?

(३)

सेठ रामकिशोर मरते मर गये; परंतु किसीने उन्हें जातिमें लेना न स्वीकार किया । सेठजी और सेठानीके मरण पश्चात् मनोरमाकी दादी-के बार २ विन्ती करनेपर पंच लोगोंने उसके पोते पोतीको जातिमें स्वीकार कर लिया, पश्चात् उसके सगे भाई बंधु भी उसके पक्षमें गये । दोनो बालक पंचोंके सुपुर्द कर दिये गये । मनोरमाकी आयु

थी सो सन् १८६७ के गदरमें साफ हो गई । भला जिस खजानेका धन ३०० वर्ष तक इस बेदरदीके साथ खोया और लूटागया उसका कोई क्या लेखा कर सकता है ? यह क्या कुछ कम बात थी कि कोहनूर जैसा हीरा जो आजकल बहुत प्रसिद्ध हो रहा है, उसीमेंका एक तुच्छ रत्न था और एक करोड रूपयोंके हीरे लाल और पन्ने जो तखत ताउसमें जड़े गये थे, उसी खजानेमेंके जवाहरखानेके फालतु जवाहरात थे। इस जवाहरतखानेमें भीम पांडवका एक पटका था जिसमें दुनिया भरके अनमोल जवाहरात टके हुए थे । और तो क्या पांडवोंके समयके अलभ्य पदार्थ भी इसमें इकट्ठे किये गये थे । तवारीख महम्मदशाहीमें जहां सप्ताहके भीतर साढे तीन करोड़का जवाहरत निकाला जाना लिखा है, वहां इतना और भी लिखा है कि उस जवाहरातमें राजा युधिष्ठिरका भाई भीमसेनकी कमरका जडाउ पटका भी था जो ग्यारह गज लम्बा और सात गज चौडा था ।



भाइयो ! सावधान ।

(लेखक-फूलचन्द अग्रवाल ।)

(१)

आज गोपीलालको जितनी प्रसन्नता है उतनी कदाचित् ही किसीको हुई हो; क्योंकि उसको आज मनोवांछित फल प्राप्त होनेवाला है अर्थात् जिस मनोरमाको वह हृदयसे प्रेम करता है, आज उसीसे इसका ब्याह होनेवाला है ।

मनोरमा मातृ-पितृ विहीन अनाथ बालिका है, घरमें केवल एक उसके बूढ़ी दादी और छोटा भाई है, दो बड़ी बहिन और भी हैं; परंतु उनका ब्याह सेठ रामकिशोर स्वयं कर परलोक सिधारे थे ।

मनोरमाके ब्याहका भार जातीय नेताओंपर है । गोपीलाल भी पितृ हीना है, घरमें केवल एकके और कोई नहीं है । बेटे और बेटीवाले

दोनों ओरके काम करनेवाले जातीय मुखिया ही हैं । अस्तु किसी प्रकारका आपसमें झगड़ा नहीं हुआ और सानंद व्याह कार्य समाप्त हो गया ।

(२)

सेठ रामकिशोर धनी-मानी मनुष्य हैं। आप ठेकेदारी करते हैं। आपको सब भांतिका सुख है; परंतु एक बड़ा भारी दुःख इस बातका है कि आपको लोगोंने जाति च्युत कर रक्खा है उसका मुख्य कारण यह है कि आपको सेठ रामलालजीने अपनी करी हुई स्त्रीके लिए आपको उसी जातिका ढूंढ़कर गोद ला दिया था ।

जब तक सेठ रामलालजी जीवित रहे तबतक रामकिशोरकी ओर किसीने आंख उठाकर नहीं देखा वरन् उसका व्याह उसकी जातिमें ही हुआ और उसकी जातिवाले जो अब उससे घृणा करते हैं और बार २ उसकी विनती करनेपर भी क्षमा नहीं देते वे सब सम्मलित हुए थे, जो कहनेको पंच और सर पंच कहाते हैं; परंतु उनके कार्य महा नीचोंकिसे होते हैं ।

जातिमें आजकल दलालोंकी कमी नहीं है । जातिमें द्वेष फैलाना दो और चार दल करना, छोटे २ कामों तकमें अपनी दलाली सीधी करना उनका मुख्य काम है ।

इसके सिवा किसी विधवाको धमकी देकर १०), ५) रुपया झटक लेना भी उनका पेशा है । किसी बूढ़ेके साथ किसी बालिकाके जीवनकी बागडोर थमाकर दो चारसौसे जेब गरम करते वे नहीं शरमाते हैं ।

धन्य है वीर दलालो ! तुम्हारे कर्तव्योंको । क्या तुम्हें संसार नहीं तो भी नर्क तनिकका भी डर नहीं । भारतको रसातल भेज ही दिया, अब शेष क्या है जिसके लिए चून बांधके पीछे पड़े हो ?

(३)

सेठ रामकिशोर मरते मर गये; परंतु किसीने उन्हें जातिमें लेना न स्वीकार किया । सेठजी और सेठानीके मरण पश्चात् मनोरमाकी दादी-के बार २ विन्ती करनेपर पंच लोगोंने उसके पोते पोतीको जातिमें लेना स्वीकार कर लिया, पश्चात् उसके सगे भाई बंधु भी उसके पक्षमें हो गये । दोनो बालक पंचोंके सुपुर्द कर दिये गये । मनोरमाकी आयु

१४ वर्षकी है इसी कारण इसी वर्ष इसका ब्याह करना है। वर देख-नेके समय जातिका निर्धन, योग्य, अयोग्य, युवा और बूढ़ा तक यही चाहता था कि उसके साथ उस सुकुमार बालिकाका ब्याह हो। बड़ी कठिनाई तथा कुछ सज्जनोंकी कृपासे गोपीलाल जो से० रामकिशोरके मकानमें पहले रहता था तथा प्रेम करता था और सर्वथा वर्तमान समाजमें योग्य वर था मनोरमाका वर निर्वाचित हुआ।

(४)

गोपीलालका ब्याह होते तो हो गया सब लोगोंने बरातमें खान पान भी किया; परंतु दलाल लोग धोखेमें रहे, अंत समय तक उन्हें फूटी कौड़ी भी नहीं मिली। प्रथम स्वीकार करलेनेसे कुछ सज्जन जिन्होंने इस ब्याहमें हाथ बंटाया था, सच्चे मनसे इसके पक्षमें हो गये। यह बात दलालोंके दिलमें बहुत खटकी, उसी समयसे उन्होंने १०,२० लोगोंको बहकाया कि क्या कारण था जो उन लोगोंने गोपीलालका ब्याह मनोरमासे कर दिया ? क्या सब लोगोंसे राय ली गई थी ? अभी कमसे कम २५ युवा कुंवारे और रंडुए बैठे हैं इन सबको एकत्र करते और जिसके ग्रह पंडित मिला देता उसीसे ब्याह होना चाहिए था।

वैश्य समाजमें शिक्षाका अभावसा ही है; क्योंकि उन्हें कौन अपने पुत्रको पढ़ाकर १०) मासिकका बाबू बनाना है, तुरंत किसी चालाककी बातोंमें बिना मतलब समझे आ जाते हैं। उसी दिनसे जातिके दो दल हो गये।

हायरे भारत ! वैश्य समाज जिसकी बड़ी भारी जिम्मेदारी है जिसके बड़े कर्तव्य हैं उसकी यह दशा है कि पंच लोग जो मुखिया है, उन्हें रात्रि दिवस यही कतर ब्योंत करते जाता है बिना परिश्रम किये अपने भोले भाइयोंके गले पर छुरी फेर कर रु. जाना नहीं तो किसी प्रकार (Blame) लांछित करके किसी भाईको जाति च्युत करना उनके बांये हाथका कर्तव्य है। उन्हें इस बातका स्वप्नमें भी विचार नहीं है कि वे किसी भाईको च्युत करके उसकी ही हानि नहीं कर रहे बरन एक बड़े समूह (उसकी संतान) से अपनी जातिको प्रति दिवस कम कर रहे हैं। इसीसे कहते हैं भाइयों सावधान, अन्यथा कभी वह समय आना संभव है जब कोई सच्चा वैश्य ढूंढे भी न मिले।

एक विद्यार्थी मित्रको पत्र ।

(लेखक—बाबू कृष्णलाल वर्मा ।)

प्यारे मित्र !

मिस्टर डी. के द्वारा तुम्हारी पूरी परिस्थितियाँ मालूम हुईं । मैं नहीं समझ सका कि तुमने अबतक मुझे क्यों नहीं लिखा था ? क्या तुम्हें विश्वास नहीं था ? हाँ ठीक है । संसार विश्वास करनेकी जगह नहीं है । अविश्वास और विश्वासघातकताका नाम ही पंचमकालका संसार है । जिस संसारमें भाई भाईका खून करता है; बहिन भाईके गले छुरी चलाती है, मा बेटेका गला घोट देती है; स्त्री पतिका—प्रेमीका रक्तपात करती है; श्वसुर पुत्र-वधूको बुरी दृष्टिसे देखता है;.......कहाँ तक लिखूँ जिधर देखो उधर ही अविश्वास है । कहा जाता हैं कि " **सौंपा तो साँप भी नहीं खाता ।** " अर्थात यदि साँप एक वार किसीको विश्वास देकर अपनी देख-रेखमें लेता है, तो उसपर कभी ज़हर नहीं उगलता । आप नष्ट हो जाता है; परन्तु विश्वासघातक बनकर रहना वह कभी पसंद नहीं करता । मगर यह प्राचीनकालकी बातें हैं । आजकल ये बातें न रहीं । आजकल चारों तरफ़ विश्वासघातकताका ही दौरदौरा है, और यही कारण है, कि आजकलके संसारका नाम पंचमकाल रख दिया गया है । मगर मित्र ! नहीं । ऊपर आँख उठाकर देखो । आकाश विना स्तंभके खड़ा हुआ है । क्यों ? केवल विश्वास और प्रेमके आधार । जगतके अंदर अब भी विश्वास मौजूद है; अब भी सच्चे प्रेमकी झलक दिखाई दे रही है; और अब भी पावित्र्य हमें अपनी मंद मंद किरणें दिखा रहा है । तुम्हारा मुझपर विश्वास न करना भूल भरा है । मेरे पर विश्वास करनेकी क्या बात है ? मैं तो कहूंगा कि सारे संसारपर विश्वास करो । संसार तुम्हें धोखा नहीं दे सकेगा । हाँ, तुम्हारे हृदयमें किसीको धोखा देनेवाला अंश नहीं चाहिए, यदि वह ज़हरीला अंश तुमसे मौजूद होगा तो अवश्य

धोखा खाओगे और जगत तुम्हें पुचकार कर तुम्हारे गले छूरी फेर देगा। इतना और ध्यान रखना कि यदि तुम अपना हृदय संसारपर विश्वास रखने जितना विशाल न बना सको तो न सही पहले एकपर ही पूरा विश्वास रखना, एकपर ही पूरा प्रेम रखना, उसके लिए अपना तन, मन, और धन सब कुछ न्योछावर कर देना। यदि यह आत्मोत्सर्गका (Self-secrifice) गुण तुममें आ गया तो समझ लो कि तुमने सब कुछ पालिया। तुम्हारे सारे ध्येय एक इसी गुणसे सिद्ध हो जायँगे। दुनियामें जिसके हृदयमें प्रेमकी ज्योति जग जाती है, वह व्यक्ति क्षुद्र और कुंद जह्न (Dull minded) होनेपर भी बडप्पन पालता है। आवश्यकता केवल आत्मोत्सर्ग कर देनेपर भी प्रेमका गीत गाते रहनेवाले हृदयकी है। यदि तुम्हारे हृदयमें आत्मोत्सर्ग करने जितना सामार्थ्य–पूर्ण प्रेमकी ज्योति (वह चाहे केवल एकके लिए ही क्यों न हो?) प्रकट हो जायगा तो विश्वास रक्खो कि तुम सब कुछ पालोगे। तुम्हारा प्रेम पूर्णरूपसे प्रकाशित होकर जगत व्यापी हो जायगा, और सूर्यकी तरह संसारमें चमकने लगेगा।

तुमने बट–बीज देखा होगा। पारम्भमें वह जरासा होता है; परन्तु जब प्रस्फुटित होकर वृक्षका रूप धारण करता है तब कितना बड़ा हो जाता है? दो दो तीन तीन मील तक उसकी जड़े फैल जाती हैं और हजारों बल्कि लाखों लोगोंको वह अपनी शीतल छायामें बिठा सकता है। प्रेमकी आत्मोत्सर्गकी–भी ठीक यही दशा है। प्रारम्भमें यह बीजके रूपमें होता है; परन्तु पीछेसे वह बहुत बड़ा रूप धारण कर लेता है। यानी पहले हमारा प्रेम एक पर होता है; उसके लिए हम अपना सर्वस्व समर्पण करनेको तैयार होते है फिर तमाम संसारके लिए।

विद्यार्थी जीवनमें स्वप्नमें भी खयाल नहीं करना चाहिए कि तुम्हें खाने पीने, पहिनने, ओढ़नेका सुख मिले। यह इन्द्रिय संयम, आत्म

संयम, और इच्छानिरोध करनेकी अवस्था है । जैसा मिल जाय वैसा खा पी लेना, और ओढ़ने बिछाने और पहिननेके लिए जैसे कपड़े मिले काममें ले आना यही तुम्हारा काम होना चाहिए। यदि तुम खाने पीने पहिनने, ओढ़नेकी झंझटोंमें पड़ जाओगे तो तुम कभी अपना ध्येय सिद्ध न कर सकोगे। यदि दैवयोगसे तुम्हें सिद्धि मिल गई तो भी तुम उत्तम मनुष्य तो कदापि न बन सकोगे। बोर्डिंगोंमें जैसे जैसे विशेष सुभीता होता जाता है वैसे ही वैसे विद्यार्थियोंकी इच्छाएँ विशेष२ विकृत होती जाती हैं । कभी उन्हें शाक बुरा मालूम होता है; कभी उन्हें दालसे घृणा आती है; कभी वे ठंडी रोटी खानेसे नाक भौंह सिकोड़ते हैं और कभी मिठाई खानेके लिए उनकी जीभें लपलपाने लगती हैं । कभी उन्हें स्प्रिंगदार पलंगपर सोनेकी इच्छा होती है; कभी उनको लकड़ीके तख्तेवाली कुर्सी बुरी मालूम होती है और बड़बड़ाते हुए कहते हैं, कि कमबख्त इस बोर्डिंगमें तो किसी बातका भी सुख नहीं है । अमुक बोर्डिंगमें तो ऐसी उत्तम कुर्सियाँ, ऐसे उत्तम पलंग और ऐसा उत्तम फर्निचर है कि देखते ही दिल खुश हो जाता है । मगर मित्र ! हमेशा स्मरण रक्खो कि जो व्यक्ति सुख सामग्रियाँ रखते हुए स्कूल या कॉलेजोंसे पास होकर निकले हैं उन्होंने कभी कुछ नहीं किया । वे कभी जाति, देश या धर्म किसीके भी उपयोगमें नहीं आये । उन्हें हमेशा अपना पेट पालना ही सूझा । देशमें आज हजारोंकी संख्यामें बड़ी २ डिग्रियाँ प्राप्त व्यक्तियां हैं । क्या तुम एकका भी नाम बता सकते हो, कि जिसने आपापंथी–पेटपालू–सुखार्थी रह कर विद्या प्राप्त की हो और फिर वह देश या समाजका कुछ कार्य करने लगा हो । प्रतिकूल इसके जितने भी आज देश या समाजके नेता हैं या पहले हो गये हैं, उन सबकी जीवनियोंको लेकर देखो । उनकी विद्यार्थी अवस्थाका हाल पढ़कर कहो कि उन्होंने अपनी विद्यार्थी अवस्था मेरे कहनेके अनुसार ही बिताई है या नहीं । विद्यार्थी

अवस्था ही क्या गृहस्थावस्था भी उनमेंसे कई महात्माओंने ऐसे ही बिताई है और बिता रहे हैं। उन सबमें ईश्वरचंद्र विद्यासागर, न्यायमूर्ति रानाडे, गोखले, महात्मा गाँधी, तिलक, जैन समाजके प्रसिद्ध व्यक्ति अर्जुनलाल सेठी बी. ए., श्रीयुत वाड़ीलाल मोतीलाल शाह, आर्यसमाजके प्रसिद्ध व्यक्ति पं० लेखराज, गुरु दत्तामल, लाला हँसराज; महात्मा मुंशीराम, पाश्चात्य देशके प्रसिद्ध व्यक्ति, गेरीबाल्डी, नेपोलियन, बुकर टी. वाशिंगटन, इत्यादि व्यक्तियोंका विद्यार्थी जीवन मेरे कथनका प्रमाण हैं। अस्तु।

मैं तुम्हें इतना ही कहना चाहता हूँ कि तुम इन महात्माओंके जीवन चरित्र पढ़कर अपना विद्यार्थी जीवन भी उसी तरहके साँचेमें ढ़ालो। इससे यह मत समझना कि मैं तुम्हारे पास बेडिंग, ब्लेंकेट आदि होना आवश्यक नहीं समझता हूँ। इनका तुम्हारे पास रहना बहुत ही जरूरी है। तुम्हें यह नहीं मालूम होना चाहिए कि मेरे पास अमुक वस्तुका अभाव है। मगर तुम अपने पास सब चीज़ोंके होते हुए भी यह दिखा दोगे कि एक ग़रीबसे ग़रीब और सब प्रकारकी असुविधावाला मनुष्य कैसे आनंद और उत्साहपूर्वक अपना जीवन बिता सकता है। यह अपने सहपाठियोंको दिखानेसे तुम्हारा और उन विद्यार्थीयोंका बहुत उपकार होगा। तुम अपनी इन्द्रियोंके और इच्छाओंके मालिक बनोगे और देखनेवाले विद्यार्थी भी तुम्हारा अनुकरण कर वैसे ही बननेका प्रयत्न करने लगेंगे।

जिस प्रेमका मैंने उपर जिक्र किया है, वह प्रेम तुम्हारा इस समय अपनी साध्य विद्यामें पूर्ण रूपसे प्रस्फुटित होने दो और..........।

तुम्हारा—

प्रेमात्मा।



मुनि–जीवनका हेतु ।

(लेखक—श्रीयुत पं. गणपति जानकीराम दुबे. बी. ए.)

मुनि–जीवनके दो हेतु हैं जिनका नाम स्वार्थ और परमार्थ। मुनि–जीवनका स्वार्थ हेतु यह है कि मुनि स्वकीय जीवनको उन्नत बनाये। उसके लिये यह बात अत्यंत आवश्यक है कि वह अपने जीवनके सुख दुःखोंको सम समान बनाले अर्थात् दुःख प्राप्त होवे तब उद्विग्न चित्त न होये, दुखी न बने, किन्तु दुःखका भोगनेवाला शरीर है, मैं उससे जुदा हूँ और अपने ध्यानको दुःखकी ओरसे खींच कर, आत्म चिंतनमें स्थित करे। उसी प्रकार सुखकी प्राप्तिसे पुनः उसी सुखकी प्राप्तिके लिए लिप्सा उत्पन्न नहीं होना चाहिए। सुखका ऐसा स्वभाव है कि वह जब इन्द्रियोंके द्वारा अनुभव किया जाता है तब इन्द्रियोंकी इच्छा पुनः पुनः उसी सुखकी प्राप्तिके हेतु बढ़ती जाती है और मन सुखलोलुप बनता जाता है। इस लिए जिसने सुखकी स्पृहासे अपनेको रोका वह मुनि है। उसे चाहिए कि वह भली बुरी बातको सुन कर रागद्वेषसे चलित न होये। उसे चाहिए कि वह अपने आत्म विश्वास पर दृढ़ होकर, निडर होकर कार्य करे। उसे बड़ेको बड़ा समझ कर आदर देना चाहिए परंतु सत्यके कहनेमें बिलकुल निर्भय हो जाना चाहिए। मुनिको चाहिए कि उसे किसी अवस्थामें भी क्रोध नहीं आना चाहिए। क्रोधसे मोह होता है और मोहसे अपनी सुधि नहीं रहती और सुधिके न रहनेसे बुद्धिका नाश होजाता है और जिसकी बुद्धिका नाश होगया वह स्वयं नष्ट होजाता है। इस प्रकार क्रोध करनेवाला जीव कभी आत्मिक उन्नति तो करता ही नहीं किन्तु अवनतिको प्राप्त होता जाता है। जब क्रोध न होगा तब बुद्धि शांत होगी और चित्त स्थिर होगा। जिसका चित्त स्थिर होगया वह मुनि है। श्रीकृष्णजीने भी गीतामें यही लक्षण कहे हैं:—

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥

इस प्रकार अपने जीवनका सुधार करके उसे पवित्र उज्वल और विनम्र बनाना मुनिका स्वार्थ है। ऐसा जीवन व्यतीत करनेमें उसकी निजकी भलाई है, उसकी निजकी उन्नतिका कारण है इसलिए यह मुनिका परम स्वार्थ है।

अब परमार्थ क्या है? परमार्थ वह है जो दूसरोंके अर्थको सिद्ध करे। दूसरोंके अर्थको कौन यथावत् सिद्ध कर सकता है? इस प्रश्नका उत्तर यह है कि जो मनुष्य अपने स्वार्थको त्याग दूसरोंके हितके लिए अपने जीवनको अर्पण कर देते हैं वे ही दूसरोंके हितको पूरी तरह सम्पादन करनेके योग्य होते हैं। मुनि लोग उस वर्गमेंसे हैं जो परमार्थ करनेके लिए आत्मसमर्पण करते हैं।

मुनियोंका काम है कि वे समाजमें संचार करके समाजके आंतरिक जीवनमें सुधार करें। समाजमें बुरी रीतियों, अनीतिके कृत्य, दुष्ट आचार और अधर्मके विचारोंको जड़से निर्मूल करनेके लिए उन्हें सदा यत्न करना चाहिए। संसारी जीवोंको भला बुरा, सत्—असत् सोचनेको समय ही नहीं होता। यदि वे सोच लें तौभी उसके अनुसार चलनेकी उनमें आत्मिक सामर्थ्य नहीं होती और यदि करनेपर राजी भी हो जाय तो भी परिणाममें फल भोगनेको वे तयार नहीं होते। ऐसे जीवोंको सच्चा मार्ग बताना मुनिजनोंका काम है। उनका जन्म ही इस लिए है कि संसारके प्रवाहमें बहते जाते हुए जीवोंकी सहायता करें, उन्हें सन्मार्ग दिखावें और समाजको ऐसा बनावें जो आध्यात्मिक उन्नतिकी ओर झुकता जाय। दयाका तत्त्व उनके चित्त पर सर्वदा स्थिर रहना चाहिए और वही दयाका तत्त्व धर्मका मूल है। उस दयाके द्वारा संसारके प्रवाहमें पतित जीवोंको उबारना अत्यंत धार्मिक काम है। कोई जीव अनीतिके पथ पर हो तो उसपर

क्रोध नहीं करना चाहिए, झूंझलाना नहीं चाहिए किन्तु उसपर दया करना चाहिए कि वह इतना नीचे है कि उसकी समझमें नीति और धर्मके उदार विचार नहीं आते हैं। वह अपने पूर्व कर्मोंका फल भोग रहा है और वह कर्मफल यह है कि उसके विचार ऊंचे नहीं हैं। उसकी बुद्धिको उत्तम संस्कार प्राप्त नहीं हैं। इसी कारण वह अवनत दशामें पड़ा है। उसके लिए मुनिको ऐसी भावना करना चाहिए कि वह अपने विचारोंको उन्नत करे। उसे सद्बुद्धि दे जिससे वह अपनी उन्नति करनेमें समर्थ हो। अज्ञान जीवके कार्यों पर कुपित नहीं होना चाहिए किन्तु उसे अधिक ज्ञान कराना, उसकी भूलको दिखाना और सच्चा मार्ग क्या है, यह दिखाना मुनि वर्गका काम है। तात्पर्य कि सदा सर्वकाल निष्काम कर्म करते हुए परोपकार बुद्धिसे समाजकी उन्नतिके कार्यमें कटिबद्ध रहना मुनिका परमार्थ है। इसीमें उनके जीवनकी पूर्ति है। इसीमें उनके जीवनसे उपकार होगा और जगतकी उन्नतिके साथ उनकी आत्मिक उन्नति होकर परमात्मत्वको प्राप्त हो जायँगे।

मुनि-गण कहाँ हमारे ?

(लेखक-श्रीयुत पं० कृष्णविहारी वाजपेयी।)

(१)

तन तेज ओज अँगमें शुचि, स्वच्छ, दच्छ भारी।
पंडित, गुणी, विवेकी, मीठे-वचन-उचारी॥
मन, क्रम, वचन भलाई, जगकी हृदयमें धारे।
हमको कोई बता दे, मुनि-गण कहाँ हमारे?॥

(२)

पर-प्रेम-रंग-राँचे, साँचे, सुडौल, सुंदर।
तज के महल वसे थे, शुभ गिरवरोंकी कंदर॥

शठ, सर्प, चोर तक भी, जिनने कभी न मारे।
वे ही हमें दिखा दो, मुनि-गण कहाँ हमारे ? ॥

(३)

सुख दुख समान जिनको, मनको कड़ा बनाया।
बनको तपस्वियोंने, तप-बलसे था तचाया॥
दिलके उदार, नेमी, सब भेद-भाव टारे।
इक धर्मके उपासी मुनि-गण कहाँ हमारे ? ॥

(४)

मद मीन-मेष, ममता, पाखण्ड खण्ड करके।
है परोपकार उजला, नित धर्म ध्यान धरके॥
सुख, शांतिके करैया, दुखके मिटाने हारे।
भूसुर भरोसे वाले मुनि-गण कहाँ हमारे ? ॥

(५)

संसार हितके लिए वे, घरबार दिया था तजके।
धन, द्रव्य, वस्त्र, भाजन, जाने समान रजके॥
संसार सुप्त सा था, सोते थे देश सारे।
उनको जगाने हारे मुनि-गण कहाँ हमारे ? ॥

(६)

रच रच अनेक रचना, सचनाम जगमें पाया।
संसार सार लखके, उसको हमें बताया॥
मद, काम, क्रोध, ईर्षा, मनसे जिन्होंने टारे।
सबको समान जाना, मुनि-गण कहाँ हमारे ? ॥

(७)

भगवान ! भेष वैसा, बस अब हमें बता दो।
भूले बहुत दिवससे पथ-पूर्व वह दिखा दो॥

सन्तान हम उन्हींकी फिरते हैं आज मारे ।
उनसे हमें मिला दो, मुनि-गण कहाँ हमारे ? ॥

(८)

देखें, सुनोगे कब तक, हम तो पुकार हारे ।
हारे अरे ! हृदय क्या, देशों अनेक तारे ॥
देखो तनिक दया कर, हम सब लगें किनारे ।
मिल जायँ फेर हमको, मुनि-गण कहाँ हमारे ? ॥

बड़े आदमी (Great Man.)

(लेखक—श्रीयुत बाबू भगवानदास केला ।)

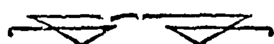
बड़े लेखक, बड़े कवि, बड़े धनवान आदिके अतिरिक्त 'बड़े आदमी' शब्द भी बहुधा व्यवहारमें आता है । आज हम तनिक विचारना चाहते हैं कि कौन २ सी परिक्षायें पास करनेसे अपना किन २ गुणों (कालिफिकेशन)से युक्त होनेपर अपना किन कर्मोंके करनेसे कोई मनुष्य जन साधारण द्वारा अपेक्षा कृत प्रायः कम उदारतासे दी जानेवाली यह (बड़े आदमीकी) पदवीका अधिकारी होता है । तदुपरान्त प्रत्येक पाठक यह हिसाब लगा ले कि वह स्वयं इसके योग्य है या नहीं अथवा उसकी जाति या बिरादरी तथा समाज या देशमें कितने आदमी ऐसे हैं जिनकी गणना, बड़े आदमियोंकी सूची तय्यार करनेमें काम देगी ।

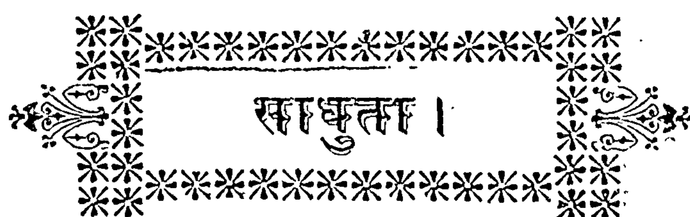
यदि कोई दैवी संस्था ऐसा रजिष्टर तय्यार करे जिसमें केवल बड़े आदमियोंकी ही हाजरी दर्ज की जाया करे, तो सम्भवतः हमारे कितने ही भाई उसमें भरती होकर उपस्थित महाशय(Yes, sir, or present Sir) कहनेके लिये उत्सुक होंगे । कुछ विनयशील बंधु कहेंगे, जाने दीजिए हम इस श्रेणीके योग्य नहीं, परन्तु अमुक करोड़पति, अमुक कारखानेका मालिक, अमुक खां बहादुरका नाम तो अवश्य ही

इसमें सम्मिलत होना चाहिए—जिनका नाम यहां अखबारों तथा शिला-लेखोंमें चमकता दिखाई देता है उन्हें ,अवश्य ही 'बड़े आदमी' की आदरास्पद डिग्री मिलनी चाहिए। परन्तु क्या यह सम्भव नहीं है कि इनके भवन जो बाहरसे इतने सुन्दर सुडौल प्रतीत होते हैं, भीतरसे उन्हीकी जान या अनजानमें इतने स्थानोंमें कंकर कीचड़से भरे हुवे हों और नींव (बुनियाद) इतनी लचर हो कि सर्व दर्शी इन्जिनियर इन्हे पास करनेसे संकोच करे। और क्या यह नहीं हो सकता कि बहुतों मामूली, नौकर, चाकर मजदूर लोग अपने छोटे २ क्षेत्रमें अपने चरित्र व्यवहार अथवा दिन चर्य्याको स्वच्छ तथा पवित्र रखनेके कारण उस उच्च पदके योग्य प्रमाणित हो जावें जिसके कि इनके स्वामी अयोग्य सिद्ध हुवे हैं।

अच्छा, तो बड़े आदमी बननेके लिए क्या करना होगा? पहले हमें अपने तईं अपने कर्मों द्वारा आदमी सिद्ध करना होगा; केवल रूप रंगसे जो कि अनायास ही जन्मसे मिल गया है, उससे काम न चलेगा। हमारे कृत्य इस योग्य होने चाहिएँ कि उच्च हृदयवाली पवित्र आत्माओंको मनुष्य श्रेणीमें सम्मिलित होते हुए शर्म्माना न पड़े। और हमारे व्यक्तित्वके होनेसे मनुष्य समाजका कुछ गौरव बढ़े। इस प्रकार पहली सीढ़ी जो मनुष्य बननेकी है उसे लांघकर ही दूसरी सीढ़ी बड़े आदमियोंकी आवेगी। यह बातोंका खेल नहीं हैं—साधारण टीपटापसे, दुनियांकी आंखोंमें धूल डालनेसे या स्वयं अपने ही हृदयकी आंखे बन्द करनेसे काम नहीं बन जायका। इसके लिए कोई सरल और शाही मार्ग (easy & royal road) नहीं है। बल्कि अघड़, ऊंचानीचा, पथरीला, दुर्गम मार्ग है। डरते हो तो दूर रहो—सौ बार इच्छा हो, लालसा हो, मन चाहता हो तो स्वीकार करो। यह स्पष्ट है कि सम्राट श्रीमान रामचन्द्रजीका गौरव राजमुकुट धारण करनेकी उत्सुकता हो तो पहले उनके बन कंटक मुकुटके लिये मस्तक नमाओ। रामचन्द्रजीका गौरव कुछ मुकट धारण करनेसे नहीं हुआ बल्कि उनके उन्ही गुणोंके कारण हुआ।

साथ ही ध्यान रखो कि बड़े आदमीके उच्च पद पर एक बार जैसे तैसे करके चढ़ा लेना ही काफी नहीं। सदैव उसके योग्य कर्म करते रहनेकी जरूरत होगी। तनिक असावधान हुए तो उस ऊंची भूमिसे नीचे लुढ़का दिये जाओगे। बड़ों पर ऋण भी बड़ा रहता है। बड़ोंकी जिम्मेवारी (उत्तरदायित्व) विशेष है क्योंकि उन्हे बहुत धरोहर सौंपी हुई है। उनकी शक्ति मानसिक आर्थिक व आत्मिक विशेष है। इसका उन्होंने ध्यान न रखा और दुरुपयोग किया तो उनके समान दोषी और उन जैसा अभागा कोई नहीं। आओ, केवल संसारी मियाँ मिट्ठुओंसे बड़े आदमियोंकी झूठी उपाधि स्वीकार न कर यथार्थमें बड़े आदमी बननेका उद्योग करें।





साधुता।

(लेखक—श्रीयुत ठाकुर सूर्यकुमार वर्मा।)

आधुनिक कालमें जो गेरुआ वस्त्र पहनकर इधर—उधर विचरण करने लगता हैं, अपने कुटुम्बियों, अपने साथियोंको त्याग कर केवल अपने पेट पालनार्थ ही प्रयत्न करता रहता है, उसे लोग साधु कहते हैं फिर चाहे उसमें साधुके लक्षण साधुताका पता हो या न हो। यही कारण है कि देशमें साधुओंकी संख्या लाखोंसे ऊपर पहुँच गई है। इन लोगोंसे समाज और देशका उतना हित नहीं होता जितना अहित होता है। धार्मिक दृष्टिसे जहाँ ये कई अंशोंमें अहितकारी साबित हुए हैं वहाँ सामाजिक दृष्टिसे भी ये देश और समाजको रसातलकी ओर लिए जा रहे हैं। मान लो किसी नगरमें १०० मनुष्य रहते हैं, यदि इन १००

मेंसे २० मनुष्य काम करना छोड़ दें और अपने भोजन–वस्त्रका भार बाकी ८० मनुष्योंपर डाल दे तो जितना सुख १०० मनुष्य मिलकर पैदा करके पा सकते थे उतना सुख उन ८० मनुष्योंको नहीं हो सकता। और वे लोग २० बेकार मनुष्योंसे भोजन देनेके कारण धन हीन हो जायंगे। धार्मिक दृष्टिसे भी देखा जाय तो वर्तकालमें धर्म संचय करने अथवा परोपकार करनेके लिए कितने लोग गृह त्याग कर और विरक्त होकर साधुका दिव्य रूप धारण करते हैं ? आजकल तो बहुतायतसे ऐसे साधु पाये जाते हैं जो गोस्वामी तुलसीदासजीके कथनानुसार–"नारि मुई घर सम्पति नासी–मूंड मुंडाय भये संन्यासी।" केवल दूसरेकी भलाई परोपकार, समाजसेवा, देशहित, धर्म प्रचार आदि कार्योंको सम्पादन करनेके निमित्त विरक्त हुए पुरुष बहुत कम दिखाई पड़ेंगे। यदि उपरोक्त गुणोंसे युक्त लोग पाये जायंगे तो उनमें साधुताका अवश्य भाव होगा।

परन्तु क्या देशमें जितने साधु महात्मा हैं वे सब पेट पालनार्थ ही गृह त्यागी हुए हैं, ऐसा नहीं है। कुछ लोग इनमें ऐसे पाये जाते हैं, फिर वे किसी जाति, सम्प्रदाय अथवा समुदायके क्यों न हो, उनमें साधुता पाई जाती हैं। उन्हींकी सहायता और कृपासे साधु मंडल अभी तक ठहरा हुआ है। यदि वे लोग उस समुदायमें न होते तो अभी तक और भी बहुत कुछ अनर्थ होता। स्वामी रामतीर्थ, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द, राजा राममोहनराय, ×केशवचन्द्रसेन आदि लोग आधुनिक कालमें ही आदर्श साधु हो गये हैं जिन्होंने अपना सर्वस्व दूसरोंकी भलाईमें ही अर्पण कर दिया। प्राचीन कालका इतिहास तो इस प्रकारके साधुओंसे भरा पड़ा है जिनके उच्च आदर्शको देख कर ही समाजका संगठन हुआ परन्तु आधुनिक युगमें अब हमारे साधुओंका क्या कर्तव्य होना चाहिए ? इस लेखके सबसे ऊपर चार शब्द लिखे गये

× उन्ही महात्माका एक लेख अन्यत्र पकाशित है, उसे पढ़नेकी कृपा करें कि कैसा हैं।　　सम्पादक।

मुनि —



छोटे कंथ बड़ी वहू ।

(बाललग्न और अयोग्य जोडीका दृश्य !)

Anand Press–Bhavnagar.

हैं वे ही शब्द हमारे साधुओंके जीवनदाता हैं। यदि गुणीमें गुण न हों तो वह गुणी ही क्यों कहलावे? यदि मिठाईमें मिठास न हो तो उसे मिठाई कौन कहेगा? इसी प्रकार यदि साधुमें साधुता न हुई तो वह साधु ही कैसे कहलाया जा सकता है? इस लिए गुणीमें गुण होना, मिठाईमें मिठास होना जहाँ परमावश्यकीय है वहाँ साधुमें साधुता होनेकी भी बहुत बड़ी आवश्यकता है। साधुमें साधुताके लिए सबसे बड़ी निस्पृहता होना चाहिए। संसार त्यागी और गृह त्यागी मनुष्य किस लिए होता है? केवल संसारी वासनाओंके त्यागके लिए! यदि वासनायें बनी रहीं तो फिर त्यागसे क्या लाभ! अतएव निस्पृह होना—इच्छा, कामना, तृष्णा न होना—ही साधुके लिए भूषण हैं। परन्तु यदि कोई यह कहे कि बिना इच्छाके अथवा बिना कामनाके मनुष्य कभी कुछ कर ही नहीं सकता अतएव इच्छाका होना तो मनुष्य मात्रका धर्म है, यह बात ठीक है। इस सत्य बातको कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। परन्तु संसारी बासनाओंकी इच्छामें और साधुताकी इच्छामें बड़ा अन्तर है। साधुताकी इच्छा अपनी वासनाओंकी तृप्तिके लिए नहीं होती, वह तो दूसरोंको सुख पहुंचाने, दूसरोंका कष्ट अथवा दुःख दूर करनेके लिए होती है। इस लिए उस इच्छाको परम पवित्र सद् इच्छा कहना चाहिए। वे लोग धन्य हैं जिन्होंने इस परम पवित्र इच्छाकी पूर्तिके लिए अपना सर्वस्व त्याग किया है। संसारमें वे ही साधु कहलाने योग्य हैं जिन्होंने अपनी इच्छा-ओंको, अपनी कामनाओंको अपने लिए नहीं दूसरोंके लिए ही अर्पण कर रक्खा हो।

साधुताके लिए इस बातकी भी बड़ी आवश्यकता है कि साधु पुरुष जहाँ अपना जीवन सार्थक करे वहाँ दूसरोंका जीवन सार्थक बनावे। परन्तु ऐसा कब हो सकता है? जब साधु सारे संसारको अपना ही स्वरूप समझे। संसारमें देखा जाता है कि दुःख, संकट क्लेश आदि उपस्थित

होनेपर लोग अपने प्रियजनोंका सहारा लेते हैं और उनसे संसारी कामोंमें सहायता और सहानुभूति पाकर अपने कष्टोंको कुछ न कुछ कम कर लेते हैं उसी प्रकार संसारी लोग अपनी आत्मिक विघ्नबाधाओंको साधुओंकी सहायतासे दूर कर लेते हैं। जो साधु लोगोंको आत्मिक उन्नतिमें सहायता नहीं पहुँचाता अथवा आत्मिक उन्नतिकी राहमें जो विघ्न बाधायें हैं, उन्हें दूर करनेका प्रयत्न नहीं करता उसे साधु कहना ही भूल है। साधुकी साधुता तो यही है कि वह संसारी जीवोंको उस आनन्दसागरकी ओर ले जाय जो अथाह भरा हुआ है और जहाँ आनन्द ही आनन्द ओतप्रोत हो रहा है। परन्तु यह कार्य तभी सिद्ध होगा जब साधु स्वयं अपने आप उस आनन्दको प्राप्त कर ले। जो जिस बातको स्वतः नहीं जानता, वह दूसरेको क्या बतावेगा? जिसके पास स्वयं धन नहीं वह निर्धनोंकी सहायता कर सकता हैं! सिकंदर बादशाह एक दिन डायजोनिससे भेंट करने गया। जब वह उसके स्थान पर पहुंचा तब उसने उससे विनय की कि मैं आपकी क्या सहायता करूं? डायजोनिसने उत्तर दिया, "मेरी सहायता यही है कि आप अपनेको दूसरेको कष्ट देनेसे बचावें। विना कारण, अन्याय पूर्वक आप किसीको न सतावें। बस, इससे अधिक मुझे आपसे सहायता पानेकी आवश्यकता नहीं है। यदि डायजोनिस चाहता तो धन दौलत आदि सांसारिक सुखकी सामग्री सिकंदरसे मांग सकता था परन्तु उसने ऐसा नहीं किया। स्वतःके लिए कुछ न मांगकर दूसरोंके लिए मांगना, बस यही साधुताका सच्चा लक्षण है। इसी प्रकार महाराज शिवाजीने जब रामदास स्वामीसे विनय की कि मैं आपकी क्या सेवा करूं तब उन्होंने यही उत्तर दिया "तुम भगुवा झंडा स्थापित करो"। यदि उस समय वे राज्य मांगते तो शिवाजी महाराज अपना राज्य अर्पण करदेते परन्तु स्वतःके लिए राज्य न मांगकर देशके लिए राज्य मांगनेका प्रयत्न किया। इसका नाम है, सच्ची साधुता।

साधुता प्राप्तिके लिए किसीके सामने जाकर सर झुकाना नहीं पड़ता, यह अमूल्य पदार्थ किसीसे मांग जांचकर प्राप्त नहीं किया जा सकता और न खुशामदसे ही प्राप्त होता है। यह तो आत्म विषय है। स्वतः ही साध्य किया जा सकता है। इसे प्राप्त करनेके लिए किसी पाठ-शाला अथवा कालेजमें जानेकी आवश्यकता नहीं। किसी विश्वविद्यालय-की अपेक्षा नहीं। यह तो अपने मानसिक विद्यालयमें ही शिक्षा पाकर सीखा जा सकता है। 'निश्चय पूर्वक' प्राप्तिका प्रयत्न करनेसे यह लाभ किया जा सकता है। केवल जगताधार परमेश्वरसे ही निश्चय पूर्वक दृढ़ताके साथ, माननेसे नहीं—विनय करनेसे नहीं—अपना अधिकार बताकर प्राप्त हो सकता है। सिवा इसके और कोई दूसरा मार्ग नहीं है। अधिकारीको पदार्थ अवश्य मिलता है यह निश्चय बात है। अधिकार माँगनेसे ही अधिकार देनेवाला सन्तुष्ट होकर उसे अधिकार प्रदान नहीं कर देता। पात्र—अपात्र भी देख लिया जाता है। सामान्य भिक्षुकको जब कोई मनुष्य कुछ देता है तो उस भिक्षुकके मागनेकी ओर विशेष ध्यान न देकर लोग यही देखते हैं कि वह जो कुछ माँग रहा है, उसके पानेका अधिकारी है अथवा नहीं। यदि वह अधिकारी होता है तो उसे लोग—यदि उनके पास माँगके अनुसार हुआ तो—देते हैं और न हुआ तो अपनी असमर्थता प्रगट करके दुखित होते हैं। जब यह दशा अल्पज्ञोंकी है तब उस सर्वज्ञसे तो कोई बात छिपी नहीं है। यदि हममें पात्रता है, यदि उसे पानेका हमारा दृढ़ निश्चय है तो इसमें रत्तीभर भी सन्देह नहीं है कि वह हमें अवश्य प्राप्त होगी। परन्तु साधुता प्राप्तिके लिए गृह त्यागी—संसार त्यागी होनेकी भी कोई अधिक आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। संसारी रहकर भी मनुष्य यदि मनसे चाहे तो सब प्रकारका कार्य करता हुआ भी इसे प्राप्त कर सकता है। हमारे यहाँके प्राचीन ग्रंथोंमें इसके अनेक उदाहरण पाये जाते हैं। गृहस्थ साधुओंमें महात्मा गांधीका एक अच्छा दृष्टान्त है। जब संसारी मनुष्य इसे पा सकते हैं तब साधुओंमें यह न हो

तो बड़े आश्चर्य और दुःखकी बात हैं। क्योंकि उन्होंने तो इसी लिए अपना जीवन ही अर्पण कर रक्खा है। यदि हमारे देशके साधु नामधारी पुरुष अपने गुणको ग्रहण करनेका प्रयत्न नहीं करते तो फिर इसके लिए किससे आशा की जा सकती है! इस दुर्लभ नर तनको पाकर यदि मनुष्य जीवन वृथा जाने दिया तो इससे बड़ा पश्चातापका दूसरा कोई विषय हो ही नहीं सकता!



मुनि सुधारकी प्रथम आवश्यकता।

(+ लेखकः—मुनिश्री नौंनचंद्रजी महाराज)

पूज्यश्री और विद्वान् मुनिवरो!

संघ शब्दमें त्यागी और गृहस्थ दोनोंका समावेश होता है। इनमेंसे त्यागियोंको प्रथम सुधरनेकी आवश्यकता है। क्योंकि मोक्षके अगम्यपंथकी तर्फ दौडनेवाले मुखिये एक पवित्र साधुजन ही हैं। संसार समुद्रमें धार्मिक जहाजके खेवटिये और मानसिक व्याधियोंको शांत करनेवाले '**मानसिक डाक्टर**' यही गिने जाते हैं। इसी—वास्ते ऐसे मुखियों, खेवटियों और 'मानसिक डाक्टरों' को गृहस्थोंके पहले सुधरनेकी जरूरत है। उसके बदले इस समय हमें उलटा ही मालूम होता है! कोई ऐसा सवाल करें कि "पहलेके जमानेमें ऐसी साधुओंकी सभाएँ और भाषण वगैरह कब होते थे? तुम्हारे पूर्व पुरुषोंने तो ऐसा तुफान किसीने भी नहीं कियाथा, इस परभी तुमने यह सुधारा करना शुरुकिया है वह क्या समझकर?" तो ऐसे शंकाशील पुरुषोंको जानना चाहिए कि हरएक व्यक्तिको हरएक चीजको कालांतरपर हर्जा लगता है जिससे उसको सुधारनेकी तथा जमाने मुझब सुंदर आकार प्राप्त करानेकी जरूरत

+ सा० प० रि० उ०

विचारशील पुरुष स्वीकार करते हैं। उदाहरण तरीके ऊँचे नीचे रास्तेमें चलनेकी मुशकिलें दूर करनेको विचारशील पुरुषोंने सड़कें, बडी बडी पुलें और विशेषमें रेल जैसे उपायोंसे जाने आनेका अति सरल और सुगम रास्ता कर दिया हैं, कि जो अपन नजरसे देख रहे हैं।

जब गृहस्थ अपने सुधारेके वास्ते बडी बडी कान्फरन्सें भरके और अनेक संस्थाएँ खोलकर अपने अभ्युदयके लिये अनेक तरह प्रयास कर रहे हैं और हरएक धर्मवाले अपनी उन्नतिके वास्ते हरएक जोखिमको (भय) सिरपर लेके नये नये रस्ते हर प्रकारसे बांधते हुए पूर्ण जोशसे आगे बढ रहे हैं, तब अपन जीर्ण होती हुई धार्मिक संस्थाको सुधारनेके बदले अधोगतिको जाते हुए देख रहे हैं; अरे! इसके कारणभूत भी **अपन** ही हैं; कारणकि अपन अंदर अंदर कुसंप, कदाग्रह, धर्मांधता, मताग्रह, मुफतकी खींचाखींची और खोटे अहंपदके जोशमें डूबते जाते हैं! यह, और ऐसे अनेक कारणोंके सबबसे श्रावकोंका विश्वास अपने ऊपरसे उतरता जाता हैं, **भक्ति घटती है, मान मिटता हैं, विवेक विध्वंस** होता है और इससे उपदेशकी असर न हो यह बनने योग्य है, खाली आवाज (बूम) मारनेसे मतलब क्या निकलता है? चाहे जैसा बना बनाकर व्याख्यान देओ मगर अपने खुदके सुधरे बिना समाजको सुधारनेकी आशा रखनी यह आकाशपुष्प जैसी बात है। लिहाजा समाजके अभ्युदयकी प्रबल इच्छा रखने वालोंको पहले अपनेहीको सुधरनेके लिये योग्य रास्ता पकडना चाहिए, और वो रास्ते मेरी बुद्धि मुआफिक आपके समक्ष रजू करता हूं, और वह ऐसी अर्जके साथमें कि आप उनके ऊपर पूर्ण मनन करोगे।

जहां हरएक जातका जरूरी ज्ञान प्राप्त हो सकें ऐसी एक संस्था योग्य स्थानपर खोलनी चाहिए, कि जहां विद्याभिलाषी मुनि अमुक बरषों तक अभ्यासके वास्ते रुक कर लियाकत बमुजिब ज्ञान प्राप्त कर

सके, और वह संस्था ऐसे पायेपर होनी चाहिये कि जिसमें मुनि ही अच्छी तरह नये नये ग्रंथ रचनेको समर्थ हो; वह वहांपर ऊँचे प्रकारकी वक्तृत्वकला, लेखनकला, कवित्वकला और ऐसी दूसरी भी अनेक साधुओंके उपयोगी कलाएँ सीखे, कि जिससे समाजकी उन्नतिमें संपूर्ण मददगार हो सकें। ऐसी संस्था पैसेके बिना होनी भी मुशकिल है; इस लिये इस संबंधके बंदोबस्तके वास्ते किसी धनाढ्य और उदार गृहस्थके हृदयमें बोध रूपी प्याला डाला जाय और लक्ष्मीके सदुपयोगका उत्तम रास्ता स्पष्टाकार करके बताया जाय तब ही वह कार्य पूर्ण हो सके वैसा है। यह कार्य एकदम कदाचित न बन सके तो भी यह प्रयास तो हरएकको चालू (जारी) रखना चाहिये।

जहां तक ऐसी उत्तम संस्था स्थापित न हुई वहांतक याने हाल तुरतमें भी अपनको कितने ही जरुरतके कार्य करनेकी आवश्यकता है।

जिस समाजमें योग्यायोग्यका विचार करके लियाकतके अनुसार कार्य सुपुर्द न किया जाता हो वह समाज दीर्घकाल तक नहीं टिक सकता।

इस लिये संप्रदायमें हरएक कार्यका विभाग करके जुदे जुदे कार्य अलग अलग साधुओंको तकसीम करने चाहिये। मसलन-व्याख्यानका काम 'क' मुनि करे, तो पढानेका काम 'ब' मुनि करे, शिष्योंके सुधारनेका 'ग' मुनि करे, लियाकत मुजब कार्योंका विभाग करना और उनकी देखरेख (निगहबानी) के वास्ते तथा दूसरे भी अनेक सुधारोंके कार्य कर सकें ऐसा एक निष्पक्षपात 'सुधारक मंडल' स्थापना चाहिये, कि जो मंडल अव्यवस्थाको घुसने ही न दे और संप्रदायके श्रेयके वास्ते दरकार रखके समयानुसार प्रसंग प्रसंग पर नये सुधारोंकी योजना घडकर और संप्रदायमें प्रवर्ताकर संप्रदायको उच्च स्थितिपर लाकर छोडे। फिर वह सुधारक मंडल संप्रदायमें बाकी रहे हुए दूषणों (सडों)को दूर करने तथा नालायक साधुओंको उनके और संप्रदायके भलेके वास्ते दूर करनेकी

तजवीज भी करेगा कारण कि एक सड़ा हुआ पान दूसरे अनेकोंको सड़ा देता है। सडी हुई अंगुल (आंगली) अधिक न सडने पावे इसी वास्ते काट डालनेके लिये डॉक्टर भी स्वीकार करते हैं।

इस वास्ते अपनेको अपने हरएकके उदयकी खातिर यह पहले विचारनेका है। इसीके साथमें अब पीछेसे होनेवाले शिष्योंके वास्ते भी बहुत विचारनेका है; कारण कि अब जमाना ऐसा विचित्र है कि बाड़ा (संघाडा, टोला) बढ़ानेकी मूर्खतामें जो पात्रापात्र न देखा जायगा तो उस गुरुको—खुदको बहुत प्रकारसे नुकसान होनेके उपरान्त साधुओं बाबतकी सबकी श्रद्धा घटनेका बड़ा भारी जोखिम (नुकसान) सहना पडेगा। इसी लिये मेरे विचारशील दूरदर्शी मुनि महाराजों! उसके संबंधमें अपनको एक कायदा बनाना चाहिये कि योग्य उमर और लियाकत विना दीक्षा नहीं देना और उम्मेदवारको अमुक वर्ष तक शास्त्रका तथा साधु-वर्तनका अच्छा मुहावरा कराके बराबर अनुभवी होनेके उपरान्त जब सुधारक मंडल पास करे तब ही दीक्षा दी जाय ऐसे—मतलबका ठहराव करना मुझे उचित मालूम होता है।

फिर संप्रदायके, उस नहीं सुधर सकनेवाले बिगडे हुए भागको, निष्पक्षपात बुद्धिसे निकाल डाल कर बाकी रहे हुएके वास्ते देश-कालका विचार करके आचार विचार—संबंधी कायदे भी बनाने चाहिये। शिथिलता, प्रमाद, निकम्मा व्यवसाय, आदि आदि अनेक कारण जो ज्ञानमें नुक-सान पहुंचाते हो और आचारमें खलल पहुंचाते हो वे रोकनेका प्रबंध करना चाहिये।

आचराकी उज्वलताको मलीन करनेवाली दूसरी चीज स्त्रियोंसे निष्प्रयोजन बातचीत और कोई तरहका परिचय है, जिसको छोडनेका ठहराव करनेकी अति आवश्यक्ता है। कारणकि यह परिचय बीजरूपसे बढ़ते बढ़ते (उसके उच्छेदकके अभावसे) बड़ा वृक्ष होकर उसके विषमय

फलोंके अनुभव लेनेका समय अनेकवार अनेक जनोंको आया है और आता है । लिहाजा यह बात भी नहीं भूलनी चाहिए ।

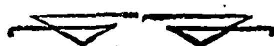
समाजकी अवनति करानेवाला कुसंप कोई भी गांवके संघमें चलता हो तो वहां उपदेशक मुनियोंको उपदेशद्वारा वह क्लेश निकालनेका अपना कर्तव्य समझना चाहिये और जैसे बने वैसे कुसंपरूपी जहरी हवाको निकाल कर सुलेह और शांतिरूप अमृतका सिंचन बोधद्वारा करनेको तत्पर रहना चाहिये । अपने ही क्षेत्रोंमें जाना, वहां ही बोध देना ऐसी क्षुद्रता साधुपदको लजानेवाली है ।

चाहे जैसा अच्छा आचार पालनेवालेको भी ज्ञानके विना उत्तम फल प्राप्त नहीं होता । इसीसे शास्त्रमें ज्ञानको प्रथम स्थान (पद) दिया है । लिहाजा आचारके साथ ज्ञानकी जरूरत है; मगर आजकल साधुओंमें शास्त्रीय ज्ञानका शौक अति अल्प देखनेमें आता है । शास्त्रीय ज्ञानके बदले उलटे सुलटे जोड़ तोड़–वाले कचरा जैसे नोवेल (किस्सा–कहानी) पढने बांचनेकी चाल विशेष देखनेमें आती है । बहुतसे मुनि तो बातोंका तड़ाका मारके मनुष्योंको खुश (राजी) करनेमें ही सार्थकता मानते हैं ! यह बहुत दिलगीरीकी बात है !

जिनके सिर पर पुष्कल जोखिम (भार) है ऐसे जोखमी पदको धारण करनेवाले साधु पुरुष ही प्रमादी, नाहिम्मत या निर्बल मनके शाता-शील होकर खुद अपनेमें ही अशांति फैलावें इस बात पर जब विचार करते हैं तब हृदयमें खेदके साथ अनेक विचित्र तरंगोंका उद्भव होता है।

विचार करो कि जहां ज्ञानवृद्धि या ध्यानकी पद्धति जैसे उत्तम मार्ग बंद हो वहां उत्तम नररत्न कहांसे उत्पन्न हो ? और उत्तम नररत्नोंके बिना उदय भी कहांसे हो ? इसी वास्ते विशेष नहीं तो हाल हरएक अभ्यासी मुनिको व्यर्थ समय न गमाकर अपने श्रेयके वास्ते जागृत होकर हमेशाका टाइम टेबल (समय–नियम) बनाना चाहिये । विच्छिन्न हुई

'ध्यान' की पद्धतिको शास्त्रीय रीतिसे सजीवन करके अपने पदको अलंकृत बनानेके वास्ते अपनको आलस्यका त्याग करना चाहिये । ध्यान जैसे पवित्र साधनसे जिसने अपने मनका सुधार नहीं किया वह केवल लूखे बोधसे दूसरेके मनका सुधारा क्या कर सके ? इसी लिये प्रथम अपने ज्ञान, ध्यान तथा शुद्ध वर्तनसे अपने साधु मंडलको सुधारनेकी कोशिश करनी चाहिए; इसके साथमें संपको जगह जगह प्रयास करके प्रगट कराना, नवीन उपदेश पद्धतिसे श्रावकोंमें समयानुसार सुधार करवाना; अंदरके सड़े (दोष) दूर करना या नये होतेको अटकाना, यह सब करनेको सच्चे दिलसे अगर अपन यथाशक्ति प्रयत्न करेंगे तो अपना अभ्युदय अपने हाथमें ही है ।



आजकलकी उपदेश पद्धति ।

(*लेखक—मुनिश्री प्रेमचंद्रजी, महाराज ।)

मुनि महात्माओ !

दुनियामें सबसे प्रबलसे प्रबल असर उपदेशकी हुआ करती है। एक भोलेभाले मनुष्यको सर्प जैसा जहरी बनाना हो तो वह उपदेशसे बनाया जा सकता है और कामधेनु जैसा बनाना हो तो भी बनाया जा सकता है। चाहे जैसे बिकट रस्ते पर मनुष्य जातिको चढ़ानी हो तो उपदेशसे चढ़ा सकते हैं। दृष्टांतके लिये एक समय ऐसा भी था कि उस वक्तमें सामान्य मनुष्य नहीं, भिक्षुक नहीं, परंतु भोगमें भ्रमर जैसे महान् राजे महाराजे भी काशीमें जाकर करवत लेते थे ! कमलपूजा करते थे ! भैरव झंपापात खाते थे ! और हिमालयमें जाकर अपना शरीर गालते थे ! यह सब क्या था ? मेरे प्यारे ! केवल उपदेशकी ही असर थी। सचमुच, मनुष्यके मगज पर उपदेशसे एक अलौकिक छाप मार सकते हैं ! अरे मनुष्य तो

* सा० प० रि० ३०

क्या परंतु हिंसक प्राणी याने वाघ, सिंह, चीत्ता जैसे जानवरोंको भी कैसे सरल बना सकते हैं, जिनके अनेक उदाहरण इस सांप्रत कालमें मौजूद हैं। ' सरकस ' के खेलकी बातें तुमने सुनी होंगी तो तुमको अच्छी तरह मालूम हो गया होगा कि पशुओंके मगजपर भी उपदेशसे चाहे जितनी असर पैदा कर सकते हैं। वह कैसे अदभूत खेल करके मनुष्योंको चकित करते हैं! मेरे प्यारो! अधिक क्या कहूं, इस दुनियाकी सबकी सब प्रवृत्ति खास करके उपदेशपर आधार रखती है। सुज्ञ महाशयो! फिर अगर अपन दूसरी तरफ देखेंगे तो अपनेको ऐसा भी मालूम होगा कि उपदेशकी बिलकुल असर ही नहीं है! दृष्टांतके लिये अपनी ही स्थानकवासी कोम जो कंजूसमें कंजूस कहलाती है उसमें दो हजार उपदेशक जीते जागते मौजूद हैं, क्या वे किसी दिन भी उदारताके बाबतमें उपदेश नहीं देते होंगे? अरे एक दफा नहीं मगर हजार दफा दिया होगा; जैसे कि अपने श्री वीरपिताने दीक्षा लिये पहले वार्षिक दान दिया उसमें तीन अब्ज असी लाख सोना मोहरें दी गई थीं; और फिर जिस वक्त केशीस्वामीने परदेशी राजाको बोध देकर पत्थर जैसे हृदयको मक्खनके पिंड मुआफिक बना दिया था उस वक्त परदेशी राजाने केशी स्वामीको दो कर जोड़ नम्र विनंति (अर्ज) की कि गुरु महाराज! अबसे--फिर मेरी जिंदगी मैं किस प्रकारसे गुजारूँ और फिर किस प्रकारकी मेरी फर्ज है वह समझानेकी कृपा कीजिये। तब गुरु महाराजने उपदेश दिया कि " हे राजा! तू रमणीक हो! " मेरे प्यारो! 'रमणीक हो ' इस पदका परदेशी राजाने कैसा अर्थ किया और इससे उसको किस प्रकारकी असर हुई वह जो आप महाशय सुनेंगे तो बगैर आनंद पाये नहीं रहेंगे। अपने राज्यकी जितनी आमदनी थी उसके उस राजाने चार भाग किये। उसमेंसे एक भाग खजाना खाते, एक लश्कर खाते, एक अपने खर्च खाते और चौथा भाग दीन दुःखी अशरण जनोंके वास्ते खर्च कर देनेका ठहराव किया। ऐसा ऐसा उपदेश एकवार नहीं मगर हजारवार दिया गया होगा

किन्तु क्यों कोई अपनी आमदनीमेंसे चौथा भाग नहीं निकालता ? अरे ! बारह महीनेमें प्रति चुल्हा एक चौ अन्नी देनी पड़े जिसके वास्ते कितनी हा ना की जाती है ? कान्फरसके पावला फंडमें दर साल चार आना देने पड़ते हैं उसमें कितनी पंचायत होती है ? क्या अपनी कोममें पैसेवाले नहीं है ? अपनी कोममें बहुतसे लक्षाधिपति और क्रोड़ाधिपति भी कितने ही हैं। इतने क्रोडाधिपति और लक्षाधिपति होतें हुए भी कोई बड़ी सखावत नहीं करते ? जिस कोममें क्रोड़पति हो उस कोमके उदयके वास्ते कैसे कोई बड़ी संस्था स्थापित करनेमें न आवे कि जिसमेंसे कोमके गरीबोंको चाहनाके मुवाफिक सहायता मिल सके ? थोडासा विचार करो; स्थानकवासी और मूर्तिपूजक (मंदिरमार्गी) दोनों कोम लगभग पैसे टके और मनुष्योंकी संख्यामें बराबर हैं। ताहम भी देखो कि मंदिरमार्गियोंकी कोमके वास्ते कितने जाहिर खाते हैं ? बनारस संस्कृत पाठशाला, पालीताणा बोर्डिंग हाउस, सूरत अहमदाबादमें भी बोर्डिंग, बम्बईमें भी पन्नालाल हाईस्कूल वगैरह वगैरह है तो फिर कैसे अपनेमें भी लोढ़ाजी हाईस्कूल नहीं ? वैसे ही दूसरे अच्छे पाये पर कोई भी खाते न मिलें ! प्यारे वीरपुत्रो ! थोडे शूरवीर होकर ख्याल करो। इससे क्या ऐसा सिद्ध नहीं होता कि उपदेशकी असर नहीं है ? फिर ऐसा उपदेश भी हजारों दफह दिया गया होगा कि अपने वीर परमात्मा जब मही मंडल पर विहार करते थे तब जिन जिन नगरोंमें बिराजते थे उन उन नगरोंके लोग और राजा कि जो जियादातर श्रावक धर्म पाये हुए थे वह न्हा–धोकर श्रृंगार करके बडी भारी धामधूमसे परमात्माके दर्शन करनेको जाते थे। वैसा होते,--वैसा उपदेश मिलते, आजके समयमें कितनेक जगह उपाश्रयमें ही जहां अपने गुरु महाराज बिराजते हों, जहां सामायिक करनेका हो वहां ही लोग मैले गंधे कपडे पहर कर जाते हैं ऐसा क्यों होता है ? ऐसे थोडे पुरुषोंके आचरणसे ही सर्व धर्मको या कोमको कलंक सुनना पडता है, कितने ही ठिकानेपे तो अपनी

साधुओंको ऐसे आचरणोंसे बहुत अपमान सहन करना पडता है। ताहम भी अपने चौथे आरेके श्रावकोंकी रीति-भांतिका कैसे अनुकरण नहीं होता ? पुज्य महाशयों ! क्या इससे ऐसा सिद्ध नहीं होता कि उपदेशकी असर ही नहीं ? नहीं, नहीं; अपनी भूल होती है उपदेशकी असर तो अपने ऊपर कह गये वैसी ही है; मगर अपनी हालकी उपदेश पद्धतिमें गडबड मालूम होती है। अच्छा चलो अपनी हालकी उपदेश पद्धतिको खोज (ढूंढ)-मालूम करें; तो प्रथम शुरूमें नवकार, इसके बाद स्तुति, इसके बाद फिर जो विषय चलता आया हो वह (एक भांतिका नहीं बीच बीचमें पांच दश भांतिका कचरा हो जाता है !) इसके बाद फिर व्या-ख्यान बंद करनेका कहा जाता है, इसके पीछे कहीं कहीं तो फॅन्सी दोहे वगैर भी कहे जाते हैं ! समझदार सुननेवालो ! यह अपनी हालकी उपदेश पद्धति ! इससे आप महाशय अच्छी तरह समझ सके होंगे कि ऐसे उपदेशमें असर नहीं हो सकती है. क्योंकि एक घडीके व्याख्यानमें इतने भीन्नक रंग हो उसमें श्रोताओंको क्या धूलकी असर हो ? !

हे मुनिवरो ! थोडा विचार करो; जमाना बदल गया है; पवन फिर गया है; इस वास्ते जो अपन अब अपने रीति रीवाजोंमें परिवर्तन नहीं कीं तो निश्चय अपना जहाज सहीसलामत किनारे नहीं पहूंचेगा।

"Neither go ahead of the times–nor remain behind them" "जमानेसे आगे भी न बढो, और पीछे भी मत रहो।" जो आगे जाओगे तो लोग कहेंगे कि 'बिगड गये!' और पीछे रहोगे तो धक्के खाना पड़ेगे। मुनि मित्रो ! यह बात सचमुच ध्यानमें रखनेकी है। जमाना फिरा तो अपनको भी उसके अनुकूल होना चाहिये। जब अपन इस तरहसे करेंगे तब ही अपनी आबादी होवेगी। इसी सबबसे अपनी इस समयकी उपदेश पद्धतिको फेरनी चाहिये। इसकी जरूरत है कारण कि घडी दो घडी महनत भी करें और असर न हो तो वह काम किया हुआ भी न कियेके बराबर है। लिहाजा–जैसे असर हो वैसे रूपमें उपदेश पद्धति रखनी चाहिये। प्रथम मंगलिक रूप नवकार बोलके पीछे तुरत ही जिस विषय पर बोलना हो वही विषय हाथमें लेओगे और खूब दाखले दलीलें दे देकर उक्त विषयको मजबूत करोगे। और फिर रोज जो दो दफह व्याख्यान बांचा जाता हैं वह भी सचमुच 'अति परिचय' है और अति परिचय वह अरुचिको उत्पन्न करता है; इस लिये यह रूढी भी फेर छोडनेकी जरूरत है। अपने दो हजार उपदेशकोंमें केवल दो तीन ही जाहिर व्याख्यान दे सकते हैं जिसका कारण भी यही रूढी है। कदाचित तुम इस तरह कहोगे कि अधिक दफह बांचनेसे अधिक अभ्यास बढता है, इसको मैं भी कबूल करता हूं; मगर अमुक अंशोंमें लायक होनेके बाद यानी जरूरी ज्ञान प्राप्त करनेके बाद; ऐसा नहीं कि दीक्षा ली और व्याख्यान करनेको तत्पर हो जाना ! अभी तो ऐसा ही होता है कि दीक्षा ली और तुरत ही व्याख्यान देनेका आर्डर (हुकम) होता है ! और व्याख्यान देनेवाला बहुत महनतसे व्याख्यान देना कबूल

भी करता है । व्याख्यान बांचते हुए थोडी बातोंकी युक्ति अच्छी आई कि तुरत ही श्रवण करनेवाले जरा अधिक तौरसे प्रशंसा करने लग जाते हैं: "अच्छा बखान बांचा ! दीक्षा लिये अभी दो महीने हुए हैं किन्तु पढाई अच्छी पढे !" मेरे सुज्ञ महाशयो ! इस प्रशंसाका परिणाम यह आता है कि बांचनेवाला फूल जाता है और इसके मगजमें अहंपदके अंकुरे उगने लगते हैं । प्रशंसाके लालचू बनकर पढने लिखनेका छोडकर व्याख्यान देनेके रास्तेमें उतर पडता है । इससे 'ज्ञानलवदूर्विदग्धम्' इस पदके लायक बन जाता है । और इस पदके लायक बननेके बाद अपना वह काम चालु रक्खे तो इसका परिणाम क्या आवे ? वह विचारना आप महाशयोंको ही सोंपता हूं । इसके वास्ते एक महान कवि सैक्सपीयर बहुत बाजिव शब्दोंमें कहता है कि, "Little learning is a dangerous thing."

"थोडा ज्ञान वह एक भयंकर वस्तु है." मेरे प्यारे ! अपन जरा लम्बा ऊंडा विचार करेंगे तो अपनेको इस वाक्यकी सत्यता मालूम हुए बगैर नहीं रहेगी । अपनी स्थानकवासी कौमसे वैसे ही मंदीरमार्गी कौममें अकेले संघाडेमेंसे संघाडे और गच्छमेंसे गच्छ निकल पड़े हैं । उसका मुख्य कारण यही है । यह सब अपनी हालकी रूढ़िको आभारी है । इससे न तो ज्ञान संपादन कर सकते हैं औ न जाहिर जिंदगी भोग सकते हैं ! इस ठिकाने पर मेरे खुदके अनुभवका उदाहरण दूंगा तो आप महाशय अच्छी तरह समझ सकेंगे ।

मैंने दीक्षा ली, तुर्तके ही दो महीनेके अरसेमें इस नव दीक्षित महाराजके व्याख्यानकी कैसी खूबी है वह जाननेको श्रावकोंका मन तलप रहा था और इसीसे उपराऊपरी (बारबार) व्याख्यानके वास्ते विनंती होने लागी । नव दीक्षित भी 'ना—ना' । ('नहीं—नहीं') कहने लगे, ऐसे ढंगसे कि जैसे व्याख्यान बांचना तो दूर असलमें आता ही है

परंतु बांचते ही नहीं है ! इसी तरहसे कितने ही दिनों तक तो काम चला किन्तु अंतमें चंद मुकामपे वहांके श्रावकोंने खूब आग्रह किया; आखीरमें गुरु महाराजके पास छोटासा 'डेप्युटेशन' गया ! और व्याख्यानके वास्ते आज्ञा हासिल की, मेरे मनमें ऐसा निश्चय हो गया था कि मुझे बांचना पड़ेगा इस लिये मैंने मेरे पढनेको एक तरफ रक्खा । घडी दो घडी तक बोल सकूं इतनी बातें दोहे वगैरह इकट्ठे कर रक्खेथे, व्याख्यान शुरू हुआ । " **जय–जय** " " **सत्य महाराज !** " " **घणी खम्मा, अन्नदाता !** " ऐसे बडे भारी आवाजसे हुंकारा भी होनेलगा, मैंने जो दो घडीके वास्ते बोलनेको इकट्ठा किया था वह अभी एक घडी भी पूर्ण नहीं होने पाई थी कि इतनेमें ही वह तो सब खतम होनेपर आ गया । मैं, घबराया ! हुंकारेकी तड़ातड़ होने लगी और मेरी घबराहट बढ गई, मैंने सवाल किया: " क्या इतनेमें समय पूरा भी हो गया ?" मेरे मनकी स्थिति कितने ही श्रोताओंने जान ली थी और उन्होंने मुझको शांति मिले ऐसा जवाब दिया–' हा, महाराज ! समय होनेको आया है; आज इतना ही काफी है; कल अधिक बांचना । " मैं व्याख्यानकी लगनमें पढ़ना भूल गया, यह बात गुरुमहाराजने जान ली और व्याख्यान बंध कराया। इसके बाद मैं संस्कृत पढ़ने लगा। वह भी चौमासा सिवाय कहीं भी नहीं पढ़ सकता । बारह महीनेमें सिर्फ चार महीने पढ सकूं और बाकी आठ महीने अभ्यास बिना केवल विहार करनेमें ही जाय; यह मुझे ठीक न लगा । चाहे जैसे हो परंतु एक ठिकाने रह कर पढा जाय तो थोडे समयमें अच्छा ज्ञान प्राप्त हो, ऐसा निश्चय होते ही मैं भावनगर पढनेको गया । वहां साडेतीन वर्ष रहके अभ्यास किया । अभ्यास अभी पूर्ण नहीं हुआ था कि मददमें खामी आई, तब ऐसा विचार हुआ कि अभी गुरु महाराजके पास जाकर और अधिक मदद प्राप्त करके आगे पढूंगा । इस विचारसे मैं गुरुजीके पास आया । यहां मेरे गुरुभाई नानचंद्रजी मुनि आशा कर बैठे थे कि "प्रेमचंद्रजी आवेंगे यानी व्याख्या-

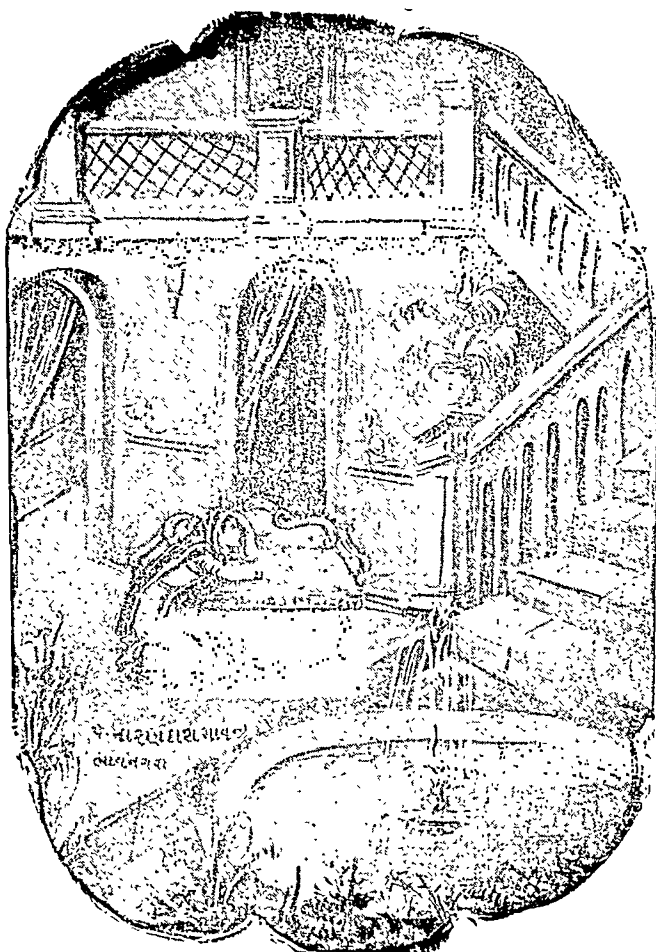
नका भार उठा लेंगे ! फिर में पढ़ा करूंगा। " यह बात सुनकर मैं तो चकित हो गया (ठंडा पड़ गया।) गुरु आज्ञासे व्याख्यान बांचना पड़ता है। मगर मेरा मन अभ्यास न होनेसे दिलगीर रहता है। न तो अभ्यास हो सकता है, और न बन-सकता-है-वैसे-ही-अच्छी तरह व्याख्यान देनेका ऐसी स्थितिमें मैं आकर पडा हूं कि-

परमधाम पायो नहीं, नहीं वैकुंठमे वास;
अधबिचमें लटके रहे, साधु सुंदरदास !

मेरे प्यारो ! मुझको भी ऐसा हुआ है। अब आप महाशय अच्छी तरह समझ सके होंगे कि हालकी अपनी व्याख्यान पद्धति कितने दरज्जे नुकसान कर्त्ता हैं। ज्ञान बढ़ानेके वास्ते एक भी साधन नहीं मगर ज्ञानको घटानेके बहुत साधन है। इस बाबतपर आप पूर्ण लक्ष देओगे ऐसी मैं आशा रखता हूं। व्याख्यानके वास्ते खास उपदेशक तय्यार करनेकी जरूरतहै, कारण कि उपदेशका सब आधार उपदेशकपर है, जब उपदेशक सुधरेंगे तब अपनी उपदेश पद्धति भी सुधर जायगी।

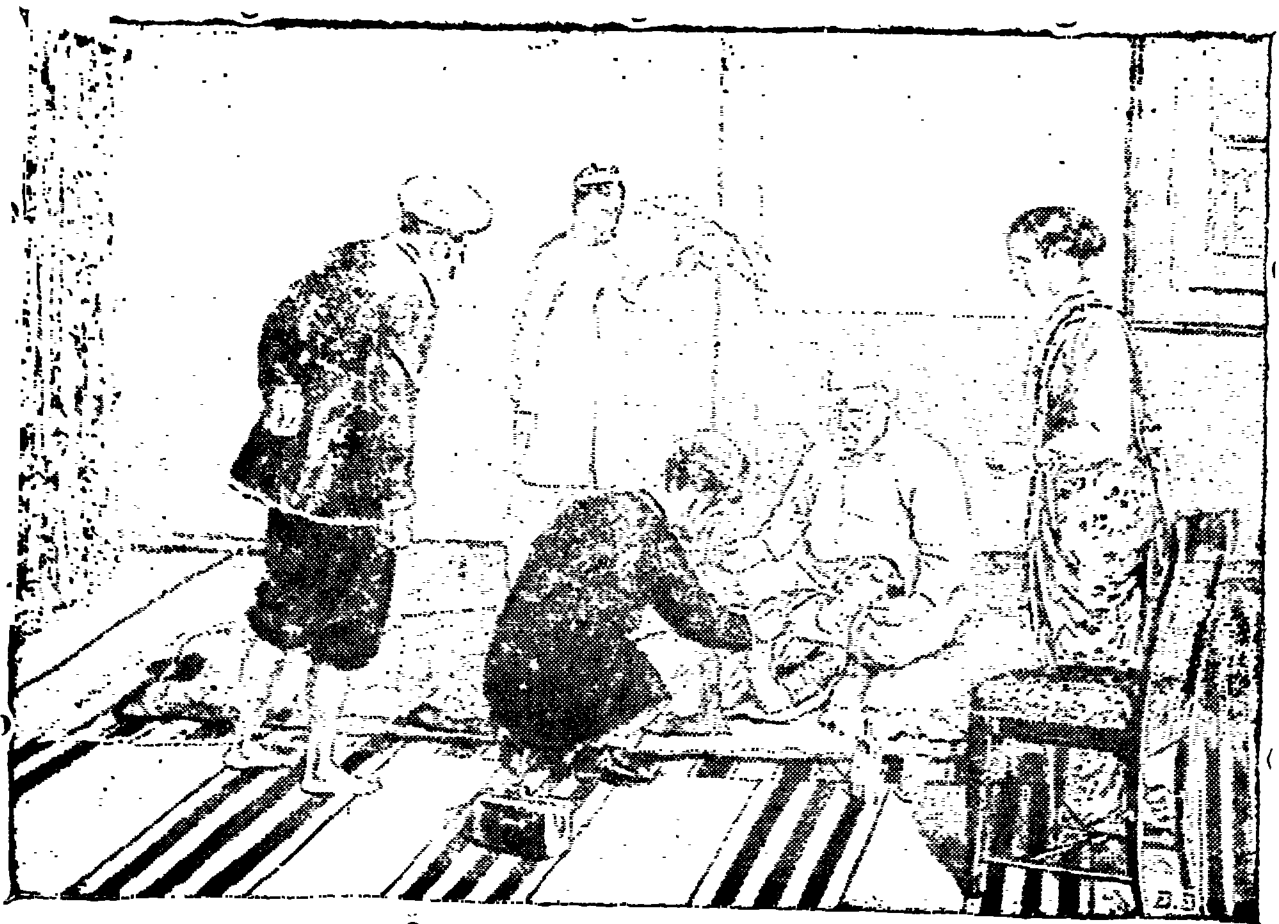
अपनी इस समयकी खराब स्थिति है वह खास करके उपदेशककी बिनलियाकतका ही परिणाम है ऐसा माननेमें मेरा मन जरा भी नहीं हिचकिंचाता (रुकता) है। मेरे प्यारो ! लियाकत क्या वस्तु है। यह अपन जैसे भूल गये हैं, वैसा दृष्टिगोचर होता है।

"Deserve before you desire" "तुम इच्छा करो उसके पहले, तुम योग्य हो जाओ," इस बचनको निरंतर अपने हृदयमें खोद रखनेकी जरूरत है। हरेक कोम-हरएक समाजका उदय खास करके उपदेशक ऊपर लटक रहा है। लिहाजा उपदेशक कैसे लायक बनकर अपनी फरज जाननेवाले हो, वैसी हिलचाल (आंदोलन) प्रथम होना चाहिये। जब उपदेशक अपना कर्तव्य जानेंगे तब ही अपना काम सच्चे दिलसे बजावेंगे, क्लेश कदाग्रह निकाल डालेंगे, जगह जगह पाठशाला कन्याशाला जैसे उपयोगी खातोंको स्थापित करावेंगे और मनुष्योंको सद्गुणी बनाकर भक्तिके सच्चे रास्तेपर चढा देवेंगे।



वृद्धविवाह के कारण एक विधवा एकांतमें रो रही हैं।

Anand Press–*Bhavnagar*.



एक बालिका अपने वृद्ध पतीके देख मूर्च्छित है।

खुला पत्र।

(लेखक—मुनि परमानन्द जैन)

श्वेताम्बर स्थानकवासी जैनमुनिगण,

क्या आपको मालूम नहीं कि समय (जमाना) दिन प्रतिदिन बदल रहा है ? जो बातें २९ वर्ष पहले दिखाई देती थी वे आज नहीं रहीं। उनमें बहुतसा परिवर्त्तन हुआ है। आज भारतकी सब जातियाँ, सब धर्मों, सर्व संप्रदायोंके लोग जाग उठे हैं और समयके अनुसार अपने २ विचारों, कामों एवं व्यावहारिक धर्म क्रियाओंमें भी परिवर्त्तन करने लगे हैं। अपने २ माननीय धर्म, पंथ और संप्रदायको उन्नत बनाने, उनकी बाह्य और आन्तरिक दशा सुधारने आदिमें नाना प्रकारके परिश्रम कर रहे हैं। कोई सभाएं स्थापित करता है, तो कोई अपने धार्मिक साहित्यका प्रचार करनेमें दत्तचित्त है; कोई समाचार पत्रों (अखबारों) द्वारा लोगोंके कुविचार पलटानेके प्रयत्नमें लगा हुआ है, तो कोई अपनी जाति या समाजमें विद्याप्रचार होनेके लिए बड़ी २ पाठशालाएँ, बोर्डिंग, वाचनालय स्थान २ पर खुलवा रहा है। कोई अनाथालय, पशुशाला आदि २ उपयोगी संस्थाएँ स्थापित करवा उनके चलानेमें अपने जीवनकी पूर्णाहुति दे रहा है। कहनेका तात्पर्य यह है कि आज भारतमें प्रायः ऐसा कोई भी व्यक्ति न होगा जो निकम्मा बैठा हुआ हो; और अपने धर्म या जातिके लिए कुछ भी न कर रहा हो। परन्तु, अत्यन्त दुःखके साथ कहना पड़ता है कि आज भारतमें एक हमारा स्थानकवासी मुनि समाज ही ऐसा समाज है जो अभी तक ज्योंका त्यों बना है, उनमें कुछ भी परिवर्त्तनके चिन्ह दिखाई नहीं देते। यह समाज गहरी नींद ही ले रहा है। इस समाजने समयके रंगको अभी तक नहीं पहचाना वह अभी तक समय धर्मसे अपरिचित है, समयके अनुसार वह अपने आचार—विचारोंके बदलनेमें पाप समझता है इसलिए

उनका समाज बिगड़ता जाता है। उनके समाजकी दशा दिन प्रतिदिन शोचनीय होती जा रही है। विशेष स्पष्ट शब्दोंमें कहूं तो हमारा मुनि समाज आज जैन समाजके लिए निर्थक सा है। उनसे जैन समाजका कुछ भी उपकार नहीं हो रहा, उनसे न हमारी समाज सुधर रही है और न धर्मका ही प्रचार हो रहा है। आज कमसे कम २०००-३५०० साधु (उपदेशक) साध्वियों (उपदेशिकाओं) का **होना न होना बराबर** है मैं मुनि समाजको खुले शब्दोंमें पूछता हूं कि क्या कोई भी मुनि मुझे इस बातका उत्तर दे सकता है कि उन्होंने अपने जीवनमें आज तक समाज हितके लिए क्या २ किया ? ऐसा कौनसा उल्लेखनीय काम किया कि हम अपने इतिहासके पोथीमें लिख रक्खें ? । उत्तरमें यही कहना पड़ेगा कि '**कुछ भी नहीं !**' बस, दो वक्त गौचरी (भिक्षा) ले आना, मज़ेसे खाना, उपदेश श्रवणार्थ आये हुए मूर्ख बनिकोंको किसी तरह राग-रागिनी अलाप, सब विषयोंकी खीचड़ी कर, कैसे भी अपने टूटे फूटे शब्दोंमें समझा, अगड़ं बगड़ं बक व्याख्यान दे देना। उनका दिल दोहे, कवित्त, दृष्टान्तोंसे खुश कर देना और उपहारमें उनसे "**धन्य महाराज ! तहत्त वचन ! प्रमाण जबर पंडित हो**" इत्यादि पदवीएं ले लेना। इसके ऊपरान्त फिर अवक़ाशके समय अपने २ भक्त श्रावकोंके पास गप्पें सप्पें ठोकते बैठना; बस, यही काम आजकलके मुनियोंके हो रहे हैं। समाज क्या वस्तु है ? मेरा और समाजका कैसा सम्बन्ध है ? मुझे अपने जीवनमें समाजके लिए (या निजके लिए) क्या क्या करना चाहिए ? मेरी और मेरे समाजकी आज क्या स्थिति है ? मुझे समाजमें क्या २ परिवर्तन करना उचित है ? मेरा ज्ञान बल कितना है ? मुझे किस बातोंका विशेष अभ्यास बढ़ानेकी जरूरत है ? मेरे धर्म या मेरे समाजको मेरे ज्ञानसे कुछ लाभ पहूंच सकेगा या नहीं ? इत्यादि बातोंका विचार तो किसी भाग्यशाली प्रति सैकड़ेमें एकाध मुनिके ही मगजमें आता होगा। क्योंकि इन बातोंको

सोचने–विचारनेवाले बहुत कम ही नज़र पड़ते हैं। मुझे तो आजकल ऐसे मुनि दीख रहे हैं कि "अपनी २ मान–प्रतिष्ठा पूजा–बाधा कराने, साँप्रदायिक झगड़ोंको बढ़ाने, श्रावकोंको परस्पर लड़ाने, देख तू मेरा चेला है मैं तेरा गुरू हूं, मुझे छोड़कर दूसरोंके पास मत जाना, मेरे सिवा दूसरोंको साधु मत कहना, उन्हें आहार–पानी वगैरह मत देना, बन्दना–नमस्कार मत करना, अगर करेगा तो नरकमें चला जायगा या सम्यक्त्व भ्रष्ट हो जायगा ऐसी २ वे सिर पैरकी बातोंका उपदेश देनेमें लगे हुए हैं। परन्तु परमात्मा महावीरके तत्त्वोंको फैलानेकी, उनके धर्मका **सच्चा रहस्य** समझानेकी, उनकी वाणीका घर २ प्रचार करनेकी, धर्मके बहानेसे होनेवाले हजारों अन्याय, हजारों झगडों, हजारों विवादों, हजारों मत दुराग्रहोंको मिटानेकी किसीको चिन्ता नहीं है। हा मुनि समाज! तेरी इस दया-जनक स्थितिको देखकर किसे रोना नहीं आयगा? यह वार २ प्रश्न उठते हैं कि क्या मुनि समाजका यही कर्त्तव्य है? क्या यही धर्म है? क्या पवित्र पिता महावीरने इसी लिए मुनि संघ स्थापित कियाथा कि मेरे पीछे मेरे उपदेशित पवित्र राष्ट्रिय धर्ममें गोटाला करना? उन्हें छिन्न भिन्न बना रक्षक हो भक्षक बनजाना?। नहीं, साधुदादाओ! यह बात नहीं है। मुनि संघ इसलिए स्थापित कियाथा कि लोग मेरे पीछे मेरे धर्मको चलायँगे, इसकी वृद्धि करेंगे, इसके द्वारा दुनियाका, प्राणीमात्रका कल्याण करेंगे, मेरे अनुयायियोंको व्यावहारिक और धार्मिक शिक्षा देते रहेंगे और मेरी आज्ञाओंको सर्वत्रता सर्वमान्य करके छोडेंगे। परन्तु शोक! तुमने सब उलटा ही काम किया!!! पवित्र धर्मकी जड़में कुठार मारा। दुनियाकी आँखोंसे उन्हें गिरानेका प्रयत्न किया! उसकी अनेक शाखाएँ प्रशाखाऐं करदीं। जैन धर्मको मिट्टीमें मिला दिया! और रहा सहा अब मिला रहे हो; परस्पर लड़ा रहे हो, एक एकको झूठा बता रहे हो, भगवान्की स्याद्वाद

वाणीको कलंकित कर रहे हो; स्मरण रक्खो, यह तुम्हारे लिये, तुम्हारे धर्मके लिए, तुम्हारी जैन जाति और जैन समाजके लिए महान् आपत्तिका सूचक है।

साधूओ, चेत जाओ। अज्ञान और प्रमादावस्थाको छोड़ो। अपने कर्तव्योंको याद करो। धर्मको बदनाम न करो। बेचारे, तुम्हारेपर तरण तारणका विश्वास रखनेवाले अन्ध श्रद्धालु और अन्ध विश्वासु भक्तोंको नरकमें न ले जाओ। अगर ले जाओगे तो मैं कहूँगा कि तुम अवश्य **नमक हरामी** हो। साधुओ, अपने भक्तोंको व्यावहारिक और धार्मिक दोनों प्रकारकी शिक्षाएं दो। प्रथम व्यावहारिक शिक्षा देना चाहिए और फिर धार्मिक। क्योंकि व्यावहारिक शिक्षा विना उनका **गार्हस्थ्य जीवन** अच्छा नहीं बन सकता। तुम उन्हें रात-दिन धर्म ही धर्म घोट २ कर पिला रहे हो परन्तु व्यावहारिक शिक्षाका नाम तक नहीं सुनाते। क्या ऊषर (पथरेली भूमिमें) धर्मरूप शुद्ध बीज बोनेसे कभी उग सकेगा? कदापि नहीं। इस लिए पहले अपने भक्तोंको आदर्श गृहस्थ बनाओ। फिर तुम्हें धर्मरूप स्वच्छ जल जितना पिलाना हो उतना पिलाओ, हमारी कुछ मनाई नहीं। साधु-महात्माओ, समयानुकूल अपना जीवन बनाओ।

समाजकी सब आधियाँ व्याधियाँ और समाजकी सब कुरीतियाँ मिटा देनेके लिए कमर कसो और समाजकी सम्पूर्ण शाखा प्रतिशाखाओंको एक करनेके लिए समरस्थल (युद्धभूमि) में एकदम कूद पड़ो। इससे समाज तुम्हारा गुण गायेगा और जगह जगह तुम्हारी कीर्ति, स्मारक स्तंभ स्थापित करेगा। अगर तुम समाजको शुद्ध और पवित्र बनानेके लिए न उठोगे, और हमारी इस बातको न मानोगे, तो खूब याद रक्खो एक समय वह आयगा कि तुम्हारे ही अन्ध श्रद्धालु भक्त अन्न और वस्त्रके दातार स्वयं तुम्हें मानना-पूजना छोड़ देंगे। तुम्हारे

आजके विश्वासपर वे अवश्य जूती मारेंगे और कहेंगे कि इन साधुओंने ही हमारे घरका (वीर परमात्माके धर्मका) सत्यानाश किया। इन्होंने ही हमारे (गार्हस्थ) जीवनको बिगाड़ा। इन्होंने ही हमें परस्पर लड़ाया। यही हमारी उन्नतिमें बाधक (उन्नतिमें बाधा डालनेवाले) हुए। इन्होंने ही हम सबको अज्ञानी रक्खा। आदि आदि।

इस प्रकार कहने और सुनानेका समय न आनेके पहले ही चेतजाना लाभदायक समझो। बंधुओ, गृहस्थ वर्ग (तुम्हारा शिष्यवर्ग) दिन-प्रतिदिन ज्ञान बलमें तुमसे भी आगे २ बढ़ रहा है और तुम अभीतक-पूर्व स्थितिमें ही पड़े हुए हो। अपना२ ज्ञान बल विशेष बढ़ानेका प्रयत्न क्यों नहीं करते हो? अवश्य करना चाहिए। ऐक्य और ज्ञान बल बढ़ाकर समाज सुधारके कामोंमें लगना चाहिए। जितने समाज सुधारके काम हैं वे सब तुम्हें ही पूरे करके दिखाने चाहिएँ। तभी मुनि और गुरुपदका गौरव कायम रह सकता है।

मुझे दृढ़ विश्वास है कि यदि तुम प्रमाद एवं परस्परकी फूटको त्याग कर अपने लिये या श्रावकोंके लिए सीधा कहूं तो सब जैनसमाजके लिए कुछ करोगे तो तुम अवश्य आदर दृष्टिसे देखे जाओगे।



जैन समाजका ह्रास।

हमारे चारों ओर 'उन्नति' और 'सुधार' की धूम मची हुई है। हमारे पड़ौसी तेज गतिसे आगे बढ़ रहे हैं। पर, हमारा जैन समाज बिलकुल मुरदा पड़ा हुआ अपनी मृत्युकी घड़ियाँ गिन रहा है। 'सुधार' और 'उन्नति' के शब्द तो कुछ जैनोंके मुखसे सुनाई पड़ते हैं। सुधार करनेके लिये आज जैन समाजमें सैकड़ों सभायें स्थापित हो गई हैं। सैकड़ों जैनी सुधारका उपदेश दे रहे हैं। पर जब इन सुधारकोंके कार्यों-

की ओर देखा जाता है, तब पता लगता है कि जैन समाज उन्नतिके बजाय ह्रासको प्राप्त हो रहा है। आज हमारे समाजमें जितने भी सुधारक दिखाई देते हैं, वे सब केवल दिखाऊ आडम्बरी उन्नतिके इच्छुक हैं। जितनी भी आज हमारे समाजमें सभा–सोसाइटियाँ हैं वे सब नाम चाहनेकी युनिवरसिटी हैं। हम अमुक सभाके मेम्बर हैं सेक्रेटरी हैं, बस यह अभिमान पैदा करानेवाली हमारी सभायें हो रही हैं।

जैन समाजकी ओर एक दृष्टि डालिए। साठ साठ वर्षके खूसट बुड्ढे रुपये देकर अपने चार चार व्याह करलें। बेचारे, निर्धन कुँवारे रहकर अपना जीवन बितावें। दस दस और पाँच वर्षके बच्चेकी शादी करदी जाय। उनके ब्रह्मचर्यपर यों छापा मारा जाय। दिन दहाडे पुराने समयके गुलामोंकी भांति अबोध बालिकायें बिकें। वे भी खूसट बुड्ढोंके गले बांधकर जन्म भरके लिए विधवा बना दी जाय। फिर हमारा जैन समाज, हमारे ज्ञानभंडार पंडित अपनेको दया और धर्मकी मूर्ति बतलावें। अपनी काम पिपासा तृप्त करनेके लिए वृद्ध, चार चार व्याह करें और दस दस पांच पांच वर्षकी सुकुमार बालिकाओंको विधवाएँ बनाकर उनसे शीलधर्मकी आशा करें। जैन समाज! आज तेरे सेठ और पंडित कैसे स्वार्थी बन रहे हैं! अपने सुखके लिए चार चार छः छः व्याह करके भी अपनी कुमारी विधवाओंके सुखकी तनिक भी परवा न करें? मानों ये बेचारी उनके लिए कोई चीज़ ही नहीं है। जैन समाजमें बच्चे और बच्चियोंका गुड्डे-गुड्डियों जैसे व्याह कर दिये जाते हैं। उनकी शिक्षा पर, उनके भविष्यत जीवन पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया जाता। आज बालविवाह, वृद्ध-विवाहके कारण विधवाओंकी संख्या बढ़ ही रही है, उधर रुपयोंसे बिकनेवाली लडकियोंके कारण कितने ही निर्धन कुंवारे रह जाते हैं। संतानोत्पत्तिके योग्य लडकियें रुपयोंके लालचसे बुड्ढे और खूसटोंके गले

मढ़ दी जाती हैं। वे युवा अवस्था पानेपर या तो किसीके साथ काला मुहँ कर भाग जाती हैं या छुपे छुपे वेश्यासे भी अधिक खोटे कर्म करती हैं और हमारे धर्म घंटाल पंडितों और सेठोंके भयके मारे भ्रूणहत्या जैसे घोर पापोंमें लिप्त रहती हैं।

किसी भी भले घरकी ओर आप देखिये, उनकी गृहिणी या तो किसी नीच मनुष्यके साथ आराम करती होंगी या अपने भाग्यको कोस रही होंगी। इसमें इन बेचारी स्त्रियोंका कुछ भी दोष नहीं है। वे बेचारी जानबूझकर बुड्ढे सेठोंके गले मढ़ दी जाती हैं। कहनेको जैनी ऊंचे कुलके बनते हैं, पर उन्हींके घरमें नीचोंसे भी खराब कार्य होते हैं। हमारे पंडित और धर्मगुरु बस 'कलियुग है,' 'पंचमकाल है' कहकर आकाश–पाताल एक कर डालते हैं। यदि ये स्वार्थी तनिक भी अपनी बुद्धिको जोर दें तो वे समाजके सच्चे दृश्यको जान सकते हैं। पर **ये तो है लकीरके फकीर**। शास्त्रोंके पोथेके पोथे पढ़े हुए हैं। अपने स्वार्थकी जितनी इन्हें परवा है उतनी दूसरेकी नहीं। शीलव्रतका उपदेश देनेवाले धर्मकी साक्षात् मूर्तियें भी अपनी कामेच्छाको पूर्ण करनेके लिए कई ब्याह कर डालें। और हमारी विधवाओंको उपदेश दें कि तुम शीलव्रत पालो। धिक्कार है ऐसे स्वार्थियों पर।

देखिये इन कारणोंसे जैनसमाजका कैसा भीषण ह्रास हो रहा है। जैनियोंकी संख्या दिन प्रतिदिन घटती जाती है। इसके लिए आवश्यकता है कर्मवीरोंकी, सच्चे सुधारकोंकी। जैन समाजके नवयुवको, मैदानमें आओ और जैन समाजके सच्चे सुधारक बनो, इन पुराने लकीरके फकीर स्वार्थी पंडितों और सेठोंसे अपनेको बचाओ। जैन माताके ऋणसे उऋण होओ। स्थान स्थान पर गाँव गाँवमें जैन समाजकी कुरीतियोंके खंडनका प्रबल आन्दोलन करो और स्वयं अपनेको आदर्श बनाकर दिखाओ।

मैं तो ऐसा ही करूंगा।

(लेखक-श्रीयुत बाबू गोपीलाल गोधा, लश्कर।)



पहरका समय है। चारों तरफ घटाएं छा रही हैं, नन्हीं २ बुंदियां पड़ रही हैं—सामने पर्वतपरसे झरना गिरता हुआ कितना शोभायमान मालूम पड़ता है। जिधर देखो उधर हरियाली ही हरीयाली दिखलाई पड़ती है। आइये पाठक, अपन भी ऐसे समयमें पर्वतके ऊपरकी सैर करें और प्रकृतिकी शोभायमान चीजोंका भी अवलोकन करें। आज जिधर देखते हैं उधर ही मनुष्योंके, बच्चोंके, स्त्रियोंके झुंडके झुंड नज़र पड़ते हैं, कोई खा रहा है, कोई पी रहा है, कोई लेट रहा है, कोई दुपट्टा बिछाकर घासपर करवटे बदल रहा है, कोई झरनोंके जलसे नहा रहा है अर्थात् हर प्रकार मनुष्योंके झुन्डके झुन्ड अपने २ आनंदमें मग्न हो रहे हैं। ऐसे ही समयमें तीन पुरुष पर्वतकी चोटीके पास दुपट्टा बिछाकर बैठे हुए बातें कर रहे हैं। प्रिय, पाठकगण ! आइये, अपन भी इनकी बातें सुने कि ये क्या कर रहे हैं ?

एक—भाई ! आजकल बाबू शांतिदासजी बड़े ही देश सेवाकी ओर झुके हुए हैं, वे तो ऐसे लवलीन हो रहे हैं कि किसीकी कुछ परवा ही नहीं करते। घड़ी घड़ इस विषय पर लेक्चर दिया करते हैं।

दूसरा—और इसके साथ यह भी तो है कि अपने घरके पंचायती लोगोंके विरुद्ध होकर यह कार्य कर रहे हैं। भाई, एक बात तो हम भी कहेंगे कि इन बातोंसे उनकी लोगोंमें प्रतिष्ठा तो बहुत हो गई है; और सब उनको जी जानसे चाहते भी हैं।

पहला—मेरा विचार तो ऐसा ही हुआ हैं कि उनकी सोबत करूं; क्योंकि उनके मुखसे कई बार मैंने अपने भारतकी हीनावस्था (जो बिलकुल सच और प्रत्यक्ष दिखलाई देती है) सुनी हैं उस पर बाज़ समय आखोंमें आँसू आते हैं। पर क्या करूं घर–गृहस्थीके फंदेमें ऐसे फंसे हुए हैं कि जिनसे निकलना बड़ा मुश्किल है।

तीसरा—काई थे भी **बुधमलजी** वीं कल छोकराकी बातें करो छो, म्हारे सामने पैदा हुन्यो, पढ़वा लाग्यो, अव हे. मे. (M. A.) और जाने कांई कांई पास कर बाबू साहब बन गया। बाप विचारो खूब धन छोड़ कर मरयो छै। सो बस वींनें उड़ावै छै, या पाठशाला, मदरसा बनवाना और दैनामें कांइ धरयौ छै। और ऊपरसे झटसे टाउन हालमें गया और बक २ करवा लाग्या। **बापका नुकतामें तो कांई भी कोने करयौ, इस पंचाने भी लाडू कोने जिमाया**। वो तो इस्या फोकरका काममें खर्च करै छै कि अबार कोई मोटा २ आदमी आयाथा सो झटसे थैलीकी थैली निकाल हिन्दू झूनि वच्छिटी (Hindu University) के तांई देदी–अबार एक मदरसा खालेज (College) बना कर चुका ही हा। और बार २ जद कहवैं है जद येही कि, **देश सेवा करो, समाज उन्नति करो, लुगायांने पढावो, हिन्दी साहित्यका प्रचार करो, देखो आपनो भारत बहुत पीछे गिरयो हुयो छै, जब कि और २ देशांमें तरक्की हो रही छै, आपां भी मिलकर खूब तरक्की करां** इसी २ बातां वो तो करै है। भला भाई! थे भी बताओ आपांने इसी बातसे कोंई मतलब? थे भलां ही को मनै तो यह बातां आछी कोने लागें?

पहला (बुधमल)—सेठ साहब, आप तो ऐसी बातें करते हैं जिनका सिर न पैर। भला, शांतिदासजी जो कहते हैं। वह सच ही तो कहते

हैं और **परोपकार ही करते** हैं। उनका कहना कितना अच्छा है कि **हम सम्मिलित शक्तिसे उन्नतिका उद्योग** करें।

तीसरा—कोई थे भी वीं छोकरा की हां में हां मिलावो छौ। आपाने तो **आपनी रिवाज मुजब चालनो चाहे क्यूं ही क्यों न हो।**

दूसरा—भाई! बुधमलजी उठो, अब यह बातें तो फिर करेंगे। अपन जिस बातके लिए यहाँ आये हैं वह तो करें—चलिये, उठिये, और प्रकृतिकी सैर कीजिए; देखिए! कैसी सुहावनी जगह मालूम पड़ती है! ऐसा कहकर तीनों वहांसे उठ दिये और उधर-इधर घूमने लगे।

पाठकगण! हम आपको इन तीनों पुरुषोंका कुछ परिचय करादेना चाहते हैं, क्योंकि आप जाननेके लिए उत्सुक हो रहे होंगे कि वे कोन हैं?

इनमें पहला आदमी तो बुधमल हैं, यह एक अच्छे घरानेका मनुष्य हैं और उन्नतिकी ओर इसका लक्ष्य है।

दूसरा आदमी इन्हीं तीसरे आदमी बुड्ढे बावाका लड़का है। इसका नाम है शीतलचंद। यह आजकल कालेजकी थर्ड ईयर क्लासमें शिक्षा पारहा है। बुधमल अर्थात पहला मनुष्य इसका दोस्त हैं।

तीसरा आदमी इन्हीं शीतलचंदका पिता है इनका नाम है सेठ कंजूसरायजी, यह पुराने ढचरेके मनुष्य हैं। आप लकीरके फकीर हैं, धार्मिक कार्यों और परोपकारतामें तो पैसा खर्च करना सीखे ही नहीं। हां, अगर मौका आजाय तो नुकता करनेमें, या व्याहमें रंडिये नचानेमें तो थैलीकी थैली उठा देनेकी शक्ति रखते हैं।

द्वितीय परिच्छेद।

आज शहरमें बड़ी भारी हलचल मच रही है; वैद्य पर वैद्य और डाक्टर पर डाक्टर आ रहे हैं। घर २में यही चर्चा चल रही है कि

आज सेठ कंजूसरायजीकी तबियत बहुत ज्यादा खराब हो गई है, उनको हैज़ा हो गया है, बचना मुश्किल दिखता है। बाज़ार, हाट, गली सब जगह जहां देखो वहां यही चर्चा फैल रही है; स्त्रियोंकी पार्लियामेंटमें भी जोरसे इस विषय पर आंदोलन मचा रहा है। आइये पाठक, अपन भी इनकी चर्चा सुनें।

एक—हेंजी बहन! थे कंजूसरायजी सेठका बारामें भी क्यूं सुनी है या कोनी, वाँको हैजो हो गये बतावें, बचवो मुश्किल ही दीखै छै, पेशाब अब तक कोने उतर्‌यो।

दूसरी—बहन! मरने भी दो सालेको, अजी बड़ा कंजूस है; जैसा उसका नाम है वैसा ही वह है। धर्मके किसी भी काममें उसकी नीयत नहीं चलती।

तीसरी—बहन, उनके लड़के और लुगाइयोंको बड़ी तकलीफ़ हो जायगी, अगर कुछ दिनों और बैठे रहे तो अच्छा है, सब संभल जायगे।

पहली—अजी थे भी कांई बातां करो छो; तकलीफ वानैं काहेकी होजासी; बांका घरमें कमी काहेकी है? करोड़ा रुपयाको माल छै खूब मौज उड़ा सी।

चौथी—अजी अगर सेठजी चलबस्या तो बांको मायो तो नुकतो वगैरह करतो को नी दीखै कारण कि वींकी सोहबत बाबूजीकी छै।

पांचवी—बहन! इन नुकते वगैरहमें क्या रखा है? केवल एक दिन लड्डू खाये और फिर दूसरे दिन पाखाना होकर निकल गये—इसमें कोई नाम थोड़े होता है। यदि इतना ही रुपया समाज और देशसेवामें लगाया जाय तो कितना न उपकार हो, और पुन्यका भी कितना न बंध हो। इधर तो औरतोंकी पार्लियामेंटमें येह प्रस्ताव पास होही रहेथे और उधर ही कानमें आवाज सुनाई पड़ी कि "सेठ कंजूसरायजी गुजर गये।

एक—बहन, देखो, आपां जो बातां कर रह्या छा सोइ हुई, वे विचारे

चलबसे । अब कोई भी रह्या ? छोरा छापराका राज पाट है अब वे चाहै जो करें ।

दूसरी—बहन चलो अब यह बातें तो फिर होंगी, अब अपनको चलना चाहिए, चलो सेठजीके घर चलें, उनकी बहू तथा मैयाको समता बँधा आवें ।

तृतीय परिच्छेद ।

आज सेठ कंजूसरायजीको मरे छः दिन हो गये । आज फिर बाबू शांतिदासजी उनके यहाँ बैठनेको आये ।

आइये पाठक, आपको कुछ बाबू शांतिदासजीका भी परिचय करा दें । आप एक बहुत ही बड़े घरानेके पुरुष हैं । आपके पिता एक बहुत बड़े सेठ थे; करोड़पतियोंमें गिन्ती थी, शांतिदासजी M. A. LL. B. पास कर चुके हैं । अब आजकल आपका मन देशसेवाकी ओर झुका हुआ है । आप एक कालेज भी खोल चुके हैं, आप देशके प्रतिष्ठित पुरुषोंमें समझे जाते हैं । गवर्नमेंटमें भी आपकी अच्छी प्रतिष्ठा हैं । आप एक अच्छे लैक्चरार (व्याखाता) हैं। **हिन्दी साहित्यकी भी खूब** उन्नति आपने की है । सदा आपको अपने देश और समाजको उन्नतिके शिखर पर चढ़ानेका ध्यान रहता है ।

आज वे सेठ कंजूसरायजीके घर बैठे बातें कर रहे हैं—

शांतिदास—क्यों भाई ! शीतलचंद, अब तुमने क्या बिचार किया है ? मेरी रायमें तो नुकता करना ठीक नहीं, तुम तो ऐसा करो कि एक विधवाश्रम खोल दो । अच्छा भाई, माताजी क्या कहती हैं ?

शीतलचंद—भाई साहब, **मैं तो ऐसा ही करूंगा** जैसा आप कह रहे हैं; माताजीने भी यही हुकुम दिया है कि जैसा आप कहें वैसा ही मैं करूं ।

शांतिदास—अच्छा चलो, माताजीके पास हम भी चलते हैं, उनसे और भी कुछ बातें कहनी हैं ।

ऐसा कहकर दोनों वहाँसे भीतर हवेलीमें चले गये। वहाँ जाकर शांतिदासजीने माताको प्रणाम किया।

शांतिदास—माताजी प्रणाम ! (ढोक दूं)

सुशीला—बेटा ! चिरंजीव रहो। फलो फूलो; अबके तो तुम कई दिनोंमें आये।

शांतिदास—हां, माताजी, अवकाश न मिलनेके कारण सेवामें उपस्थित न हो सका। अच्छा, अब बतलाये आपने क्या सोचा है? मेरी रायमें तो दादाजीके नामका एक अस्पताल खोल दीजिए और आप अपने नामसे एक आश्रम खोल दीजिए क्योंकि अपनी जातिकी स्त्रियोंकी बड़ी हीनावस्था है। नुकतामें तो केवल × ब्राह्मण भोजन तथा भूखोंको दान दे दीजिये तथा अपनी २ बिरादरीको ही जिमा दीजिए इससे अधिक जैसी मैंने अफवाह सुनी थी वह नहीं होना चाहिये।

सुशीला—बेटा, मैंने शीतलसे भी ऐसा ही कहा है और कह दिया था कि जैसा तुम कहो वैसा ही वह करें। मुनीमजी इत्यादि सबको इसी बातके पत्र भिजवा दिये हैं।

शांतिदास—हां, और थोड़ेसे रुपये वार फंडमें भी भिजवादेने चाहिये जिससे अपने देशके भाइयों तथा राज्य कर्मचारियोंको जो लड़ाइमें हैं सहायता पहूंचे।

सुशीला—बेटा, अच्छी बात है। जितना तुम्हारी मर्जी हो भिजवा दो। यह तो बड़ी ही अच्छी बात है।

शांतिदास—अच्छा, अब आज्ञा दीजिए मुझको जाना है। क्योंकि पूनेसे एक पारसी सज्जन आये हैं। उनका और मेरा कल टाउन हालमें हिन्दी साहित्य सभाकी ओरसे पब्लिक व्याख्यान होगा। इस लिए मुझे उसमें जाना आवश्यक है। ऐसा कहकर वे वहांसे उठ गये।

× ब्राह्मण भोजन देना ही क्यों आवश्यक है? सम्पादक।

सुशील सेठ कंजुसरायजीकी धर्मपत्नी और शीतलचन्दकी माता हैं। आप बड़ी शीलवान तथा पढ़ी लिखी हैं। अपनी स्त्री समाजकी उन्नति करनेमें आप दत्तचित रहा करती हैं। घरपर अवकाशके समय आपके पास मुहल्ले तथा जातिकी बहुतसी स्त्रियें तथा बालिकायें पढ़नेको तथा सीना-पिरौना, कसीदा आदि काढना इत्यादि सीखनेको आया करती हैं। आपके ही कारणसे शीतलचंद ऐसी ऊँची पढ़ाई कर रहा है अन्यथा सेठजीका बस चलता तो वे अब तक कभीके उसको पढ़नेसे छुड़ा लेते।

चौथा परिच्छेद।

आज शहरमें बग्गियों पर बग्गियें, मोटरपर मोटर, गाड़ीपर गाड़ी चली आ रही हैं, मनुष्योंका झमघट भी चौराई पर बड़ा इकट्ठा हो रहाहै, कोई २ पूछते हैं भाई, आज क्या बात है जो टाउन हालपर इतने आदमी जमा हैं, आफीसर बडे रईस मध्यम श्रेणीके पुरुष तथा अन्य सज्जन मंडलियोंके झुंडके झुंड इकट्ठे हो रहे हैं। तमाम लोग आपसमें इसी बात-की चर्चा करते हैं कि आजका व्याख्यान बडा अच्छा होगा। आज बाबू शांतिदासजी व्याख्यान देंगे।

एक—क्यों भाई, आज किस विषयपर व्याख्यान है?

दूसरा—साहित्य सेवा और मातृ भाषा हिन्दीके प्रचार पर व्याख्यान होगा।

शीतलचंद—क्यों भाई, बुधमलजी, आज क्या विचार है? व्याख्यान-में जहां तक बने जल्दी ही चलना चाहिए। क्योंकि व्याख्यान ठीक ७॥ बजेसे प्रारंभ हो जायगा।

बुधमल——चलो, मैं तैयार हूं। आज व्यालू कर जल्दी चलना ही चाहिए क्योंकि वहाँ चल कर कुछ सेवा करना अपना परम कर्तव्य है।

इधर इन दोनोंमें बातें करनेमें तथा व्यालू (Supper) इत्यादिसे निवटनेमें कुछ देरी हो गई अर्थात् आठ बज गये। ये घबड़ाकर जल्दी २

लंबे डग मारते टाउन हाल पहुँचे; वहां पहुँच कर क्या देखते हैं कि शांतिदासजीका व्याख्यान प्रारंभ हो चुका है, उनके कानमें जो शब्द लेक्चरके सुनाई पड़ें वह निम्न प्रकार थे—

"स्वयं हिन्दी सीखिए, हिन्दी बोलिए, हिन्दीमें पत्रव्यवहार कीजिए, हिन्दीमें लेख लिखिए, हिन्दीमें ही सब कारोबार कीजिए, हिन्दीमें पुस्तकें निर्माण कीजिए, जहाँ देखो वहाँ हिन्दी ही हिन्दीका आन्दोलन मचा दीजिए, बालकोंको हिन्दी ही पढ़ाइये, स्कूलों और कालेजोंमें मुख्य भाषा हिन्दी ही कीजिए, हिन्दीके पत्रोंका खूब प्रचार कीजिए; इनके बाद आप देखेंगे कि **हिन्दी राष्ट्र भाषा हो गई।** जहां इन बातोंका प्रचार हुआ और अपने भारतकी उन्नति हुई। आजकल अपना भारत कितना पीछे हटा हुआ है। जब कि और और देश अपनी उन्नति कर रहे हैं। अपन लोग अपने साहित्यको भूल बैठे हैं, उसको गुमा चुके हैं और तभी अपने अपनेको सबके पीछे कर बैठे हैं। किसी तरफ भी जोर न रहा, नया साहित्य पैदा करनेकी तो बात भूल गये। इसके बजाय हमने आपसमें ईर्षा, द्वेष, ग्लानि, अज्ञानता, अकर्मण्यता इत्यादि२ बातोंसे अपने हृदयको भर लिया। प्यारे भाइयो, इन बातोंको अपने दिलसे निकालिये और उन्नतिके कार्यक्षेत्रमें पैर बढ़ाइये; अन्यथा एक दिन ऐसा होगा कि आप किसीको अपना मुख दिखलाने लायक न रहेंगे। देखिये, आपके देशकी, समाजकी, भाइयोंकी क्या अवस्था हो रही है? क्या आपको इन बातोंपर आंसु नहीं आते। शोक शोक!! शोक!!! अपने देशके पुरुष, स्त्री, बालक किसीको भी अशिक्षित न रहने दीजिए, हरएकको शिक्षा देनेका प्रयत्न कीजिए। आप सच्चरित्र बनिये और दूसरोंको बनानेका प्रयत्न कीजिए। पहले ही पहले यह सब बातें आपको कष्टदायक मालूम होंगी और उनके करनेमें आपको कई प्रकारकी आपत्तियोंका सामना करना पड़ेगा। किन्तु उनकी कुछ परवा मत कीजिए, धैर्य द्वारा उनको सहकर उन्नतिका मार्ग कांटोंसे साफ

कर दीजिए। जहाँ आपने यह बातें की कि आप देखेंगे कि अपने देशकी कैसी उन्नति हो गई। आपका नाम जगतमें विख्यात हो जायगा।

दादाभाई नवरोजी, बालगंगाधर तिलक, और माननीय गोखले इत्यादि सज्जनोंकी अवस्थाको देखिये जिन्होंने अपने देशके, राज्य भक्तिके, और भाइयोंके हितार्थ अपने शरीरको अर्पण कर दिया। आप भी ऐसा ही बननेका प्रयत्न कीजिए तब आप देखेंगे कि क्या अवस्था किस अवस्थामें परिवर्तित हो गई। मैं आशा करता हूं कि आप अपने उद्योगोंमें किसी प्रकारकी कमी न रखकर अपनेको आदर्श पुरुष बनानेका और आदर्श जीवन करनेका प्रयत्न करेंगे। इन बातोंके पश्चात् मैं अपनी जगह लेता हूं और आशा करता हूँ कि आप कुछ न कुछ मेरे शब्दोंको अपने हृदयमें स्थान दे उन पर अमल करेंगे।"

इस व्याख्यानके पश्चात् सभा जय जयकार ध्वनिके साथ समाप्त हुई।

इस व्याख्यानको सुनकर शीतलचंद बुधमलसे उसकी प्रशंसा करने लगे।

शीतलचंद—भाई बुधमलजी, आपने देखा व्याख्यान कैसा जोशका था? अपने देशकी क्या अवस्था हो रही है? भाई इस हालतको देखनेसे आंसू आते हैं। मैंने तो यह निश्चय कर लिया है कि मैं **ऐसा ही करूंगा, ऐसा ही करूंगा** जैसा बाबू शांतिदासजीने उपदेश दिया है।

बुधमल—भाई, मैं भी अपने दिलमें निश्चय कर चुका हूँ कि मैं अपनेको आदर्श बनानेका प्रयत्न करूँगा

ऐसी २ बातें करते २ दोनों अपने २ घर पहुँचे। शीतलचन्दने बाबू शांतिदासजीके उपदेशानुसार अपनी माताके नामसे एक विधवाश्रम और पाठशाला बनवा डाली। एक अस्पताल खोल दिया और पिताके नाम पर एक बड़े भारी सेन्ट्रल कालेजकी स्थापना कर दी, जिससे शीतलचन्दका नाम अमर हो गया। बाबू शांतिदास, शीतलचन्द और बुधमल देशमें

मुनि —



सट्टेबाजकी दुर्दशा।

जैनविजय प्रेस-सूरत.



सोक्रेटीसका विषपान।

जैनविजय प्रेस–सूरत.

आदर्शपुरुष गिने जाने लगे। प्रिय पाठको ! आईये हम भी सम्मिलत शक्तिसे सुधारकी ओर लक्ष्य दें और अपनेको देशमें आदर्श बनानेका प्रयत्न करें। रूढियोंको हटावें, बुरे रिवाजोंका काला मुँह करें और इसीके साथ २ देशकी, समाजकी, भाइयोंकी, जातिकी, स्त्रियोंकी और बालकोंकी अवस्थाएँ सुधारें। पाठको ! अगर आपने मेरे शब्दोंपर कुछ भी ध्यान दे अपने हृदयको संकीर्ण बना, देशसेवामें लक्ष्य दिया तो मैं अपनेको सफलीभूत मानूँगा।



अज्ञान चरित्र ।



(लेखक—विश्वंभरदास गार्गीय)

ज्ञान रहित आचरण आजकल हममें बहुत बढ़ रहा है। इसका कारण आधुनिक समयका प्रभाव नहीं है किन्तु आजसे दश वर्ष पूर्वके अज्ञ—कालका प्रभाव है जिसकी बदौलत उच्च शिक्षाका द्वार बंदसा हो गया था। उसका प्रत्यक्ष प्रभाव आजकलके प्राकृत गाथा सूत्रोंके पाठियोंके अशुद्ध उच्चारणसे मिल जाता है। गाथा—सूत्रोंके समझनेवाले कितने हैं ? इस प्रश्नका उत्तर अंगुलियोंपर गिनकर दिया जा सकता है। पर गाथा—सूत्रोंके पाठी इतने मिल जायंगे कि उनके नाम सुननेमें भी आप उकता जायँगे। इससे अधिक इनके लिए कुछ कहना अपनी हंसी अपने आप कराना है। अब आप स्वयं समझ जायँगे कि जो सूत्रोंको अच्छी तरह पढ़ ही नहीं सकते वे समझते कितना होंगे इस बातकी थाँह एक साधारणसे साधारण समझदार आदमी भी लगा सकता है। ज्ञानकी थाँह लगाना अशक्य है, पर आजकलका रूढिगत सिद्धान्त विषयक ज्ञान ही कितना है जो उसकी थाँह न लग सके। इसलिए कहना पड़ता है कि जो हमारे यहाँ धर्मके धुरि हैं; सिद्धान्तके ज्ञाता हैं, जब उनका ज्ञान ही परिमित है तो चारित्र क्यों न आबद्ध होगा ? जो केवल रूढीको पालन करनेके लिए ही सूत्र पाठी बन जाते हैं, जिनको वास्तवमें सूत्रोंका ज्ञान

नहीं है; वे पंडित नहीं किन्तु ढोंगी हैं, सच्चरित नहीं किन्तु चारित्र भेषी हैं। ऐसे ही ढोंगियोंकी आजकल जैन समाजमें कमी नहीं है। जब तक गृहस्थोंको व्रत, संयमका अच्छी तरह ज्ञान न हो जावे, त्यागका उद्देश्य न मालूम हो जावे, उस वक्त तक कदापि भी किसी वस्तुका त्याग न कराना चाहिए। बहुतसे मेरे भाई तो इस कथनको पूर्ण समझे बिना ही आग बबूला हो जायंगे और त्यागके उद्देश्य, गुण व दोषोंका और अधिक सुनना भी पसंद न करेंगे। उनके लिये मैं कुछ नहीं लिख रहा हूँ। मेरा उपदेश सिर्फ उनके लिए है जो कुछ समझ और विवेक रखते हैं। जो बुद्धिके पीछे लकड़ी लिए नहीं फिरते हैं उन्हीके लिए मेरा यह लिखना है"

धर्म बुद्धिसे व्रत संयम धारण करनेके लिए जो त्याग किया जाता है, उसका उद्देश्य होता है—त्याग करनेवालेका अपनी इन्द्रियोंको वशमें करना। अपनी आत्माको बलवान् बनानेके लिए इन्द्रियोंके विषयोंका दमन किया जाता है उसे इन्द्रिय संयम कहते हैं। जिससे इन्द्रियें आत्माके वशमें रहें और आत्मा इन्द्रियोंका दास न बनने पावे, इसके लिए प्रत्येक मनुष्यको अपनी इच्छाको मारना पड़ता है, इन्द्रियोंके भोगोंको घटाना पड़ता है उसीको संयम व तप कहते हैं। कहा भी है—"इच्छा निरोधो परमतपः"

त्यागके कामको यदि गृहस्थ समझके साथ करे तो वह इस विषयमें गृहस्थ होता हुआ भी मुनियोंके सदृश त्यागी है। यदि मुनि हुआ और उसे त्यागका उद्देश्य इन्द्रिय संयम करना न मालूम हुआ तो उससे अच्छा वह गृहस्थ है जिसे त्यागका उद्देश्य मालूम है।

गृहस्थ लोग हरी (वनस्पति) का त्याग बहुत किया करते हैं। इस त्यागसे वे जिह्वा इन्द्रियके भोगोंको कम करके इन्द्रिय संयमकी पालना करते हैं पर अज्ञान वश ऐसा बहुत कम समझते हैं। अधिकांश भाई ऐसे

हैं जो हरीके त्यागको स्थावर जीवोंकी विदीर्णा कम करना समझते हैं और ऐसा करके वे अपनेको स्थावर जीवोंकी हिंसाका त्यागी समझते हैं किन्तु यह बिल्कुल नहीं समझते कि यह सब कुछ हम अपनी इन्द्रियोंको संयत करनेके लिए ही करते हैं। स्थावर जीवोंकी विदीर्णाके त्यागका हमारा प्रयोजन नहीं है किन्तु उपचारसे हमको स्थावर जीवोंके प्राण घातके त्यागका भी फल 'प्राण-संयम' मिल जाता है। अर्थात् इन्द्रियोंके योग्य स्थावर कायकी विदीर्ण कम करनेसे इन्द्रिय संयम भी होता है और प्राण संयम भी पलता है। परन्तु प्राण संयम पालनेका अधिकारी वह गृहस्थ नहीं है जिसने इन्द्रिय संयम नहीं समझा या नहीं किया। इसीलिए गृहस्थोंको पहले इन्द्रिय संयम पालनेका उपदेश है। प्राण संयम वही पाल सकता है जो आरम्भ त्यागी है और आरम्भ त्यागी वह हो सकता है जो गृह त्यागी है। इसलिए प्राण संयम पालन करना मुनियोंका धर्म है, गृहस्थोंका नहीं। गृहस्थ लोग त्रस जीवोंकी केवल संकल्पी हिंसाके त्यागी हैं। किन्तु आरम्भी, उद्योगी और विरोधी हिंसाके त्यागी नहीं है। परन्तु मुनिजन त्रस और स्थावर जीवोंकी हिंसाके सर्वथा त्यागी हैं इसलिये वे त्रस व स्थावर जीवोंकी हिंसा नहीं करनेके पूर्ण पात्र हैं, उन्हींसे यह यथाविधि पलता भी है। पर जो गृहस्थ प्राण संयमको सम्मुख रखकर हरि आदिका त्याग किया करते हैं वे इन्द्रिय संयमको न समझ सकनेके कारण न तो गृहस्थ धर्मका ही पालन करते हैं और न मुनि धर्मका। इसलिए इस द्विविधाको छोड़कर एक मार्ग पर चलना उचित है और वह मार्ग यही है अज्ञान चरित्रको छोड़कर श्रावक लोग सज्ञान गृहस्थ धर्मका पालन करें। जब गृहस्थ धर्ममें निपुण हो जायं और त्याग भाव बढ़ानेकी इच्छा हो तो मुनि धर्मको धारण करें; किन्तु फिर पीछे न हटें।

विविध विचार तरंग ।

(लेखक—मुनि परमान्द जैन)

१—सम्बोधन ।

जैन मारवाड़ी भाइयो, तुम्हारी जाति डूब रही है। तुम्हारी जातिसे मान मर्यादा उठ रही है। तुम्हारी जातिसे सम्प महाराज लाखों कोस दूर भाग रहे हैं। तुम्हारी जातिमें नाना प्रकारके अनर्थ जैसे कन्या-विक्रय, बालविवाह, वृद्धविवाह, बालहत्याएँ आदि होने लगे हैं। परन्तु दुःख है तुम अभी तक सोये हुए पड़े हो। तुम्हारे अन्दर जागृतताका अंश तक दिखाई नहीं देता। यह भविष्यत्में तुम्हारी जातिके लिए बहुत बुरा है। जल्दी उठो, और सम्हलो। तुम्हारी जातिके लिए तुम कुछ करो। अन्यथा यह जाति संसारसे उठ जायगी अर्थात् इसका नामो निशान भी न रहेगा। अये मारवाडी जातिके वीर सपूतो! शीघ्र जागृत होकर अपनी जातिका उद्धार करनेमें लगो। देखो, आज संसारकी तमाम जातियाँ जाग उठी हैं। सब अपने २ धर्म और जात्युन्नतिके लिए कुछ न कुछ कर ही रही हैं। परन्तु जब हम तुम्हारी ओर दृष्टि उठाकर देखते हैं तो साफ अन्धकार ही नजर पड़ता है। तुम प्रतिदिन विद्या, आचार, श्रद्धा, भक्ति हीन होते जा रहे हो, यह कम दुखकी बात नहीं है।

विचार करो कि कुछ वर्षों पहले इस जातिका सूर्य किस प्रकार तेज था? और आज क्या दशा है? कैसे विद्वान, धनाढ्य, स्वधर्म परायण लोग इस जातिमें हो चुके हैं? यह जाति पूर्वकालमें राजमान्य थी। और आज यह विद्या, धन, प्रतिष्ठा, आचार विचारसे पतित हो रही है। इस लिए इसे बचानेका प्रयत्न करना चाहिए।

तुम्हारी जातिके नाश होनेके मुख्य कारण यह है:— अपने धर्म अनुसार नहीं चलना, परस्पर ईर्षा और द्वेष रखना, अपने गरीब जाति बांधवोंको सहायता न देना, जातिकी कुरीतियोंको नहीं रोकना, अपनी सन्ता-

नको अच्छी तरह नहीं पढ़ाना, औसर मौसर आदि शास्त्र विरुद्ध कामोंमें दो घड़ीकी कीर्तिके लिए हजारों रुपयोंका धुआं करना, और उस समय कोई तुम्हारी जातिकी भलाईके लिए कुछ मँगने आवे तो 'नन्ना' कहना-हाथमें तंगी बताना, लड़नेको तैयार होना, बस यही तुम्हारी जातिके नाश होनेके कारण है, इस लिए इन्हें त्याग दो।

२—"अब हम क्या करें?"

ऐसा वाक्य आज हमारे समाज बान्धवोंके मुखसे निकलता है, इसका क्या कारण है, वह समझमें नहीं आता। किसी भी मुहल्ले अथवा गलीमें जाइये, चाहे जिस श्रीमन्त क्रोडाधीश या लक्षाधीशके पास जाकर वातचीत कीजिए, चाहे जिस सोसायटीमें बैठकर जात्युन्नति वा देशोन्नति अथवा कुरीतिसे संशोधनकी चर्चा छेड़िये तो कई तरहके 'हां' हूं, होनेके पश्चात् यही वाक्य सुनाई देगा "कि . हम क्या करें?"

प्यारे भाईयो, ऐसा वाक्य निकलते बड़ी भारी आपत्तिकी सूचना होती है, इसलिये ऐसी दीनता भरा हुआ महान् आपत्ति सूचक वाक्य अपने समाज भ्राताओंके मुंहसे निकलते सुन किस वीरकी छाती नहीं फटेगी? ऐसा कौन पाषाण हृदय होगा जिसका हृदय इस वाक्यके यथार्थ तत्वको जाननेके लिये उत्सुक न हो? भाइयों, आइए एकताके कालीन पर बैठे और शान्त चित्त हो मस्तक पर हाथ फेरते हुए विचारके आइनेमें देखें तो थोड़ी ही देरमें ठीक ज्ञात हो जायगा कि यह वाक्य आपत्तिका सुचक वा हृदय विदारक नहीं वरन् गंभीर 'विचारोंसे भरा हुआ जागृतिका सुचक है। मुसाफिर लोग रातकी गाढ़ी नींदमें सोते हुए प्रातःकाल उठते ही "गाड़ी" के आनेका समय अति निकट आया जान घबड़ा कह बैठते हैं कि "अब हम क्या करें?"

यह मुसाफिरोंका घबडाना, घबड़ाना नहीं बल्कि शीघ्रतासे गाड़ीमें पहुंचनेका सूचक है। बहुत समयकी नींदसे अब थोडी २ आंखे खुलने

लगी हैं, अब इन्हें दीख पड़ा है कि समयने रंग बदला है, हवाने पलटा खाया है, जो कल गुरु भावसे पूजित था वह अब शिष्य कहलानेके भी योग्य नहीं रहा। इसी फेर बदलके युद्धमें कई असभ्य जातियाँ सभ्य हो गईं और सभ्य असभ्य कहलाने लगीं। अनेकशः देश, समाज और जातियाँ जो कल अधोगतिको प्राप्त थीं वे ही आज उन्नतिके शिखर पर पहुंचती हुई दृष्टिगत हो रही हैं। हम पीछेसे मुँह बिलखाते और हाथ पर हाथ धरे शोक सागरमें गोते लगा रो रहे हैं। यही स्वर हृदयसे निकलता है कि हाय! हमारी उन्नतिका मार्ग इतना बिकट कैसे हो गया? यह अविद्याका पहाड हमारे उन्नति पथमें आकर क्यों अड़ा? कुरीतियोंके कांटे किसने फैला दिये? हाय! अब हम उन्नतिके मार्गमें कैसे बढ़े? विद्याके साधनका कुदाल हमारे हाथमें नहीं है जिससे अविद्याके पहाडको खोदकर समुद्रमें फेंकदें। विवेकरूप झाडू हमारे पास ही नहीं फटकती जिसके द्वारा इन कुरीतियोंके कांटोंको झाडकर नवीन प्रकाशके अग्निकुंडमें आहुति देकर स्वाहा करदें। अब हम लोगोंको उन्नत दशामें पहुंचनेका कोई मार्ग दृष्टिमें नहीं आता। बस अंतमें इसी बिचारमें अधीर होकर कह बैठते हैं कि "अब हम क्या करें?"

प्रियवरों, इतने अधीर मत हो। एकताके कमरबन्दसे कमर बाँध कर धीरता वीरता और गंभीरता रूपी शस्त्रोंसे सुसज्जित होकर विचारके मैदानमें उतर पडो और उक्त शस्त्रोंकेद्वारा विचार क्षेत्रको खूब चमका कर देखो कि हमें उन्नति प्रथमें अग्रसर होनेके लिए किन २ शत्रुओंका सामना करना पड़ेगा। फिर क्या देर लगती है, झट ही ज्ञात होजायगा कि सबसे पहले इस राक्षस स्वरूप महा भयंकर, अकाल मृत्यु कारक, बल बुद्धि और वीर्यका नाशक, व्यभिचार वृद्धिकारक, धनधर्म्महारक दुष्ट बालविवाह ही ने हमारा सत्यानाश करडाला है। यही समस्त कुप्रथाओंका पूज्य बाल विवाह हमारे उन्नति पथका बाधक है। जबतक हा

इन कुरीतियोंके प्रधानरूप बालविवाहको मान, मर्यादा और गौरवता रूपी शस्त्रोंद्वारा अपने समाजसे निर्मूल न करडालेंगे तब तक उन्नति पथमें अग्रसर होनेको समर्थ न होसकेंगे।

पाठक वृन्द, कहां तक कहें? कहनेसे गात्र कम्पायमान होता है, लेखिनी करसे छूट २ कर पृथ्वीकी शरण लेती है, रोमाञ्च हो आते हैं। पर क्या किया जाय? कर्तव्य वश कहना ही पड़ता है। आज हमारे समाज और देशमें लाखों दुधमुंही बालिकायें जिनके होठोंका दूध भी अभी सूखने नहीं पाया है, वे इस दुष्टके कुठारा-घा-तसे संसार सुखसे वंचित रहकर कठिन वैधव्यके रौरव नरकमें बिलबिला रही हैं। क्या इनका बिलबिलाना सुन आपकी छाती नहीं फटती? क्या इनका आर्त नाद देश और समाजको रसातलको पहुंचानेका कारण नहीं है? क्या अपने देशस्थ दुःखित विधवाओंकी गणना पर कभी विचार किया है? मर्दुम शुमारीकी रिपोर्ट सन् १९११ इस्वीके देखनेसे पता लगता है कि भारतमें २६४२१२६२ (दो करोड़ चौसठ लाख इकीस हजार दो सौ बासठ) विधवाएँ वैधव्य दुःखसे दुःखित हैं। हा! इतनी बड़ी संख्या देख कर किसको दुःख न होगा?

विचार कीजिये! जिस आनन्दमय भारतमें आर्य ललनायें बड़े आनन्दसे गान्धर्व जनकर देशका मंगल कर रही थीं आज उसी स्थानमें वैधव्यके दुःखसे दुःखित होकर करुणा रुदन कर रही है। क्या अबलाओंका यह करुणाजनक रोना आपके लिये मंगलकारी हो सकता है? क्या इन बिचारी अबलाओंके घोर कष्ट भोगनेका मूल कारण बाल विवाह नहीं है? हाय! इसी नीच बाल विवाहने इस संसारके बगीचेमें हमारे हजारों भावी सन्तान रूपी पुष्पोंको खिलनेसे पहले ही मुरझाकर धराशायी कर दिया। यदि कोई भाग्यवश खिल भी गया तो उसे अनेक रोग रूपी कीड़ोंने आकर घेर लिया जिससे वह अपनी सौरभ (सुगन्ध) संसारमें प्रसार करनेको समर्थ न होने पाया और तुरन्त ही जीवन यात्राको समा-

ष्ट कर परलोक सिधार गया। इसी बाल विवाहके कारण हमारे भाईयोंकी समस्त शारीरिक, मानसिक, और आत्मिक शक्तियाँ नष्ट हो गई हैं। इसी कारण लोगोंको, कोसभर मार्ग चलना महाभारतकी लडाई, नीचेसे छतपर जाना पहाड़की चढाई जान पडने लगी। इसी बाल विवाहके कारण हम लोग अत्यन्त निर्बल, निस्तेज, प्रदर और प्रमेहकी बहुतायत, याददास्त और कम अकलीकी शिकायत, आंखोंके अन्धे, चश्मोंके खरीददार, निरन्तर रोगी, दवाइयोंकी भरमार, चुपड़ी रोटी खावें तो खट्टी डकार, पावभर दूध पीवें तो दस्तोंका आज़ार, और किसीको बादीके विकार आदि व्याधियोंसे ग्रसित हो रहे हैं। सारांश यह कि अब हम कहने मात्रके पुरुष रह गये। हमारे मस्तिष्कोंमें वह शक्ति नहीं रही जिसके द्वारा नवीन तत्वों और आविष्कारोंको सोच सकें। इतना ही नहीं वरन् अब हम केवल अजायबघरमें सजाये जानेके सिवा और किसी योग्य नहीं रहें। * हमको महा पवित्र ब्रह्मचर्याश्रमके पथमें बढ़ते हुओंको उस व्यभिचार रूपी कुंभीपाक नरकमें डालनेवाला यह बाल विवाह ही है। यही कारण है कि हम उपर्युक्त समस्त प्रश्नों और वाक्योंको समझते हुए भी कार्यक्षेत्रमें खडे होनेके समय कह बैठते हैं कि "अब हम क्या करें?"

एक बार फिर मैं बालविवाहके उपासकोंके प्रति निवेदन करता हूं और साहस पूर्वक कहता हूं कि यदि आप अपने बच्चेका कल्याण और देश तथा समाजका हित चाहते हैं और मनुष्य जन्मको सफल करनेकी इच्छा है तो उस हत्यारी बालविवाहकी कुप्रथा रूपी कठिन कृपाणको हाथसे फेंक कर अपने बच्चोंपर दया कीजिये। बच्चे ऊँची अंगुलियें करके करुण स्वरसे आपकी सेवामें प्रार्थी हैं:—

"प्यारे पिताओ! हमारे रक्षको!! वृद्ध पञ्चों!!! यदि आप देश समाजके सच्चे हितैषी हैं और हमारा कल्याण चाहते हैं तो इस हत्यारी बालविवाहकी कुप्रथा रूपी खड्गसे हमारी गर्दन न उड़ाइये। हम आपके बच्चे हैं। हमपर आप दया कीजिये। राक्षस राक्षसी भी अपने बच्चोंका अहित नहीं चाहती, फिर आपने मनुष्य तन धारण किया है। पशुपक्षी भी अपने बच्चोंको प्यार करते हैं। पर आप मनुष्य होकर भी हमारा बालविवाह, नहीं! नहीं!! बाल-बलिदान करनेमें तनिक भी नहीं हिचकते? लज्जा, खेद और दुःखका स्थान है। अब आप हमारी करुणपुकार पर कान लगाइये और प्रथम हमें ब्रह्मचर्याश्रम पथका अवलम्बन करवाकर बीस वर्षकी आयुमें विद्वान् बनाकर हमारा योग्य विवाह कीजिये। कन्याओंका भी छोटी उमरमें विवाह करना शास्त्रसम्मत नहीं है। आपके "अष्ट वर्षा भवेद्गौरी" वाले श्लोकका भी अर्थ यही निकालता है कि—आठ वर्षकी बालिका "गौरी" स्वरूपा और नौ वर्षकी "रोहिणी"के तुल्य और दश वर्षकी "कन्या" कहलानेके योग्य होती है। इससे सिद्ध होता है कि—आठ वर्षसे पहले तो क्या वरन् "गौरी" और रोहिणी स्वरूप बालिकाका विवाहा करना भी धर्मशास्त्रोंके सर्वथा विरुद्ध है। इसलिए कमसे कम ११—१२ वर्षके भीतरकी लिखी पढ़ी कन्या और ब्रह्मचर्य्यसे रहे हुये कमसे कम बीस वर्षके विद्वान् बालकका परस्पर योग्य विवाह करनेकी सुप्रथा प्रचलित कीजिये। एक बात और आपकी सेवामें निवेदनीय है कि, आप चाहते हैं उन्नति, पर आपकी उन्नति हमारी उन्नतिपर ही निर्भर है। जब तक हमारे लिए समुचित रूपसे विचार न करेंगे तो आपकी उन्नति होना कठिन ही नहीं, वरन् असम्भव है।

पिताओ! क्याही खूब हो कि हमारी पुकारको आधार देकर अपने हिताहितका विचार करते हुए उपर्युक्त कथित दुःखपर ध्यान धर

कर लोग सुप्रथाओंके प्रचारके लिये तय्यार हो जायँ । परन्तु पूज्यवरो ! कायरतासे भरे हुए ऐसे सूखे उत्तर द्वारा हमारा उत्साह भंग न कीजिये कि " अब हम क्या करें ? "

३. वृद्धविवाह ।

मारवाड़ी समाजको यदि ज्ञानका चश्मा लगाकर देखा जाय तो उसमें इस तरहकी कुरीतियाँ नजर आती हैं जिसे देख दुःख, सन्ताप और दया आये विना नहीं रहता । आजकल मारवाड़ी समाजमें वृद्ध-विवाह खूब तरक्कीपर है । यह सभी जानते हैं कि वृद्धविवाह समाजको नाश करनेवाला हलाहल जहर है । ठीक हमारे आँखोंके सामने आज अनर्थ हो रहा है कि हजारों ही बूढ़े लोग अबला विचारियोंको कुएमें डाल रहे हैं, नहीं ! नहीं !! उन्होंका जीवन मिट्टीमें मिला रहे हैं । धनके लालचसे अपनी कन्याको बूढ़के साथ ब्याह देनेवाले और उसके जन्मको खाक करनेवाले हमें आजकल बहुत ही दीखते हैं, वे धनके लालचमें अन्धे हो जाते हैं । उन्होंके ऊपर धनका भूत सवार हो जाता है, इससे उन्हें तो रात दिन उठते बैठते, सोते जागते (स्वप्न) में धनके सिवा कुछ नहीं दिखता । हाय धन ! हाय धन पुकारते २ ! अपनी कन्याको बूढ़से विवाह देते हैं । मातापिताका कर्तव्य तो यह है कि वे यह देखें कि वर (लड़का) पढ़ा हो, गुणी हो, चतुर हो और स्वस्थ्य हो । परन्तु दुःखके साथ लिखना पड़ता है कि इस ओर कोई भी ध्यान नहीं देता । अरे कन्याको बेचनेवाले कसाइयो ! अरे कन्याकी दलाली करनेवाले डाकुओ ! विचारी छोटी२ अबलाओंके जीवनको भ्रष्ट करनेवाले अन्याइयो ! अरे ऐसे जोड़ मिलानेवाले दुष्टो ! तुम अन्धे क्यों हो रहे हो । अब भी कुछ सोचो और इस कसाई व्यापारको शीघ्र तिलां-जलि देकर समाजसे निकालनेका प्रयत्न करो । इसी लिये मारवाड़ी समाजको कोई भी ऊंची दृष्टिसे नहीं देखता है । हजारों अबलाएँ ऐसे जोड़ मिलानेवाले दलालोंको रो रही हैं और ऊपरको हाथ करके

पुकारती है कि क्या इन दुष्टोंका कभी भला होगा? नहीं नहीं कभी नहीं। लोग इस विवाहको वृद्धविवाह कहते हैं। यह उन्होंकी भूल है, इस विवाहको वृद्ध नहीं कहकर अबला वृद्धविवाह कहना चाहिए, क्योंकि बूढ़ेके साथमें छोटीसी कन्या व्याह देना क्या वृद्धविवाह है? नहीं पर हाँ "अबला वृद्धविवाह है। प्यारे मारवाड़ी भाइयोंको अवश्य इस तरफ ध्यान देना चाहिए जिससे इस जहरकी जड़ नाश हो जाय, तभी अपना समाज ऊँचा आयगा और अपने समाजका भला होगा, समाजका भला होनेसे अवश्य व्यक्ति मात्रको लाभ मिलेगा।



सम्पादकीय वक्तव्य।

साधु और मुनियो, समाज-सेवापर ध्यान दो!

साधु, मुनि महात्माओ, या तो जंगलमें जा एकांतवास करके समाधिष्ट हो जाओ या ग्राम ग्राम फिरकर लोगोंमें एकता और विद्या प्रचारकी आवश्यकता बतलाओ और उसका स्वयं तन मनसे प्रचार करो। यदि आप देश, जाति और समाजका लोकप्रिय कार्य करेंगे तथा लोगोंको सिखाने में अग्रसर रहेंगे तो आपके भक्तोंकी संख्या प्रतिदिन बढ़ती जायगी। फिर आप जो चाहे सो देश और समाज हितका कार्य उनसे करा लेंगे। मुनियो, सबसे पहले भारतको ऐसा शिक्षित बना दो कि किसीको यह कहनेका अवसर न मिले कि मुझे विद्याभ्यास करना है। तभी आपका यह वेष, यह त्याग, यह कष्ट आदरसे देखा जायगा। संसार भी तुम्हारे बलको, तुम्हारे महत्वको जान जायगा। तभी तुम्हारा जीवन और त्याग सार्थक होगा। तभी तुम परमात्मत्व पदको पा सकोगे।

जिसमें 'सेवा बुद्धि' न हो वह साधु ही नहीं। वह भी साधु नहीं जो जितना अन्न खावे उतना लोकहितमें भाग न ले। वह साधु नहीं, जो केवल स्वहित चिन्तनामें ही रहे। साधु वही है, जो या तो एकान्तमें धर्म

ध्यानमें मस्त रहे या लोकसेवाकी धुनमें मस्त रहे। इसके सिवा दूसरे ढंगसे रहने वाले साधु साधु नहीं शैतान हैं, समाजके लुटेरे हैं, धूर्त हैं; जो धर्मके बहाने दिन दहाड़े समाजके खूनसे अपनी क्षुधा शांत करते हैं।

साधुओ, अपनी झोली या कमंडल संभालो। विचार करो तुम्हारी झोली सत्यके लिये है या असत्यके लिए? तुम्हारी झोली दूसरेका पेट भरेगी या तुम्हारे ही पेटके भरनेके लिए है। यदि तुम्हारी झोली सत्यके लिए है, तो फिर क्या देखते हो, उसे संभालो और अपने देशके बालकोंके लिए भीख मांगना प्रारम्भ कर दो। समाजहितके लिए मांगना, पाप नहीं है। इसके लिए मांगनेमें शर्म न करनी चाहिए। अपने बालकोंके लिए पुस्तकें लिखनेमें, छपवानेमें पाप नहीं है। लज्जाको त्याग कर समाज-क्षेत्रमें कूँद पड़ो, और व्याखानों द्वारा, पुस्तकों द्वारा, समाजको उन्नत दशामें लाओ। इन कामोंके करनेमें पाप है, इन ढोंगोंको छोड़ो और अपने बालकोंका—हमारा सुधार करो। आज समाजमें अनेक कुरीतियें फैल रही हैं। भाई, भाईकी गर्दन काटनेको तैयार हैं। बाप अपनी लड़कीका सुहाग खो रहा है। ससुर अपनी विधवा पौत्र-वधूके सामने उसे जुलाते हुए अपना व्याह करता है। दश वर्षीय बेचारी बाल विधवा संसारके सुखोंको तिलांजलि दिये समाजको कोस रही है। कई विधवायें समाज भयसे भ्रूणहत्या आदि पापोंको कर रही हैं। कई धर्मकी ढपली बजाने वाले दिन दहाड़े बालिकाओंकी हत्या कर रहे हैं। कई बुड्ढे खूसट माला जपते हुए अपनी काम—पिपासाको तृप्त करनेके लिए एक बालिकाको विधवा बनानेका ढोंग रच रहे हैं। साधुओ, मुनियो, देखो, आपके समाजकी कैसी बुरी दशा है। उसके हितके लिए, उसके सुधारके लिए अपनी झोली संभालो। समाजकी ऐसी दशा देखते हुए भी यदि तुम्हारा दिल समाजसुधारके लिये तैयार न हो तो तुम्हारे स्वार्थी होनेमें क्या सन्देह है? समाज और धर्मकी ऐसी बुरी दशा

देखते हुए तुम्हें दुःख नहीं होता ? लानत है, पेट भरने पर ! धिक्कार है सुख और आरामपर। महात्माओ, बस या तो इस त्यागका सदुपयोग करो, नहीं तो यहांसे चले जाओ और जंगलमें ध्यानारूढ़ हो जाओ। यहां रह कर अपने त्यागका प्रकाश दिखाओ जिससे—संसार सबसे प्रथम हम—तुम्हारे पैरोंकी धूल माथे चढ़ावें। महात्माओ ! तुम्हारे वेषका प्रभाव हमारे धनिकोंपर बहुत पड़ता है। यही कारण है कि चाहे जिस कामके लिए लाखों रुपये आपके कहनेसे वे खर्च कर देते हैं। पशुरक्षा आदि दयाके कामोंमें सैकड़ों धनिक भ्राता आपके इशारेसे करोड़ों रुपया व्यय कर देते हैं यह सब आपके मुनिवेषसे ही होता है। फिर क्या समाजमें निर्बोध बालक—बालिकाओं और विधवाओंके ऊपर तुम्हें दया नहीं आती ? क्या पशुरक्षा समाजरक्षासे अधिक दया धर्म है ? महात्माओ, इस ओर ध्यानको और अपने चारित्रबलसे समाजका उत्थान करो, सेवाबुद्धिके महत्वसे परिचित होओ और समाज क्षेत्रमें कूद पड़ो ? समाजको बचाओ, तुम्हारा कई लाखों इन्द्रिय समाज घायल हो रहा है, पंगु हो गया है, उसकी रक्षा करो, तब ही भगवान महावीरके अनुयायी समझे जाओगे। "अहिंसा धर्म" की पालना तब ही होगी। कोरे दिखाऊ आडम्बरी "अहिंसा धर्म" की रागिनी अलापनेसे काम न चलेगा।

तुम्हारे समाजमें एक एक करोड़ रुपया देनेवाले पुरुष मौजूद हैं। फिर यदि जागो तो करोड़ों रुपया समाजहितके लिए इकट्ठा हो सकता है। तुम उस प्रकार सारे देशका उद्धार कर सकते हो। इसीलिए महात्माओ, चेतो, वीर बनो, सच्चे 'साधु' बनो और समाजोद्धारके लिए झोली बांधो।

वर्तमान धर्मप्रचार।

धर्मका उद्देश्य है कि सर्वत्र शान्तिका शासन हो लोग कषाय, परिग्रह और हटका त्याग करें, सब जीवोंको कल्याणका मार्ग बताना

जाय। जीवमात्र प्रेमपूर्वक एक्य भावसे वास करे। पारस्परिक सहानुभूति बढ़े। लोग सत्य, धर्मनिष्ठ, शील और कर्तव्यवान बनें। पर वर्तमान धर्मप्रचारकी प्रणालीको देखकर यही कहना पड़ता है कि यह धर्मके बहाने लोगोंमें कषाय बढ़ाते हैं। आज भारतमें सैकड़ों धर्म हैं और हज़ारों जातियाँ हैं। तब क्या यही धर्मप्रचारका उद्देश्य है कि वे सब आपसमें खूब शास्त्रार्थ करें—आपसमें खूब लड़ें और एक-दूसरे पर अपनी महत्ता सिद्ध करें। वर्तमान धर्मप्रचारकी प्रणाली बिलकुल इसीसे मिलती–जुलती है। आज हम आपसमें शास्त्रार्थ करके शान्ति भंग करते हैं, अपने धर्मकी महत्ता सिद्ध करके आपसमें, कषाय बढ़ाते हैं। रात दिन यही सुनाई पड़ता है कि अमुक स्थानपर आर्यसमाजियों और सनातनियों अथवा सनातनियों और जैनियोंमें शास्त्रार्थ हुआ। जैनी चिल्लाते हैं "हमने मात किया," आर्यसमाजी अपनी ढपली बजाते हैं हमने हराया" और सनातनी अपनी रागनिएं अलापते हैं "हमने विजयका सेहरा बांधा। वाह रे भारतके धर्म नेताओ! क्या आपके पवित्र धर्मोंका यही उद्देश्य है? क्या आप इसी उद्देश्यसे अपने धर्मको फैला सकते हैं? क्या आप इस प्रकार अपने धर्ममें लोगोंको मिलाकर अपना धर्म बढ़ाना चाहते हैं? क्या ऐसे बनाये हुए धर्म उपासकोंसे आप अपने समाजका कल्याण करना चाहते हैं? कभी नहीं। ऐसा कभी नहीं हो सकता। आज सौ वर्षसे भारतके सब धर्मनेताओंने खूब खंडन-मंडनके पैंतरे दिखलाये; खूब शास्त्रार्थ किये और खूब उपदेश दिया; पर आज तक क्या फल हुआ, वह सब सामने ही नजर आता है। कोई भी धर्म आज इस प्रणालीसे समृद्धशाली नहीं हुआ। कोई भी धर्म आज तक ऐसा न बना जिसे किसी प्रकारकी शिकायत न हो। सौ वर्षके घोर युद्ध होनेपर भी धर्मकी वही दशा प्रणाली बनी है। तब क्या हमारा यही कर्तव्य है कि हम इसी धर्मप्रचार द्वारा खूब लड़ें और उस लड़ाईका लाभ कोई दूसरे उठावें? धर्म गुरुओ! क्या धर्मका उद्देश्य परस्परमें

वैमनस्य और फूट फैलानेका है ? यदि नहीं तो इस पथका यह त्याग कीजिए और अपने धर्मका सच्चा तथा पवित्र उपदेश दीजिए। सबसे प्रेम बढ़े, सब लोग शांतिपूर्वक रहें, बस यही निरन्तर उपदेश करते रहिए। हम सब भारतवासी एक हैं—परस्पर भाई हैं—सब धर्म भ्राताओंका एक ही लक्ष्य है, उसी मंत्रका उच्चारण करते रहिए। चाहे किसी धर्मका अनुयायी हो उससे गले गले मिलना चाहिए। सब धर्मोंका एक ही अर्थ है, उसीका प्रचार करना चाहिए। आपसी शास्त्रार्थोंसे अथवा स्वधर्माभिमान उपदेशोंसे कषायको न बढ़ाइए; कलहसे शांति भंग न कीजिए और आपसी कट्टरपन तथा हठको त्याग दीजिए। किसी भी धर्मका यह उद्देश्य नहीं है और न किसी धर्मके संस्थापकोंकी ऐसी आज्ञा है। फिर इस प्रणालीका त्याग कर दीजिए। स्वराज्यकी आकांक्षा रखनेवाले भारतके धर्मनेताओंको इस नीच प्रणालीका अनुसरण न करना चाहिए।

उन्नतिका प्रवाह।

चारों ओर उन्नतिका शब्द सुनाई पड़ रहा है। सामाजिक, धार्मिक, जातीय और राजनैतिक आदि प्रत्येक क्षेत्रमें यही पुकार मची हुई है कि '**आगे बढ़े चलो**'। देशके उत्थानके लिए ये सब शुभ चिन्ह हैं। पर वस्तविक सुधार और उन्नति दूसरी बात, और अनुकरण करना दूसरी। आज हममें उन्नति और सुधारका जो जोश दिखाई पड़ता है, वह अनुकरण प्रथाका जोश है, वास्तविक नहीं। सुधार और उन्नतिका वर्तमान आन्दोलन पाश्चिमीय अनुकरणके सिवा और कुछ नहीं है। हमारा प्राचीन आदर्श, हमारा प्राचीन गौरव और हमारे प्राचीन कार्य कैसे थे, उनके ऊपर दृष्टि डालनेकी इस उन्नतिकी आँधीमें किसीको अवकाश नहीं है। हमारे यहाँके सब रीति-रिवाज़ बुरे हैं, हमारे यहाँ बहुतसी बातें योंही प्रचलित हो गई क्या ये बातें कहना सत्य है? विदेशीय

बातोंपर बिना आलोचनात्मक दृष्टि डाले मोहित हो जाना क्या ठीक है? जब कोई सुधारक विदेशीय रीति-रिवाजोंकी हानियाँ बतलाने लगता है, तब वह उनसे होनेवाले लाभ और महत्वको भूल जाता है। जो कुछ हमारा है वही ठीक है और जो कुछ बाहरका है वह सब बुरा है अथवा जो कुछ नया है वही ठीक है और जो कुछ पुराना है वह सब बुरा है, यह बात भी नहीं है। सामाजिक बातें ऐसी हैं कि उनपर जितनी ही गंभीर दृष्टि डाली जाती है, उतना ही अधिक रहस्य प्रगट होता है। सामाजिक नियम अचल हैं, इनमें परिवर्तनकी गुंजायश नहीं, यह कहना विचारसे खाली है। समाजका संगठन हमेशा देश—कालकी स्थितिके अनुसार किया जाता है। साथ ही भविष्यतके होनेवाले फलपर भी ध्यान रक्खा जाता है। इसी अनुसार उन्नतिका प्रवाह होना चाहिए। नहीं तो उन्नतिके बदले अवनति होनेकी संभावना है। सुधार होना चाहिए पर अनुकरण तथा दिखाऊ नहीं।

भद्रबाहु संहिता।

जैनसमाजमें इस ग्रंथका बहुत आदर है। यह ग्रंथ जैनधर्मका श्रेष्ठ ग्रंथ समझा जाता है। पर अब उसकी पोल खुल गई है। देवबन्दके मुख्तार प्रसिद्ध समालोचक बाबू जुगलकिशोरजीने इसकी परीक्षा जैनहितैषी द्वारा प्रकाशित कराई है। परीक्षासे यह ग्रंथ बिलकुल जाली साबित हुआ है। इसके लेखकने धर्मके बहाने जैनधर्मपर कैसी छुरी चलाई है, उसका हाल इसकी समालोचना पढ़नेसे ज्ञात होता है। पुराने लकीरके फकीर भी अब इसको जाली मान गये हैं। कई स्थानोंपर इसका स्वाध्याय आदि बन्द हो गया है। न मालूम जैनधर्मके नामसे ऐसे कितने ही जाली लेखकोंने जैन साहित्य में क्या क्या परिवर्तन किये होंगे! जैनियोंको सावधान होजाना चाहिए और बिना सत्यकी कसौटीपर कसे किसी बातको न माननी चाहिए। आज जैनसाहित्यमें ऐसे कई

मुनि



एक लोभी।

'जैनविजय' प्रेस–सूरत

मुनि



सरस्वती देवी ।

जैनविजय' प्रेस-सूरत

ग्रंथ हैं जो इसी संहिताकी भांति जाली मालूम पड़ते हैं। जैनियोंको अब सावधान हो जाना चाहिए और इस भद्रबाहुसंहिताको भूल कर भी जैनग्रंथ न मानना चाहिए और न उसके लेखानुसार ही चलना चाहिए। इस ग्रंथकी विस्तृत परीक्षा श्रीयुत नाथूराम प्रेमी जैनग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, हीराबाग, गिरगांव, बम्बईसे मिल सकती है। प्रत्येक जैन और अजैनको इसे अवश्य पढ़ना चाहिए और जाली लेखकोंकी चोरी और सीनाजोरीकी मजा चखना चाहिए।

सच्चे दानवीर वाडीलाल मोतीलालके बोर्डिंग हाउस।

जो आया है वह जायगा, संसारका यह नियम है। परन्तु वही जीवित कहा जा सकता है, जिसने देशके लिए और समाजके लिए अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया हो। श्रीयुत वाडीलाल भी इन्हीं महापुरुषोंमेंसे हैं। आपका परिचय और चित्र अन्यत्र छपा है, पाठक अवश्य अवलोकन करें। आप जन्मसे ही समाज और देशसेवामें लिप्त हैं। आप इस समय भी 'जैनहितेच्छु' नामक पत्र निकालते हैं, जिसमें प्रति वर्ष १०००) का घाटा अपनी जेबसे भरते हैं। आपके लेखोंमें विजलीकी शक्ति है। जैन संसारमें 'जैनहितेच्छु' ही एक पत्र कहा जा सकता है। आप गुजराती होते भी मातृभाषा हिन्दीके सच्चे प्रेमी हैं। अभी आपने झालरापाटनमें हिन्दी साहित्य समितिकी भी स्थापना की है जिसमें २०००) रुपया दिया है। मांग्रोल जैनसभाको कई हजारका दान देकर स्थायी बना दिया है। अब आपने ४००००) रुपयेकी लागतसे बम्बईमें एक बोर्डिंग हाउस खोल दिया है। जिसमें प्रत्येक जैन रह सकता है। आपकी उत्कट इच्छा है कि सब जैनी एक हो जायं। ऐक्यताके आप पक्के पक्षपाती हैं। दूसरा बोर्डिंग हाउस अहमदाबादमें भी आपने खोल दिया है। अभी तक इनकी जैन संसारमें कमी थी, वह पूरी हो गई। बम्बईके बोर्डिंगको श्रीमान् झालावाड़ नरेशने अपने

कर-कमलोंसे खोला है । मिस्टर पोलक, महात्मा गांधी आदि प्रसिद्ध २ गण्य मान्य पुरुष उस समय उपस्थित थे । तीन वर्षसे आपने एक दुकान खोली थी, उसके द्वारा आपको जो लाभ हुआ वह यों दान कर दिया । रहनेको मकान भी नहीं है, पर इसकी परवा न करते अपना सब धन समाजके लिए अर्पण कर दिया । धन्य है ! ऐसे पुरुषोंके जीवनका ही महत्व है ! जो खुद भूखा रहकर दूसरोंको खिलावे, खुद कंगाली भुगत कर दूसरोंके लिये आराम पहुँचावें, ऐसे महात्माको कौन पूज्य दृष्टिसे न देखेगा ? इसको कहते हैं **दान और देश प्रेम** । ये दोनों संस्थायें बड़ी आदर्श हुई हैं । बड़े बड़े लखपतियोंको इस दानको देखकर लज्जासे मुख झुका लेना चाहिए । इसमें रहनेवाले छात्रोंके लिए छात्रवृत्तियोंकी आवश्यक्ता है । आशा है, प्रत्येक मनुष्य इस कर्मवीर महात्माके कार्यमें छात्रवृत्तियें प्रदान कर सहायता पहुँचावेंगे ।

विज्ञप्ति ।

महावीर मुनिमंडल और मुनि पत्र ।

सम्पूर्ण स्थानकवासी जैनमुनिवरोंकी सेवामें विदित हो कि मुकाम बोदवड़ जिला पूर्व खानदेशमें '**श्री महावीर मुनिमंडल**' इस नामसे मुनियोंकी एक संस्था स्थापित कर दी गई है और उसकी प्रबन्ध-कारिणी कमेटीकी ओरसे यह '**मुनि**' नामका मासिकपत्र निकल रहा है।

इस संस्था और इस पत्रका मुख्य उद्देश " मुनियोंकी स्थिति सुधारना, मुनियोंका ज्ञान बल बढ़ाना, मुनियोंको समाज सेवा और समाज सुधारके लिए उत्साहित एवं प्रेरित करना और परस्परकी फूट मिटाना है। इसलिये सब छोटे बड़े मुनियोंसे प्रार्थना है कि मंडलकी ओरसे निकलनेवाले

'मुनि' पत्रको अवश्य मंगवाकर, पढते रहे+। और उक्त संस्थाके पदाधिकारी (सभा-सद आदि) होकर संस्थाको हर प्रकारकी सहायता, सम्मति सलाह वगैरह देते रहें। मुनि पत्रमें छपनेके लिए सर्व प्रकारके समाचार, मुनि सुधार सम्बंधी लेख भी भेजते रहें।

आज तक भारतवर्ष भरमें, मुनियोंकी एक भी संस्था न थी, इस अभावकी तो पूर्ति हो गई है। परन्तु अब मुनियोंको अपना ऐक्य बल बढ़ाकर समाज सेवा और समाज सुधारके कामोंको शीघ्र पूरा करके दिखा देना चाहिए, जिससे सर्व साधारण यह जान सकें, कि मुनियों द्वारा (समाज सेवाका) कितना अच्छा काम हो सकता है।

जिन २ मुनियोंके हृदयमें समाज सुधार या समाज सेवाकी भावना हो, वे शीघ्रशीघ्र-अपना नाम उक्त मंडलकी सभासद नामावलीमें लिखावें और हमें-सामाजिक प्रेमका पूरा परिचय दें। प्रत्येक मुनि इस बातका भी अभिमान धारण करें कि-**मंडल हमारा है और हम मंडलके हैं।** मित्रो ! **हम ही जब अपनी संस्थाको सम्मति सलाह सहायता न देंगे तो दूसरा कौन देगा? जिस प्रकार श्रावकोंकी श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कॉन्फरन्स है उसी प्रकार मुनियोंको अपना महावीर मुनिमंडल भी समझ लेना चाहिए।**

स्मरण रहे कि यह संस्था मुनियोंके हितके लिए ही खोली गई है। अतएव कोई मुनि इसे किसी प्रकारका ढोंग-सोंग या धोकेबाजी न समझें। इस संस्थाको उन्नतिपर लाना, इसे आदर्श बनाना इत्यादि सब काम तो मुनियोंका है एकका नहीं। यदि मुनियोंके हृदयोंमें धार्मिक प्रेम, जाति अभिमान और सुधारकी अभिलाषा हो तो अवश्य इस संस्थाके

+ मुनियोंको यह पत्र बिना मूल्य भेजा जाता है।

सहायक और संरक्षक बनकर काम करें। विशेष जानने और पत्रव्यवहारके लिए पता—

सेवक—

राजमल लखीचंद्र जामनेर निवासी

सभापति, प्रबन्धकारिणी कमेटी

महावीर मुनिमंडल,

पो० बोदवड (खानदेश)

समाचार संग्रह।

स्था० मुनि चातुर्मास।

जयपुर—पूज्य श्री १००८ श्री लालजी महाराज स्था० १३से बिराजमान है। परन्तु " **पढमं नाणं तओदया** " इस पर भी पूज्य श्रीको ध्यान देना चाहिए।

रामपुरा—श्रीमान् प्रसिद्धवक्ता-पूज्यपाद मुनि श्री चंपालालजी महाराज बिराजमान है।

आगरा—मुनिश्री खूबचंद्रजी महाराज विराजमान हैं। धर्मवृद्धि ठीक हो रही है।

पटियाला (पंजाब)—श्रीमान् पंडितरत्न गणीपदविभूषित मुनिश्री उदयचन्द्रजी महाराज अपनी शिष्य मंडली सह विराजमान हैं।

लुधियाना—(पंजाब)-यहांपर उपाध्यायजी महाराज श्री १००८ श्री आत्मारामजी महाराज स्था० ६ से विराजमान है। हमारी समाजमें आप मागधीके पूरे ज्ञाता हैं, एवं इस भाषाके अच्छे कवि भी हैं। संस्कृतमें भी आपकी अच्छी योग्यता है। किन्तु दुःखके साथ कहना पड़ता है कि आपके द्वारा चाहिए वैसा धर्मप्रचार और समाज

सुधारका कार्य नहीं होता । हां, यों तो आपने छोटे २ कई कार्य किये हैं । दो चार अच्छी २ पुस्तकें भी लिखी हैं । परन्तु आपने अपने पद योग्य **महत्वशाली कौनसा काम किया** ? यह हम जाननेके लिए इच्छुक हैं ।

पाली (मारवाड़)—में मुनिश्री जोरावरमलजी महाराज, **कुचेरा**में मुनिश्री नथमलजी महाराज, **पीपाडमें**—मुनिश्री राजमलजी महाराज स्थाने ३, **मजलमें**—पूज्यपाद श्री दयालचंदजी हेमराजजी महाराज, **गगराणामें** वयोवृद्ध महात्माश्री—सन्तोपचंदजी महाराज स्था० ३, **जोधपुरमें**—परम वैरागी मुनिश्री रतनचंदजी महराज, **अजमेरमें** प्रसिद्ध वक्ता—श्री चौथमलजी महाराज, **उमराणा** (नासिक)में—तपस्वी मुनिश्री—राजमलजी महाराज, **अमरावती** (वरार) में मुनिश्री—देवजी ऋपिजी महाराज स्था० ३, **पनवेल** (कुलावा) में जैन धर्मोपदेशक मुनिश्री लालचंद्रजी महाराज; **बंबई** (चिचपोकली) में महापुरुष श्री—हर्पचन्दजी महाराज, **सूरतमें**—पं० शतावधानी श्री रतनचंदजी, उत्तमचंदजी महाराज; **दिल्लीमें** प्रसिद्ध व्याख्याता मुनिवर्य श्री—देवीलालजी महाराज और ग्वालियरमें माधव मुनिजी महाराज विराजमान हैं । सर्वत्र धर्म वृद्धि, तपश्चर्या व्याख्यान श्रवण आदि २ कार्य हो रहे हैं ।

उल्लेखनीय कार्य ।

आगमकोप (प्राकृतकोप)—प्रकाशक द्वारा यह जानकर बड़ी खुशी हुई कि हमारे पूज्यवर आदरणीय पंडितरत्न शतावधानी मुनि महोदय श्री रतनचंदजी महाराज, आगमकोप बना रहे हैं । मालूम होता है—आपने यह कार्य अभी ही हाथमें लिया है । आशा है—आपके हाथसे यह कार्य अवश्य स्तुतिपात्र होगा । आपकी स्मरणशक्ति और विद्वत्ता अपूर्व है इससे कार्य सुन्दर ही होगा । स्थानकवासियोंका आज अहोभा-

ग्य है कि–एक मुनि आज **आगमकोष** बना रहे है! स्थानकवासियो, तुममें–आगमकोष क्यों? तुममें तो लड़ाई–झगड़ा–मूर्खता–परस्परकी निन्दाका **कोष** चाहिए। किन्तु यह सूर्य तुम्हारे अन्दर पहले पहल ही उगा है। इसलिए हर्ष मनाओ और इस ऐतिहासिक घटनाको सुवर्णाक्षरोंमें लिखो।

३५०००) का फण्ड–शहर अहमदाबादमें स्वर्गीय महा सती, विदुषी–आर्यिकाजी श्री दिवालीबाईके स्मारक फंडमें ३५०००) रुपये इकठे हुए हैं। सुनते हैं–इस रकमके व्याजसे एक अच्छी **मुनि पाठशाला** खुलेगी। बड़े आनंदकी बात है कि मुनियोंकी पाठशाला स्थापित हो, और मुनि उससे लाभ उठावें। परन्तु मुनियोंके भाग्यमें पाठशाला और पढ़ना कहां? यह तो हमने आज ही सुना है! अगर मुनियोंकी पाठशालाएँ स्थापित हो, और मुनि पढ़ने लग जाँय, समयानुकुल शास्त्रज्ञान–भाषाज्ञान प्राप्त करलें तो सब समाज सुधर न जाय,–समाजपरसे **मूर्खताका कलंक** दूर न हो जायँ। खैर, हम देखते हैं–३५०००) के फंडका उपयोग कैसा और कब होता है,



श्री महावीर मुनिमंडलकी प्रबन्धकारिणी कमेटीके सभासद महाशयोंके शुभ नाम।

१	श्रीमान्	राजमलजी लखीचंद्रजी साहब सभापति,	जामनेर,
२	,,	फतहराज शिवनाथजी,	बोदवड़
३	,,	संचालालजी उदेरामजी,	जामडी
४	,,	चांदमल हिन्दूमल	बोदवड़
५	,,	नथमल अमरचंद्र	,,
६	,,	हीरालाल ओटरमल	,,
७	,,	मूलतानचंद्र तनसुखदास	,,
८	,,	नवरतसिंह सौभागचंद्र	,,

९	श्रीमान्	चांदमल मिलापचंद्र	,,
१०	,,	ताराचंद चुन्नीलाल	,,
११	,,	लालचंद्र मोतीलाल	,,
१२	,,	कुन्दनमल हंसराज	मलकापुर
१३	,,	अगरचंद्र बूलाकीचंद्र	भंडारा
१४	,,	वृद्धिचन्द्र खींवराज,	वाणगाँव
१५	,,	पन्नालाल केशरीमल,	पींपलखूँटा
१६	,,	भीखमचंद्र दीपचंद्र,	निपाना
१७	,,	श्रीराम किसनलाल,	जीगाँव
१८	,,	जेठमल भीखचंद्र,	,,
१९	,,	चुन्नीलाल ऋद्धिकरण,	पुरी
२०	,,	दगडूराम टीकाराम,	कातरणी
२१	,,	शंकरलाल जगन्नाथ,	लालगाँव
२२	,,	नारायणदास स्वरूपचंद्र,	मुखेड
२३	,,	हीरालाल चुन्नीलाल	तलेगाँव
२४	,,	कोजीराम घासीराम	ताँदली
२५	,,	पूनमचंद्र रगनाथदास,	सामरोद
२६	,,	चुन्नीलाल अगरचंद्र	,,
२७	,,	रामचंद्र हंसराज,	तलेगाँव
२८	,,	सूरजमल गोविन्दराम,	धूलिया
२९	,,	शिवलाल गुलाबचंद्र,	,,
३०	,,	भींवराज शेरमल,	,,
३१	,,	रतनलाल बगनावरमल	,,
३२	,,	पिरथीराज हेमराज	,,
३३	,,	मोतीलाल हजारीमल	,,

३४	श्रीमान्	नथमल खींवराज	,,
३५	,,	बालाराम रावतमल	,,
३६	,,	दौलतराम उत्तमचंद	,,
३७	,,	लखीचंद हजारीमल	जूना धूलिया
३८	,,	हीरालाल बालाराम	,,
३९	,,	धौंडीराम बालचंद	उमराणा
४०	,,	धनराज नवलमल	फतहपुर

नोट—और भी जिन २ भाइयोंकी मेम्बर होकर जाति और धर्मकी सेवा बजानेकी इच्छा हो वें मंडलसे छपे हुए मेम्बर फॉर्म मंगवाकर उस पर सही (हस्ताक्षर) करके भेज दें। ताकि उनका नाम प्रबन्धकारिणी कमेटीकी मेम्बर श्रेणीमें लिख लिया जायगा।

पहुँच ।

निम्न लिखित सज्जनोंके मण्डलकी सहायतार्थ भेजे हुए रुपये पहुँचे हैं। अतः भेजनेवाले सज्जनोंको धन्यवाद देते हैं।

१२)	श्रीमान्	शिवलाल गुलाबचंद्र	धूलिया
११)	,,	सूरजमल गोविन्दराम	,,
७)	,,	लखीचंद्र हजारीमल	,,
७)	,,	मोतीलाल हजारीमल	,,
७)	,,	रतनलाल बगतावरमल	,,
७)	,,	हेमराज पिरथीराज	,,
७)	,,	हीरालाल बालाराम	,,
५)	,,	बालाराम रावतमल	,,
५)	,,	हीरालाल मोतीलाल	,,
५)	,,	दौलतराम उम्मेदमल	,,

९) ,, नथमल ग्वींवराज धूलिया
९) ,, पूसाजी वुधमल ,,
९) ,, श्रीमान् धोंडीराम वालचंद, उमराणा ।
९) ,, भनराज नवलमल, फतहपुर ।

नोट—यह सब मेम्बर महाशयोंकी वार्षिक सहायता है ।

भवदीय—कोषाध्यक्ष—**फतहराज शिवनाथ, बोदवड़ ।**

मुनिके संरक्षक और सहायकगण ।

जो सज्जन महोदय २५) या इससे अधिक इस पत्रके सहायतार्थ प्रदान करते हैं उनका नाम संरक्षकोंकी सूचीमें प्रकाशित किया जाता है और जो सज्जन १०) या अन्य प्रकारकी आर्थिक सहायता करते हैं उनका नाम सहायकोंकी सूचीमें प्रकाशित होता है । दानियोंको इसमें नाम लिखाकर पुण्य और यश लूटना चाहिए । ज्ञान व शास्त्र दानका अच्छा सुअवसर है ।

सरंक्षकगण–

६१) श्रीमान् कुन्दनमल हंसराज, मलकापुर
२५) ,, स्थानकवासी जैन संघ, इगतपुरी
२५) ,, शिवलालजी भीखमचंद्रजी, होलनाथा

सहायकगण–

११) श्रीमान् भीखमदानजी गुलाबचंद्रजी, पनवेल ।
२१) ,, रतनलालजी रुनवाल, धूलिया
२२) ,, भीमराजजी सेरमलजी ,,
२०) श्रीमती धर्मपत्नी, जेठमलजी नाहटा, घोटी ।
११) ,, धर्मपत्नी पूसमलजी, धूलिया

(देखें, और कौन २ महाशय मुनिके संरक्षक और सहायक बनकर हमारा उत्साह बढाते हैं ।)

साधारण सहायताकी प्राप्ति स्वीकार–

५) श्रीमान् नूरजमलजी, निम्बगुल
५) ,, ... मोहाड़ी ।
१) ,, मिसरीमलजी बालारामजी ।
५) ,, सिरेमलजी नगतमलजी धूलिया ।

चित्र-परिचय।

(१) श्रीमान् सेठ-राजमलजी, जामनेर।

संसारमें कौन नहीं जन्मता और कौन नहीं मरता अर्थात् सभी जन्मते हैं और सभी मरते हैं, परन्तु उसका ही जन्मना और मरना सार्थक है कि-जिसने जन्म लेकर अपनी जाति या अपने वंशकी उन्नति की है।

-नीति।

प्रिय पाठक, जिन महानुभावका चित्र आज आप सबसे पहले देख रहे हैं-यह कौन हैं? यह आपके महावीर मुनिमंडलकी **प्रबंध-कारिणी कमेटी**के कि जिसकी ओरसे "मुनि"पत्र निकल रहा है, **सभापतिका** है। आपने अभी ही यह पद हमारी बड़ी प्रार्थनासे ग्रहण किया है और पूर्ण आशा बंधाई है कि वे **अपना कर्त्तव्य (सभापतिका) बराबर बजायंगे और जाति तथा धर्म-की सेवा तनमन धनसे करेंगे** इत्यादि। आपके कुछ परिचयसे हमें यह भी मालूम हुआ है कि आप इस खानदेश बराड़के धनाढ्य मारवाड़ियोंमें एक सुयोग्य व्यक्ति हैं। आप धनी (धनवान्) होकर भी धनके नशेमें चूर (मस्त) नहीं हैं। आपको जातिहितका बड़ा खयाल रहता है। आपके संभाषण परसे मालूम होता है कि आप जाति हितके लिये भविष्यमें **कोई महत्वशाली कार्य करके भी दिखायँगे।**

आपके विचार भी बहुत ऊँचे हैं। आप जिस प्रकार धनवान् हैं उसी प्रकार बुद्धिमान् और विद्यावान भी है। आपकी वक्तृत्व कला भी अच्छी है। आपका बोलना कायरोंसा नहीं है बल्किबोलने एवं व्याख्यान देनेमें-या जाति हितके लिए कुछ कहने सुननेमें आप बड़े निडर हैं अर्थात ऐसे नहीं हैं कि बोलते हुए डर जायँ या सत्य वात कहना छोड़ दें।

इस बराड़ खानदेशमें धनाढ्य जैन मारवाड़ी भाई तो बहुत है परन्तु हम देखते हैं कि–जाति हितका खयाल रखनेवाले और उसकी उन्नति चाहनेवाले प्रायः कम ही हैं अथवा यों भी कह दें तो अनुचित न होगा कि कोई भी नहीं है ।

इधरके जैन मारवाड़ी भाई औसर मौसर ब्याह–शादियोंमें रंडियों नचवानेमें मूर्ख और धर्मशून्य सेवक और ब्राह्मणोंको दान–दक्षिणा देने इत्यादि कामोंमें तो शक्तिके बाहर भी द्रव्य लुटानेमें सदा प्रस्तुत रहते हैं अर्थात् जहाँ पाँच रुपये लगानेकी आवश्यकता होती है वहाँ पचीस लगाते हैं । पूर्व पुण्यसे पाये हुए धनका यों महान् दुरुपयोग करते हैं और इस प्रकार हजारों नहीं बल्कि लाखों रुपयोंको फिजूल उड़ा देते हैं । इस प्रकार अपनी जातिको मिट्टीमें मिला रहे हैं। धर्म और जातिके नामपर एक पैसा भी देना ये व्यर्थ समझते हैं । हमारे सभापतिमें ऐसा कोई भी दुर्व्यसन नहीं है । आप अपनी जातिका उद्धार करनेके लिए अवश्य कमर कसकर खड़े हो जायँगे । पूर्व पुण्यके बलसे मिली हुई लक्ष्मीका ओसरमोसर आदि अनेक कुप्रथाओंमें दो घड़ीकी थोथी कीर्तिके लिए आवश्यकताके ऊपरान्त विशेष धनका नाश न करते हुए जाति हितके कामोंमें ही व्यय करते हैं, जिससे आपका नाम अमर होगा और दोनों भवोंमें आनन्दकी प्राप्ति बनी रहेगी ।

पाठकगण ! जिस विशेषांकको आज आप पढ़ रहे हैं, यह भी इन्हींका उपकार मानना चाहिए । क्योंकि संचालकोंकी अभी शक्ति न थी कि वे इस महँगाईके समयमें आपको **विशेषांक** भेट कर सकते । पाठकों, अब आपका भी यह कर्त्तव्य होना चाहिए कि आप इस ज्ञान-दाके उपहारमें प्रत्येक पाठक एक एक या दो दो ग्राहक नये बनाकर हमारा उत्साह बढ़ावें ।

अब हम उक्त महोदयके कुछ जीवनवृत्तान्त भी आपको परिचय करा देते हैं ।

आपका जन्म स्थान संवत् १९५१ में आउवा (मारवाड़) नामक नगर है। पिताजीका नाम श्रीमान् सेठ रामलालजी और माताका नाम **तुलसीबाई** है। आपका बाल्यावस्थामें ही अपने पिताजीके साथ इस खानदेशमें आना हुआ। और कुछ दिनतक अमलनेर ताल्लुकेके 'मुडी' ग्राममें रहे। थोडासा विद्याभ्यास भी वहाँ ही हुआ। पश्चात् आप जामनेरमें आये और आपकी कान्तिको देख श्रीमान् शेठ महाभाग्यवान् जिनधर्मपरायण–श्री लखीचंद्रजी साहबने (उनके पुत्र न होनेसे) आपको गोद (दत्तक) ले लिया। फिर क्या कमी थी कि आपका बहुतसा लालन पालन और विद्याभ्यास उक्त शेठ साहब और उनकी सुयोग्य पत्नी भागाबाई और जडावबाईके हाथोंसे विशेष ही हुआ। संवत् १९६८में श्रीमान् शेठ लखीचंद्रजी स्वर्गवासी हुए और संवत् १९६८में आपकी छोटी माता जडावबाई भी स्वर्गवासिनी हुई। अभी आपकी बड़ी माता भागाबाई विद्यमान् हैं। आपकी स्त्री पानकुमारी बड़ी ही सुशीला और स्वधर्मपरायणा है।

आपके विवाहकालमें–उमरकी बधाईमें (१०००) हजार रुपयेका दान एक औषधालयको भी दिया गया थां।

सरकारमें भी आपका अच्छा मान है। इस विषयमें हम ज्यादा न लिखकर इतना ही लिख देना पर्याप्त समझते हैं कि सरकारने आपके सन्मानार्थ–जलगांवकी जो कि खानदेश जिलेका अच्छा शहर है-सार्वजनिक लायब्रेरीमें आपका (बड़ा) पुतला–स्मारक चिन्ह–स्थापित किया है। वहां आपकी तरफसे सदाव्रत भी दिया जाता है और आपने आपके मकानपर एक मुफ्त धर्मार्थ दवाखाना भी खोल रक्खा है।

अभी आपने यूरोपके महाभारतमें (लड़ाईमें) जानेवाले भारतीय बंधुओंको कुछ नगद भी अर्पण कर देना स्वीकार किया है। इससे आपकी राजभक्ति भी पूर्ण रूपसे साबित होती है।

आपने सार्वजनिक कामोंमें दान भी बहुतसा किया है। परन्तु हमें जितनी सूची प्राप्त हुई है उतनी ही लिख देते हैं—

१००००) रु. एक धर्मार्थ औषधालयमें दिये।

६००) रु. जलगाँव लायब्रेरीमें दिये।

६००) रु. अमलनेर हाईस्कूलमें दिये।

५००) रु. पैसा फंडमें दिये।

३००) रु. पंचराज मासिक (नासिक) की सहायतामें दिये।

और धूलियेकी प्राणिरक्षक संस्थाको भी बहुतसी सहायता दी है।

जाति सुधार और उसकी उन्नतिके लिए भी आप समय समयपर विवाहादि अनेक प्रसंगोंमें—बहुतसा उपदेश भी किया करते हैं। कई लोगोंने आपको एक दो स्थानपर जातीय सभामें प्रेसिडेन्टका स्थान भी दिया। यह भी आपकी योग्यताका ही सूचक है।

आपके पूर्वजोंका घराना खानदेशके धनिक जैन मारवाडियोंमें पहला नम्बर है। आपके पूर्वज सेठ लखीचंदजी साहबका नाम इधर सर्वत्र प्रसिद्ध है।

आपको एक व्यसन—धार्मिक, नैतिक, ऐतिहासिक पुस्तकों समाचार पत्रोंके पढ़ने मनन करने आदिका बहुत अच्छा है।

आपके शेष गुणोंका परिचय हम फिर किसी अंकमें विस्तृत रूपसे देंगे। यहाँपर पाठक इतने परसे ही सन्तोष कर लें।

(२) स्वर्गीय श्रीमान दानवीर जैनकुलभूषण— सेठ माणिकचंद हरीचंद जे० पी० बम्बई।

आपका जन्मस्थान सूरत था। आप अपनी दानवीरता और समाजसेवाके लिए प्रसिद्ध हैं। बालक वृद्ध सब आपके नामसे परिचित हैं। आप दिगम्बर समाजके रत्नशिरोमणि थे। आपने तीन चार लाख रुपया विद्यार्थियोंके लिये खर्च किये थे। सवा लाख

रुपयेसे बम्बईमें हीराबाग नामक धर्मशाला बनवाई। यह धर्मशाला बम्बई भरमें सबसे अच्छी और आराम देनेवाली धर्मशाला है। यह दिगम्बर महासभा, प्रांतिक सभा, आदि कई सभाओंके सभापति रहे और खूब दान देकर उन्हें चलाया। तीर्थक्षेत्र कमेटीके आप महामंत्री भी थे। और कई संस्थाओंके मेम्बर तथा ट्रस्टी रहे। लखपती होने पर भी आप साधारण और सरल परिणाममें रहते थे। दिगम्बर समाजमें १९–२० वर्षसे जो कुछ भी उन्नति हुई है वह सब आपके ही परिश्रमका फल है। आप सर्वप्रिय थे। पंडित, बाबू और सेठ तीनों पार्टियों आपको चाहती थीं। आप बडे ही निर्मल और निष्पक्ष विचारके मनुष्य थे। गवर्नमेन्टने आपके गुणोंसे प्रसन्न होकर जे० पी० की पदवी प्रदान की थी। दिगम्बर जैनोंकी ओरसे भी " दानवीर जैनकुलभूषण- की पदवी आपको दी गई थी, जैनसमाजमें ऐसे ही समाजसेवी धनवानोंकी आवश्यकता है।

(३) संसार–वृक्ष।

संसारी पाठको, लीजिये अपने संसारकी स्थितिका दृश्य भी देख लीजिये। संसाररूपी महान वनमें मनुष्य अर्थात् आप रुपी यात्री हाथी रूपी यमराजके भयसे भाग रहा है। भागते भागते वह संसारके अंधकूपमें गिर पडता है। वहाँ संयोगसे संसारवृक्षकी डाल उसके हाथ पड़ गई और वह उससे लटक गया। हाथीके भयसे उसने नीचेकी ओर देखा तो उस कुएँमें निगोद नामक एक महाभयंकर अजगर बैठा दिखाई दिया। इस भयावने दृश्यके भयसे उसने ऊपर देखा तो उसे रात्रि और दिन नामक कृष्ण और सफ़ेद दो चूहे आयु डाली काटते दिखाई दिये। इस दृश्यसे वह और घबरा गया और नीचेकी ओर निहारने लगा तो उसे चार कषाय अर्थात् चार गति नामक भयानक सर्प उस कुएँमें दिखाई दिये और हाथी भी वृक्षकी जड़को हिलाता दिखाई दिया। संसारी जीव बिल्कुल घबरा गया। इधर कुटुम्ब नामक मधु मक्खियें उसके शरीरको

नोंच रही हैं । इससे वह बिलकुल अधीर हो गया । पर संयोगसे मोह नामक छत्तेसे विषय-वासना नामक मधुकी बूँदें उसके मुखमें पड़ती हैं, उनका मीठा स्वाद उसे आनंदित करता है । बस, मूर्ख संसारी जीव इस मधुके स्वादको आनंद मानता हुआ भयावनी स्थितिमें डालसे लटका रहता है । इतनेमें विद्याधरका विमान आता है । विद्याधर इसको इस दुःखकी स्थितिको देखकर दयावश कहते हैं, "संसारी आ, तेरी आयु डाल कटनेवाली है । इस संसाररूप कुएँसे बाहर निकल। ला, मैं तुझे खिंच लेता हूँ । " पर संसारी जीव कहता है, " जरा ठहरिये, एक बूँद और चख लेने दीजिये । " दूसरी बार भी वह यही उत्तर देता है । इसी प्रकार जब तक आयु नामक डाली कट नहीं जाती, वह विषय-वासनाके मधुसे तृप्त नहीं होता । उसी प्रकार अंतमें आयु डाली कट जाती है वह मनुष्य सर्पोंके मुखमें अर्थात् नर्कमें चला जाता है ।

पाठक, हमारी और आपकी ठीक यही स्थिति है ।

(४) श्रीयुत वाडीलाल मोतीलाल शाह-बम्बई ।

आप प्रसिद्ध लेखक, वक्ता, ग्रंथकर्त्ता, सच्चा देशभक्त, एकताका साधक, उद्योगी स्थानकवासी जैन हैं । आप जैन समाचार साप्ताहिकपत्र और " जैनहितेच्छु " मासिक हिंदी और गुजराती भाषामें कई वर्षतक निकाल रहे थे । गुजरातीमें आप अपनी ही लेखनीसे और अपनी सम्पत्तिसे इन्हें निकालते रहे और हजारोंका घाटा दिया । आपके इन पत्रोंने जैन-समाजमें नया युग स्थापित कर दिया था । आप जैसा निर्भीक और स्वतंत्र लेखक, प्रभावशाली वक्ता और निस्वार्थ सेवक विरला ही पुरुष होगा । आपने अपना सारा धन इन पत्रोंके घाटेमें ही और समाज तथा देशहित कार्योंमें ही खर्च कर दिया है । इस समय भी आप ' जैन-हितेच्छु ' नामक मासिक निकालते हैं जो गुजराती साहित्यमें एक निर्भीक रत्न है । हर साल इसमें घाटा रहता है पर वे इसकी चिन्ता भी परवा नहीं करते । अभी तीन सालसे बम्बईमें एक कारखाना खोला था

रुपयेसे बम्बईमें हीराबाग नामक धर्मशाला बनवाई। यह धर्मशाला बम्बई भरमें सबसे अच्छी और आराम देनेवाली धर्मशाला है। यह दिगम्बर महासभा, प्रांतिक सभा, आदि कई सभाओंके सभापति रहे और खूब दान देकर उन्हें चलाया। तीर्थक्षेत्र कमेटीके आप महामंत्री भी थे। और कई संस्थाओंके मेम्बर तथा ट्रस्टी रहे। लखपती होने पर भी आप साधारण और सरल परिणाममें रहते थे। दिगम्बर समाजमें १५–२० वर्षसे जो कुछ भी उन्नति हुई है वह सब आपके ही परिश्रमका फल है। आप सर्वप्रिय थे। पंडित, बाबू और सेठ तीनों पार्टियों आपको चाहती थीं। आप बडे ही निर्मल और निष्पक्ष विचारके मनुष्य थे। गवर्नमेन्टने आपके गुणोंसे प्रसन्न होकर जे० पी० की पदवी प्रदान की थी। दिगम्बर जैनोंकी ओरसे भी " दानवीर जैनकुलभूषण- की पदवी आपको दी गई थी, जैनसमाजमें ऐसे ही समाजसेवी धनवानोंकी आवश्यकता है।

(३) संसार–वृक्ष।

संसारी पाठको, लीजिये अपने संसारकी स्थितिका दृश्य भी देख लीजिये। संसाररूपी महान वनमें मनुष्य अर्थात् आप रुपी यात्री हाथी रूपी यमराजके भयसे भाग रहा है। भागते भागते वह संसारके अंधकूपमें गिर पडता है। वहाँ संयोगसे संसारवृक्षकी डाल उसके हाथ पड़ गई और वह उससे लटक गया। हाथीके भयसे उसने नीचेकी ओर देखा तो उस कुएँमें निगोद नामक एक महाभयंकर अजगर बैठा दिखाई दिया। इस भयावने दृश्यके भयसे उसने ऊपर देखा तो उसे रात्रि और दिन नामक कृष्ण और सफ़ेद दो चूहे आयु डाली काटते दिखाई दिये। इस दृश्यसे वह और घबरा गया और नीचेकी ओर निहारने लगा तो उसे चार कषाय अर्थात् चार गति नामक भयानक सर्प उस कुएँमें दिखाई दिये और हाथी भी वृक्षकी जड़को हिलाता दिखाई दिया। संसारी जीव बिल्कुल घबरा गया। इधर कुटुम्ब नामक मधु मक्खियें उसके शरीरको

नोंच रही हैं। इससे वह बिलकुल अधीर हो गया। पर संयोगसे मोह नामक छत्तेसे विषय-वासना नामक मधुकी बूँदें उसके मुखमें पड़ती हैं, उनका मीठा स्वाद उसे आनंदित करता है। बस, मूर्ख संसारी जीव इस मधुके स्वादको आनंद मानता हुआ भयावनी स्थितिमें डालसे लटका रहता है। इतनेमें विद्याधरका विमान आता है। विद्याधर इसको इस दुःखकी स्थितिको देखकर दयावश कहते हैं, "संसारी आ, तेरी आयु डाल कटनेवाली है। इस संसाररूप कुएँसे बाहर निकल। ला, मैं तुझे खिंचे लेता हूँ।" पर संसारी जीव कहता है, "जरा ठहरिये, एक बूँद और चख लेने दीजिये।" दूसरी बार भी वह यही उत्तर देता है। इसी प्रकार जब तक आयु नामक डाली कट नहीं जाती, वह विषय-वासनाके मधुसे तृप्त नहीं होता। उसी प्रकार अंतमें आयु डाली कट जाती है वह मनुष्य सर्पके मुखमें अर्थात् नर्कमें चला जाता है।

पाठक, हमारी और आपकी ठीक यही स्थिति है।

(४) श्रीयुत वाडीलाल मोतीलाल शाह-बम्बई।

आप प्रसिद्ध लेखक, वक्ता, ग्रंथकर्त्ता, सच्चा देशभक्त, एकताका साधक, उद्योगी स्थानकवासी जैन हैं। आप जैन समाचार साप्ताहिकपत्र और "जैनहितेच्छु" मासिक हिंदी और गुजराती भाषामें कई वर्षतक निकाल रहे थे। गुजरातीमें आप अपनी ही लेखनीसे और अपनी सम्पतिसे इन्हें निकालते रहे और हज़ारोंका घाटा दिया। आपके इन पत्रोंने जैन-समाजमें नया युग स्थापित कर दिया था। आप जैसा निर्भीक और स्वतंत्र लेखक, प्रभावशाली वक्ता और निस्वार्थ सेवक विरला ही पुरुष होगा। आपने अपना सारा धन इन पत्रोंके घाटेमें ही और समाज तथा देशहित कार्योंमें ही खर्च कर दिया है। इस समय भी आप 'जैन-हितेच्छु' नामक मासिक निकालते हैं जो गुजराती साहित्यमें एक निर्भीक रत्न हैं। हर साल इसमें घाटा रहता है पर वे इसकी तनिक भी परवा नहीं करते। अभी तीन सालसे बम्बईमें एक कारखाना खोला था

उसका मुनाफा जो कुछ भी हुआ था वह सब दान कर दिया और आप पहले जैसे ही कंगाल फिर बन गये। अभी हालमें इसी मुनाफेके रुपयेसे एक बोर्डिंग हाउस खोला है जिसे जैन मात्रका बोर्डिंग हाउस बना दिया है। गुजराती होते हुए भी मातृभाषाके प्रचारार्थ झालरापाटनमें एक हिंदी साहित्य सभा स्थापित करवा दी हैं। जिसमें आपने २०००) रुपये दिये हैं। जिसके घरमें एक करोड़ रुपया हो, वह यदि एक लाख रुपया दे दे तो कुछ महत्वका नहीं। जिसके पास जो कुछ हो वह बिना आगापीछे सोचे सर्वस्व दान दे दे और कलको खानेके लिए कुछ भी न रक्खे, उसीके दानका महत्व है, वही सच्चा दानवीर, सच्चा त्यागी है। जो काम कई धनवान करोड़पतियोंसे भी न हो सके, वे ही सच्चे देशहितैषी निर्धन वाडीलालने कर दिये। गृहस्थ होकर भी जो साधु होकर रहता है, धन आते हुए भी जो निर्धन रहनेका इच्छुक है, जो जोकुछ कमाता है, वह सब समाजहितमें खर्च देता है, उसीके जीवनका महत्व है। वही सच्चा देशहितैषी है। ऐसे ही कर्मवीरोंकी आवश्यकता है।

(५) पं० फतहचन्द कपूरचन्द लालन।

जैन समाजके ये सर्व श्रेष्ठ विद्वान, लेखक और व्याख्यानदाता हैं। आपका व्याख्यान ऐसा ओजिस्वी, मधुर और हृदयग्राही होता है कि आप जहां व्याख्यान देते हैं वहाँ पैर रखनेको भी जगह नहीं मिलती। आप श्वेताम्बर जैनी हैं, पर तीनों सम्प्रदायको एक दृष्टिसे बिना किसी भेद-भावके देखते हैं। आप तीनों सम्प्रदायोंको एक करनेके उद्योगमें हैं। आप जैसा विद्वान पंडित, तात्त्विक स्वतंत्र वक्ता और निष्पक्ष जैन संसारमें विरले ही हैं। आप सच्चे जैन धर्मके प्रचारक और जैन समाजके सुधारक हैं। अभी कुछ साल पहले आप जैन धर्म प्रचारार्थ विलायत गये थे। वहाँ आपके जैन धर्मके व्याख्यानोंकी बड़ी प्रतिष्ठा हुई-युरोपवासियों पर जैन धर्मकी महत्ता जम गई।

Mr. Herbert Warren (हर्बट वॉरन) नामक विद्वान जैनी हुए। और भी कई विद्वानोंने जैन धर्म स्वीकार किया। पालीताणामें कुछ स्वार्थियोंने आप पर बहुत दोष आरोपित किये पर अंतमें सत्यकी ही विजय हुई। आप जैसे काम करनेवाले मनुष्योंकी जैन समाजमें आवश्यक्ता है।

(६) महात्मा गांधी।

महात्मा गांधीको सारा संसार जानता है। आप गृहस्थ होकर साधु वेषमें रहते हैं। आप जैसा कर्तव्यनिष्ट, सदाचारी, सच्चा दयावान और कर्मवीर इस संसारमें कोई भी नजर नहीं आता है। अभी थोड़े वर्ष हुए जब आप आफ्रिका गये थे वहाँ आपको अपने देश भाइयोंके कष्ट देखकर रोना आ गया। आपका हृदय पहले हीसे 'अहिंसा धर्म' और सेवा सिद्धान्तसे रंगा हुआ था। आपसे न रहा गया और देश भाईयोंके कष्टको दूर करनेके लिए आप प्रयत्न करने लगे। खुल्लमखुल्ला इसका आन्दोलन करने लगे। इसमें इन्हें बड़े बड़े कष्टोंका सामना करना पड़ा। महीनों बिना अन्न खाये भूखे रहे। महीनों कोड़ोंकी मार सही। महीनों जेलका कष्ट भुगता। वे अपने कर्तव्यसे विचलित नहीं हुए। अपने देश भाईयोंके कष्टोंको दूर करके ही दम लिया। आपकी ऐसी दृढ़ देशभक्तिका उदाहरण और कहीं न मिलेगा। आप पूरे सत्याग्रही हैं। आपका उपदेश है, वीर बनकर कष्टोंका सामना करो; आप कष्ट भुगतो पर दूसरोंकी रक्षा करो। कायर बनकर आपके सामने दूसरेके कष्टको न देखते रहो। निर्बल और सबल दोनोंके बीचमें खुद पिस जाओ और निर्बलकी रक्षा करो जैसे गाय और कसाईके सामने दोनोंमेंसे किसीको हानि न पहूँचाये आप मर जाना। आपका हृदय सदैव दया और सहानुभूतिसे भरा रहता है। अभी हालमें आप चम्पारन जिलेमें होनेवाले चम्पारन प्रजाके कष्टोंके अनुसंधानके लिए गये थे। आप जैसा पुरुषरत्न पा कर भारत अपनेको बड़ा भाग्यवान समझता है।

आप सदैव एक कुरता पहने नंगे सिर साधारण वेषमें रहते हैं, उसी वेषका फोटू पाठक इस चित्रमें देखेंगे।

आपने राष्ट्र भाषा हिन्दीके प्रचारका बीड़ा उठाकर अपना नाम हिन्दी संसारमें अंकित कर दिया है। आपने हिन्दीमें बोलनेकी प्रतिज्ञा की है! हिन्दीके लिए ऐसे ही कर्मवीर सेवकोंकी आवश्यक्ता है।

(७) श्रीयुत पं० अर्जुनलाल सेठी बी. ए.।

श्रीयुत वाडीलाल मोतीलाल शाह जैसे ही दूसरे कर्मवीर ये सेठीजी हैं। आपने ग्रेजुएट होनेपर भी धनी बननेकी कभी इच्छा नहीं की। आप अच्छे पदपर और अच्छे वेतन पर रहकर संतुष्ट नहीं हुए। आपने अपना जीवन देशके लिए दे दिया। हज़ारोंकी जायदाद पर, प्रतिष्ठित ओहदे पर और अच्छे धन पर लात मार दी और समाज-सेवामें अपना जीवन, अपना तन ओर अपना धन होमने लगें। जयपुरमें एक जैन शिक्षा-प्रचारक समिति भी आपने सन् १९०६ में स्थापित कर डाली। स्थायी फंड न होते हुए भी आप वार्षिक १२०००) रुपये तक खर्च डालते थे। इसके लिए वे स्थान स्थानसे पैसे पैसे तक सहायतार्थ माँगकर लाते थे। आपने शिक्षा प्रचारके लिए जो सिर तोड़ परिश्रम किया था, वह प्रशंसनीय नहीं स्मरणीय है। इस समय आपके शिष्योंकी विद्वानोंमें गणना है, इसीसे सेठीजीकी योग्यताका परिचय मिलता है। बाबू कृष्णलाल वर्मा, शिवनारायण द्विवेदी आदि कई सेठीजीके शिष्य इस समय सम्पादनकार्य कर देशका भला कर रहे हैं। वे आजकल विना अपराध जयपुर जेलमें हैं। जयपुर राज्यको ऐसे कर्मवीर और उत्साही समाजसेवकको छोड़ देना चाहिए।

(८) अरनक श्रावक।

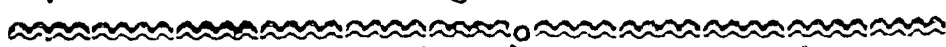
अरनककी कथा इस प्रकार है—चतुर्थ कालकी बात है। यह चंपापुरीका रहनेवाला—धनाढ्य व्यवसायी **अरनक** एक समय द्रव्यो-

पार्जनके अर्थ अपनी जहाजको लेकर समुद्रमेंसे किसी अन्य द्वीपको जा रहा था । उस समय पहला देवलोकका मालिक इन्द्र महाराज अपनी सौधर्म सभामें सब देवोंके सम्मुख इस प्रकार कहने लगे कि–" आज भरतखंडमें–जैसा अरनक (श्रावक) धर्ममें दृढ़ हैं वैसा कोई भी नहीं " वहांपर एक मिथ्यात्वी देव बैठा हुआ था, उससे यह प्रशंसा सहन न हुई और इन्द्रकी बातको गलत् समझी । झट् उठा, और अरनककी परीक्षा करनेके लिए चला । अरनक अपने नोकरों चाकरों एवं मुनीम गुमास्तों समेत विविध धन धान्यसे पूरित जहाजको लिये हुए समुद्रमें चल ही रहा था । देवने एकदम आकर महा भयानक राक्षसका रूप कर जहाजको पकड़कर झोंके (हिलाने) देने लगा और मुखसे इस प्रकार कहना शुरू किया–

"हे अरनक ! मैं तुझे तेरा धर्म छुड़ानेके लिए आया हुं, तूं तेरा (जैन) धर्म छोड़ ! और मेरा (कल्पित) धर्म स्वीकार कर ! !

देख, ऐसा न करेगा तो अभी इस तलवारसे तेरे टुकड़े टुकड़े कर डालूँगा और इस जहाजको तेरे भृत्यजनों समेत समुद्रमें डूबा दूँगा ।"

अरनकने विचारा, कोई मिथ्यात्वी देव है । मुझे चलानेके लिए आया है । परन्तु दूसरे लोगोंको धैर्य कहाँ ? वह देवके उस भयंकर रूपको देख काँप उठे, भयभीत हुए, और अरनकसे कहने लगे कि–महाभाग, इस समय आप हठ न कीजिए । ज़्यादह नहीं तो दो घड़ीके लिए भी कह दीजिए कि–" मैंने मेरा धर्म छोड़ा " तो सबके प्राण बच जायँगे । किन्तु अरनकने एककी भी बातपर ध्यान न दिया, वह धर्मध्यानमें मग्न (बेभान) हो गया । सागारी संथारा करके बैठ गया । मिथ्यात्वी देवने नाना प्रकारके उपद्रव किये परन्तु एकका भी उपयोग न हुआ । अन्तमें पराजित हो देव बोला—



“ हे अरनक ! तू धन्य है ! और धन्य है तेरी धर्मदृढ़ता !! जिस प्रकार इन्द्र महाराजने तेरी प्रशंसा की थी उससे भी तू अधिक निकला। माँग, जो चाहिए सो माँग; मैं तुझपर प्रसन्न हुआ हूं।”

अरनकने कहा—“हे देव ! मुझे कुछ भी न चाहिए—सिवा धर्मके; अतः वह मेरे पास ही है।

इसके बाद देवने अरनकको प्रणाम किया, सब अपराधोंकी क्षमा माँगी और चार कुंडल देकर चला गया।

पाठको, देखा धर्मकी दृढ़ता कैसी होती है। शिक्षा लीजिये और अनुकरण कीजिये।

(९) कल्पतरुसिञ्चन।

इस चित्रमें ब्रह्मचर्यसे होनेवाले फायदे बताये गये हैं। एक **ब्रह्मचर्य** रूप कल्पतरुका सिंचन (पालन) करते रहनेसे—क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, सम्यक्ज्ञान—प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग, धर्मध्यान, धर्मोपदेश, परोपकार, स्वर्गसुख, ऋद्धि, पंचज्ञान, समाधि, मोक्ष, बुद्धि, विवेक, कलाकौशल्य, आविष्कार, धर्म, देशसेवा आदि आदि ६२ गुणोंकी प्राप्ति होती है। इसलिए हे भव्य जीवो ! **इस कल्पतरू ब्रह्मचर्यका निरंतर सिंचन करो।** चित्रको सामने रखकर देखो कि कौनसा गुण किसमेंसे प्रगट हुआ है ? और इन सब गुणोंकी उत्पत्ति कहांसे है ?

* * *

ब्रह्मचर्य एक ही ऐसा बड़ा गुण है कि—इसका सेवन करते रहने—(साधूको चिरकालतक और गृहस्थको अमुक अवधितक)से दूसरे सब गुण स्वयं ही आकर मिलजाते हैं। ब्रह्मचारी पुरूषके लिए कोई भी काम, कोई भी कर्म, कोई भी सिद्धि, कौनसा भी ज्ञान दुष्कर नहीं है। वह चाहे सो कठिनसे कठिन कार्यको पूर्ण कर सकता है। शास्त्र उठाकर देखते हैं तो

मालूम होता है कि इसकी (ब्रह्मचर्यकी) प्रशंसा स्वयं भगवानने अपने मुक्त कंठसे की है। **उत्तराध्यान** शास्त्रमें लिखा है कि–"**देवदाणव गंधव्वा जक्ख रक्खस्स किन्नरा बंभयारी ममं संति, दुक्करं जे करंति ते**" अर्थात् एक ब्रह्मचर्य व्रत धारण करनेवालेको देव दानव यक्ष राक्षस गंधर्व किन्नर आदि सब नमन करते हैं। ऐसा यह ब्रह्मचर्य है। और भी कहा है–"**मनुष्याः किं करायंते देवा निर्देश वर्तिनः । शीलभाजोऽथवा कस्य कल्पवृक्षो न वल्लभः**" अर्थात् ब्रह्मचारीके यहां मनुष्य किंकर (दास) होकर रहते हैं। देवता लोग उसकी आज्ञाको सदा सिरपर चढ़ाते हैं [मान्य करते हैं] फिर ऐसा कल्पवृक्ष तुल्य ब्रह्मचर्य किसको प्यारा न लगेगा ? परन्तु दुःख इस बातका है कि आजकल–जैनसमाजमें इसका यथोचित पालन नहीं हो रहा है, इसीसे–जैनसमाजकी आज बुरी दशा हो रही है और कोई भी नर वीर ऐसा नहीं उपजता कि जो जैन समाजको एकदम उँचा ला दें। अगर जैनसमाज फिर अपने पूर्वजोंकासा **ब्रह्मचर्य** धारण करें तो यह निःसंशय है कि–जैन समाज अवश्य ऊँचा आजाय। अतएव फिर एकवार कहते हैं कि–इस ब्रह्मचर्य रूपी कल्पतरुका सब पुरुष और स्त्री दृढ़ श्रद्धा और दृढ़ भक्तिपूर्वक सिञ्चन करते रहें।

(१०) श्रीयुक्त विश्वंभरदासजी गार्गीय–झांसी।

आपने ही प्रथम वर्षके मुनिके ९ अंकोंका योग्यताके साथ सम्पादन किया है। आप बड़े ही उत्साही और कर्तव्य परायण पुरुष हैं, संयमी और निष्पृही हैं, साथ ही स्वदेशभक्त और स्वाभिमानी भी हैं। आपने कई संस्थाओंका आनेररी काम किया है, संस्थाओंके काममें खूब अनुभवी हैं, व्यापार वाणिज्य प्रेमी हैं और अग्रवाल जातिके एक धनाढ्य वंशोद्भव हैं। आप सम्पूर्ण जैनसमाजोमें एकताके परम इच्छुक हैं; और मुनिसमाजमें ज्ञान व चारित्रकी वृद्धिके प्रेमी हैं। ब्रह्मचर्यमें रहकर परोपकारको आत्म कल्याणका साधन बनानेके इच्छुक हैं। यही कारण है

कि आप अबतक कुँवारे रहकर ब्रह्मचर्यका पालन कर रहे हैं, देशसेवा व समाज सेवामें तल्लीन रहते हैं। आपका जन्मस्थान छावनी अंबाला है किन्तु इधर कोई २० वर्षसे छावनी झांसीमें रहते हैं। आपके पिताजी लाला मुसद्दीलालजी (हरचंदराय मुसद्दीलाल) बड़े प्रसिद्ध और बहुश्रुत थे उन्हींके पथपर उनकी यह सन्तान चल रही है। क्यों न हो भले घरोंकी यही रीति है। आशा है हमारे अन्य युवक भी इनके चरित्रसे शिक्षण लेंगे।

(११) एक आठ वर्षीय बालिकाके साथ बुड्ढेकी भाँवर फिर रही है।

इसका परिचय चित्रके नीचे ही दिया गया है।

(१२) छोटे कंथ बड़ी वहू।

इस चित्रमें वे जोड़ विवाहका दृश्य देखिये और भारतकी भावी-माताओंकी ओर निहारिये। सोलह वर्षकी नवयौवना स्त्री और दस वर्षके छोटे पतिकी ओर निहारिये। स्त्री कामोन्मत्त हो पतिको पकड़ती है, पर निर्बोध बालक भयके मारे भागता है। वह बेचारा इन बातोंको क्या जाने ? हाय, इस सत्यानाशी प्रथासे न मालूम ऐसी कितनी नवयौवनायें नर्क जैसी यातना भुगत रही होंगी या किसीके साथ कामोन्माद-वश भाग जाती होंगी। दो मिनट तक चित्रकी ओर निहारिये और विचारिये। तुम्हारी बहनोंकी यही दशा हो रही है।

(१३)वृद्धविवाहके कारण एक विधवा एकान्तमें रो रही है।

देखिये वृद्धविवाहका दुष्परिणाम (बुरा हाल) ! बेचारे पतिजी तो चलते बने और आ जन्म इस बालिकाको वैधव्य दुःख भोगनेके लिए छोड़-गये। जब तक बचपन रहा तब तक तो कुछ भी ध्यान न हुआ। पर, युवा होते ही उस विधवाका दुःख पहाड़ हो रहा है। बेचारी कोचके

सहारे माथा टेक कर अपने दुःखमें घुल रही है। इसी शोचनीय और करूणास्पद दशाका यह चित्र है। यदि आपका हृदय इस चित्रके देखनेसे जरा भी पसीना हो तो इन विधओंका दुःख मेटिये। आज हमारे समाजमें हज़ारो नहीं लाखोंकी संख्यामें बालिकायें वैधव्य यातना भोग रही हैं।

(१४) एक बालिका अपने वृद्ध पतिको देख मूर्छित है।

आज दिन दहाड़े कसाई बाप अपनी लड़कीकी गर्दनपर छुरी फेर देते हैं। साठ साठ वर्षके बुड्ढे नाती पोते होते हुए भी अपना चौथा और पाँचवाँ ब्याह कर लेते हैं और वेचारी एक निर्बोध बालिकाको दुःखमें ला डालते हैं। इस चित्रमें इसी दुष्कर्मका दृश्य है। अपने बुड्ढे खुर्राट डगमग गर्दन हिलानेवाले पतिको देखकर भयके मारे बालिका मूर्च्छित हो गई है। पाठको, विचारिये, और निर्बोध गायों सदृश कन्याओं पर दया करिये। बस आपका प्रयत्न यही होना चाहिए कि आपके समाजमें यह कर्म न होने पावे।

(१५) सट्टेबाजकी दुर्दशा।

सट्टा करना कैसा बुरा कार्य है। इसीका दृश्य इस चित्रमें दिखाया गया है। सट्टा धनी समाजमें बाहुल्यतासे प्रचलित है। बड़े बड़े दानवीर धर्मवीर सेठ इस दुर्व्यसनके व्यसनी है। यह बड़ा बुरा व्यसन है। लाखोंके दिवाले इसीमें निकल जाते हैं। घर बारके वर्तन और स्त्रीके जेवर वेचनेतक नौवत आ जाती है। बाजे बाजे तो लोकअपवादके भयसे आत्महत्या तक कर डालते हैं। लोगोंको इस चित्रसे उपदेश लेना चाहिए और सट्टेके दुर्व्यसनमें न पड़ना चाहिए। सट्टेबाजोंकी अपनी आँखों दुर्दशा दिखानेके लिए यह चित्र गुरुका काम देगा। इत्यलम्।

(१६) साक्रटीसका विषपान।

महात्मा साक्रटीस कैसी निर्भीकतासे विषका प्याला पी रहा है और सब लोग रो रहे हैं। पर सत्यके लिये कैसी प्रसन्नतासे वह लोगोंको

समझाता है और खुशी खुशी विष पी जाता है। न्यायके लिए सज्जन कैसी सरलतासे मर सकते हैं, यह इस उदाहरणसे सिद्ध हो जाता है। विशेष परिचय अन्यत्र प्रकाशित "साक्रटीस और मृत्यु" नामक लेखमें है।

(१७) एक लोभी।

संसारमें लोभी मनुष्यकी सदैव दुर्गति होती है। लोभी मनुष्य लोभके आधीन होकर नाना प्रकारके अनर्थ करडालता है। जिस समय उसपर लोभका भूत सवार होता है उस समय उसे कुछ भी दिखाई नहीं देता और न वह अपने हिताहितका विचार रख सकता है। वह केवल **हाय धन, हाय धन**की धूनमें ही लगा रहता है। देव गुरू धर्म क्या चीज है? वह जानता तक नहीं। शास्त्रोंमें अनेक जगह लोभियोंके दृष्टांत [चरित्र] लिखे हैं–उसपरसे स्पष्ट विदित होता है कि–अति लोभीकी अन्तमें **बुरी दशा** ही होकर रहती है। इस अंकमें हमने एक लोभी-का चित्र भी दिया है उस परसे पाठक इस बातको देखें कि इस लोभीकी क्या हालत हुई है? इस लोभीके चित्रका एक छोटासा दृष्टान्त यों है–

एक लोभी मनुष्य था। वह विदेशमें विशेष धन कमानेके लिये चला। घरसे निकलते समय एक देवके सामने यह कहा कि— "**यदि मुझे परदेशमें अच्छा लाभ हुआ (धन मिला) तो मैं तुझे एक नारियल चढाऊंगा**!" परदेशमें उसे खूब ही धन मिला। वापिस घरको आने लगा तो रास्तेमें स्मरण हो आया कि "उस देवके लिये मैंने नारियल तो न लिया जो कि मैं प्रतिज्ञा कर आया हूँ। उसी समय शहरमें गया और एक दुकानदारसे पूछा कि "एक नारियलका क्या लेगा?"

दुकानदारने कहा–" एक आना।"

लोभीने कहा–" आध आनामें देता हो तो दे।"

दुकानदार बोला–" नहीं "

फिर दूसरी दुकानपर गया। उसने नारियलकी कीमत ३ पैसे बताई। वह भी लोभीने स्वीकार न किया। पुनः तीसरी दुकानपर गया तो उसने एक नारियलके दो पैसे माँगे। लोभीने सोचा कि दो पैसे तो बहुत हैं। एक पैसेमें मिले तो लेना चाहिए। यह विचार कर उस तीसरे दुकानदारसे कहा—"दो पैसेमें तो नहीं लेता, एक पैसेमें देता हो तो ले लूँ।

दुकानदारने कहा—"एक पैसा भी क्यों खर्चता है, यदि मुफत ही लेना होतो इस बागके अन्दर चला जा और वहां एक नारियलका वृक्ष है, बहुतसे फल लगे हुए हैं, एकाध तोड़ ला।"

लोभी यह सुन बड़ा खुशी हुआ और बागके अन्दर पहुँचा। वहाँ क्या देखता है कि—एक नारियलका वृक्ष खड़ा है। नीचे उसके एक निर्जल कुआ है। कुएके अन्दर चार साँप मुँह फैलाये हुए बैठे हैं। यह लोभके वश कुछ भी न विचार सका और ज्योंत्यों कर उस वृक्षपर चढ़ गया। नारियल तोडनेकी तैयारीमें था कि—जोरसे हवा चली, और एकदम उसके पाँव छूट गये। अब मरनेकी तैयारी आई, यह जान उस वृक्षकी डाली पकड़ ली (देखिए चित्रमें)। कुएके अन्दर दोनों पाँव लटकाये हुए और ऊपर (हाथोंसे) वृक्षकी डाली पकडे हुए आप लटक रहा है?

मुखसे कह रहा है कि "मुझे कोई इस आफतसे बचाओ, मुँह माँगा धन दूँगा" इतनेमें एक हाथीवाला आ निकला। धनके लालचसे उसने उतारना चाहा। हाथीपर खड़ा रहकर वह उसे उतारने लगा कि हाथी भी दूर हो गया। इस तरह क्रम क्रमसे ऊँटवाला घोडावाला आया परन्तु सबका प्रयत्न निष्फल हुआ। व ऊँट भी दूर हुआ, घोडा भी दूर हुआ, तीनों एक एककी टांगे पकड़कर लटकने लगे। उधर भार (वजन) बहुत हो जानेसे डाली भी टूट पड़ी, चारों कुएके अन्दर जा गिरे और अपने२ प्राणोंको खो बैठे।

सारांश यह है कि–**लोभी मनुष्योंकी दशा बुरी ही होती है।**

“दातव्यं भोक्तव्यं, सति धने संचयो न कर्त्तव्यः
पश्येह मधुकरीणां ! संचितमर्थं हरतन्ये ”

(१८) सरस्वती देवी।

इसके विशेष परिचयकी आवश्यक्ता नहीं है। यह प्राचीन चित्रकारीका एक नमूना है।



निवेदन।

गत वर्षमें जो जो महाशय मुनिके संरक्षक और सहायक रह चुके हैं वे इस वर्षमें भी रहें। कारण–अभी 'मुनि'की ग्राहक संस्था सन्तोषप्रद नहीं है। सहायताकी बहुत जरूरत है। केवल पत्र संचालनके लिए वार्षिक खर्च २०००)का है। बिना सहायताके काम कैसे चल सकेगा इसलिए पुनः पुनः निवेदन है कि गत वर्षमें दी हुई आर्थिक सहायता इस वर्षमें भी देनेकी कृपा करें। श्रीमान् **धनराजजी मोतीलाल वोहरा** बरोरा निवासी, श्रीमान् **लखीचंद्रजी रूपचंदजी** देवलगाँव निवासी, श्रीमान् **लक्ष्मणदासजी शिवलालजी** साडेगाँव निवासी, श्रीमान् **उम्मेदमलजी चुन्नीलालजी कटारिया** रालेगाँव निवासी, आदि२ महाशयोंका ध्यान हम इस तर्फ खींचते है। जिस प्रकार सहायता गत वर्षमें दी थी–उसी प्रकार अब भी दें।

भवदीय–

K. R. S.

मैनेजर–**मुनि**।

धन्यवाद ।

विशेषांककी सूचनाके कार्ड मिलते ही आगरा निवासी श्रीमान् **पदमसिंहजी जैन**ने २ ग्राहक, और पनवेल निवासी श्रीमान् **भूरमलजी आनंदरामजी बाँठिया** ने पांच ग्राहक–मुनिके लिए बनाकर भेजे हैं, और भविष्यमें और भी ग्राहक संख्या बढ़ा देनेके लिए कहा है । ... उन धर्मप्रेमी उत्साही सज्जनोंको अनेक धन्यवाद देते हैं ।



आवश्यक सूचना ।

मेरे पास दो माससे वरावर पत्र आ रहे हैं कि मैं अपने नामके सामने "गुप्त" न लिखूँ । मेरे नामराशि 'गुप्त' मित्रोंका कहना है कि वे बहुत पहलेसे अपने नाम 'श्यामलाल'के सामने 'गुप्त' लिख रहे हैं, इससे भ्रान्ति हो जानेका भय है । पर, एक–दोको छोड़कर और सब 'गुप्त' नये ही मालूम होते हैं । कुछ भी हो, मैं अपने मित्रोंकी आज्ञा पालनेके लिए तैयार हूँ । अब वे पत्रव्यवहारका कष्ट न करें ।

अतएव मैं अपने मित्रों, सहायकों, बंधुओं और कृपालुओंसे प्रार्थना करता हूँ कि वे अब मुझे 'गुप्त' न लिखकर 'वैश्य' लिखा करें । आशा है, यह प्रार्थना स्वीकृत होगी ।

भविष्यतमें मैं 'गुप्त' नामधारी सज्जनका जिम्मेवार न हूंगा ।

भवदीय—

श्यामलाल 'गुप्त' अब 'वैश्य'

सम्पादक–मुनि तथा कई पुस्तकोंका लेखक ।

नियमावली।



(१) जो लेख राज्यनियमके विरुद्ध, अश्लील और निन्दा युक्त होंगे वे पत्रमें स्थान न पा सकेंगे।

(२) इस पत्रमें पक्षपात रहित सभी साम्प्रदायिक लेख स्थान पा सकेंगे।

(३) लेखकोंको एक प्रति उस अङ्ककी भेट स्वरूप दी जायगी जिसमें उनका लेख छपेगा। और जो लेख पारितोषिक देने लायक होंगे यदि लेखक लेना स्वीकार करेंगे तो दिया जायगा।

(४) मुनिवरोंको यह पत्र विना मूल्य दिया जायगा।

(५) सभा-संस्थाओं, पुस्तकालय व वाचनालयों और विद्यालयों व छात्रोंको यह पत्र अर्द्ध मूल्यमें दिया जा सकता है।

(६) लेखको घटाने बढ़ाने और छापने नहीं छापनेका पूर्ण अधिकार सम्पादकको है।

(७) लेख, समाचार, परिवर्त्तनके पत्र व समालोचनार्थ ग्रन्थ **सम्पादक "मुनि," मुरार** (ग्वालियर) के पतेसे भेजने चाहिएँ।

(८) जो सज्जन इस पत्रकी उन्नतिमें सहायक होंगे व पांचसे दश तक ग्राहक बनायेंगे उनका नाम धन्यवाद सहित प्रकाशित होगा।

(९) जिन सज्जनोंके पास इस पत्रकी कोई संख्या ग्राहकी की आशासे पहुँचे यदि वे इसे वापिस या लेनेसे इनकारी नहीं करेंगे तो "मौनं अर्द्ध सम्मतिः" की नीतिसे अगला अंक उनके नाम वी० पी० से पहुंचेगा तब उसे छुड़ा लेना उनका धर्म है जिससे समाज-सेवाका काम उत्साह पूर्वक चलता रहे और डांक खर्चमें धनकी व्यर्थ हानि न हो। इसे अवश्य ध्यानमें रखिये।

(१०) प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र, मनीआर्डर आदि **'मैनेजर मुनि'-बोदवड़-(पूर्व खानदेश)**के पतेसे भेजने चाहिएं।